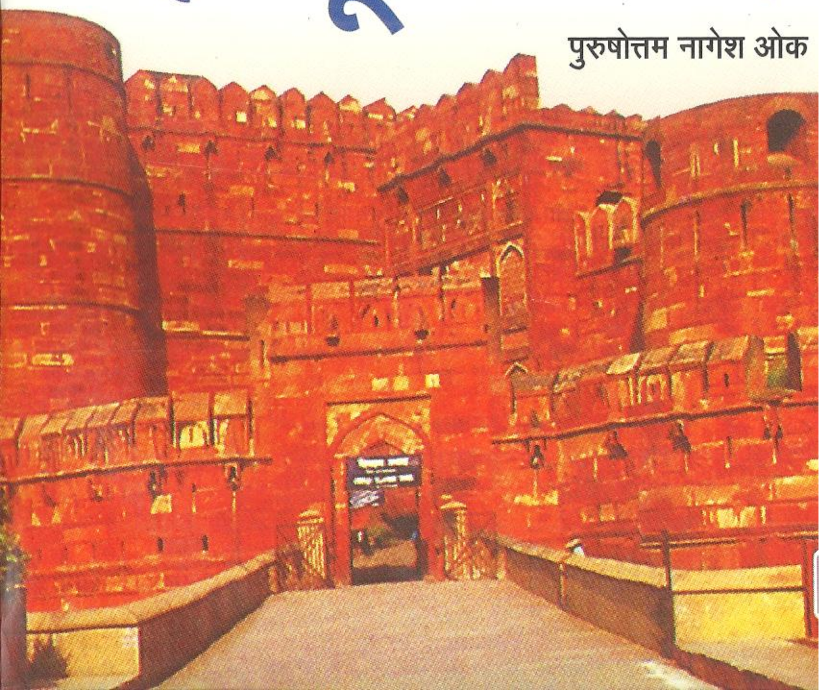
आगरे का लाल किला हिन्दू भवन है

पुरुषोत्तम नागेश ओक



आगरे का लाल किला हिन्दू भवन है

पुरुषोत्तम नागेश ओक

हिन्दी साहित्य सदन
नई दिल्ली-110 005

मूल्य : 65.00 रुपये

प्रकाशक : हिन्दी साहित्य सदन
2 बी. डी. चैम्बर्स, 10/54 देशबन्धु गुप्ता रोड,
करोल बाग, नई दिल्ली–110005
फोन : 23553624, 23551344; फैक्स : 23553624
email : indiabooks@rediffmail.com

संस्करण : 2011

मुद्रक : नवशक्ति प्रिंटर्स, दिल्ली

क्रम

भूमिका

भारत पर विदेशी शासन के लगभग ११०० वर्षों की अवधि में उसका अधिकांश इतिहास विकृत अथवा विनष्ट कर दिया गया है।

इस विकृति के एक अत्यन्त दुर्भाग्य-सूचक पक्ष का सम्बन्ध मध्यकालीन भवनों और नगरों से है।

भारत में कश्मीर से कन्याकुमारी तक की सभी विशाल, भव्य और मनमोहक ऐतिहासिक हिन्दू संरचनाओं को मात्र अपहरण अथवा विजयों के कारण तुर्क, अफगान, ईरान, अरब, अबीसीनियन और मुगलों जैसे विदेशी मुस्लिम आक्रमणकारियों द्वारा निर्मित कहा जाने लगा है। ऐसी अपहृत संरचनाओं में किले, राजमहल, भवन, सराय, मार्ग, पुल, कुएँ, नहरें और सड़कों के किनारे लगे हुए मील के पत्थर भी सम्मिलित हैं। हिन्दू मन्दिरों, राजमहलों और भवनों के शताब्दियों तक मकबरों और मस्जिदों के रूप में दुरुपयोग ने विश्व-भर की सामान्य जनता, पर्यटकों, इतिहास के छात्रों और विद्वानों को यह विश्वास दिलाकर भ्रमित किया है कि उन भवनों को मूल-रूप में निर्मित करने का प्रारम्भिक आदेश मुस्लिमों ने ही दिया था।

यह उपलब्धि कि अभी तक जिन मध्यकालीन भवनों का निर्माण-श्रेय विदेशी मुस्लिम आक्रांताओं को दिया जाता है, वे सभी तथ्यतः मुस्लिम-पूर्व काल की हिन्दू संरचनाएँ हैं, एक ऐसी चिरस्थायी खोज है जिसके द्वारा इतिहास और मध्यकालीन शिल्पकला के अध्ययन में युगान्तरकारी क्रान्ति हो जानी चाहिए।

इस उपलब्धि को 'ताजमहल हिन्दू राजभवन है', 'फतेहपुर सीकरी एक हिन्दू नगर', 'दिल्ली का लालकिला लालकोट है' तथा 'आगरे का लालकिला हिन्दू भवन है' पुस्तकों में भली-भाँति, युक्तिपूर्वक एवं सप्रमाण चरितार्थ किया गया है।

हिन्दुस्तान के बुद्धिजीवियों द्वारा इस उपलब्धि को आत्मसात करने में प्रदर्शित विलम्ब उस विनाश का परिमापक है जो इतिहास द्वारा पराधीन राष्ट्र के मानस में उत्पन्न कर दिया जाता है जिसके कारण उनको युक्ति एवं वैध प्रमाण भी अग्राह्य लगते हैं।

अनवरत उत्पीड़न एवं दमन के कारण तो शोषितों के मन में अपने तत्कालीन दमनकारियों की निन्दा करने वाले सर्वाधिक विश्वसनीय एवं विपुल साक्ष्य के होते हुए भी एक प्रतिरोध की भावना विकसित हो जाती है।

यही वह गतिहीन और अशक्त बनाने वाली व्याधि है जो हिन्दुस्तान के प्रतिभावान् व्यक्तियों को एक हजार वर्षों की लम्बी अवधि में दुर्धर्ष युद्धों में अपहरणकर्ता अरब, अफगान, ईरान या मुगलों को जिन भवनों, राजमहलों, नगरों व पुलों का निर्माण-श्रेय दिए जाने का प्रतिरोध करने और अपने पूर्वजों की सम्पत्ति पर अपना दावा प्रस्तुत करने से रोकती है।

यह आशा की जाती है कि हिन्दुस्तान के प्रतिभाशील व्यक्ति शीघ्र ही अपनी अपघाती जड़ता, संकोचवृत्ति और गर्हितावस्था को त्यागकर अपने पूर्वजों द्वारा उन अद्भुत निर्माण-कार्यों पर शैक्षिक दिग्विजय प्राप्त करने का अभियान प्रारम्भ कर देंगे जिनका रचना-श्रेय झूठ-मूठ ही हिंसक विदेशी लुटेरों के एक बहुत बड़े वर्ग को दे दिया गया है।

उन निर्माण-कार्यों पर हिन्दुस्तान-निवासियों का एक बार दावा हो जाने पर समग्र भूमण्डल के किसी भी भाग में भारतीय इतिहास के शिक्षक और लेखकगण, आज की भाँति, उन भवनों का निर्माण-श्रेय किसी भी विदेशी आक्रमणकारी को देने का साहस नहीं करेंगे। अतः इसके पूर्व कि विदेशों में भारतीय इतिहास के विद्यार्थियों और विद्वानों को हमारी उपलब्धियाँ स्वीकार कराई जाएँ या आशा की जाए कि वे इनको अंगीकार कर लें, आवश्यक है कि स्वयं हिन्दुस्तान में ही सर्वप्रथम इस शैक्षिक प्रतिवाद—खण्डन—को शिरोधार्य किया जाए।

भारतीय इतिहास में इसका उदाहरण स्पष्ट रूप में विद्यमान है।

लाहौर का किला प्रमाण-स्वरूप प्रस्तुत किया जा सकता है। वह किला प्राचीन हिन्दुओं द्वारा बनाया गया था किन्तु चूँकि अब लाहौर भारत से

बाहर हो गया है अतः यह बात भी विस्मृत की जा सकती है कि स्वयं लाहौर एवं पाकिस्तान, दोनों ही भारत के भाग थे तथा इसके मध्यकालीन भवनों का स्वामित्व हिन्दुओं का था तथा उन्होंने ही इनका निर्माण किया था।

जबकि महाराणा प्रताप और महान् छत्रपति शिवाजी जैसे देशभक्त योद्धाओं ने देश और देशवासियों का उद्धार करने के लिए अपना रक्त बहाया है, तब क्या इतिहासकारों का इतना भी देशभक्तिपूर्ण पवित्र कर्तव्य नहीं है कि वे उन बलात् गृहीत भवनों के शैक्षिक-पुनरुद्धार के लिए कुछ तो मसि खर्च करें जिनका निर्माण-श्रेय असत्य ही विदेशी विजेताओं को दिया गया है।

क्या यह बात स्वीकार्य नहीं है कि जो शत्रु हमारी भूमि पर दावा करता है, वह वहाँ बनी सभी इमारतों को भी अपना ही घोषित करेगा! यही तो वह यथार्थता है जो भारत पर विदेशी मुस्लिम आधिपत्य और शासन की लम्बी अवधि में घटित हुई। उदाहरणार्थ, लखनऊ के तथाकथित इमामबाड़े प्राचीन हिन्दू राजमहल हैं जिनका निर्माण-श्रेय व्यर्थ ही इस या उस विदेशी मुस्लिम नवाब को दिया जा रहा है जिसने हिन्दुस्तान का वह भाग अपनी दासता में दबा रखा था।

उपर्युक्त पुस्तकों तथा इस ग्रन्थ में सशक्त प्रमाणों सहित यह बात सिद्ध की गई है कि उन भवनों को मुस्लिम-पूर्व हिन्दू-संरचनाएँ सिद्ध करने के लिए तो स्वयं विदेशी तिथिवृत्तों में ही विपुल साक्ष्य प्रस्तुत है। इसी प्रकार का साक्ष्य भारत के सभी मध्यकालीन भवनों और नगरों के विषय में भी संग्रहीत तथा प्रस्तुत किया जा सकता है। प्रस्तुत ग्रन्थ तो निरन्तर पराधीनता की बेड़ियों से मुक्त होने वाले राष्ट्र के राजनीतिक उद्धार के फलस्वरूप ऐतिहासिक-पुनर्दिग्विजय के रूप में शिक्षा के क्षेत्र में एक अन्य प्रयास ही है।

हम आशा करते हैं कि ये पथ-प्रदर्शक ग्रन्थ अन्य शिक्षा-शास्त्रियों को प्रेरित करेंगे कि वे उन समस्त अभिलेखों को पुनः ठीक करें जो विदेशी आधिपत्य की लम्बी अवधि में अव्यवस्थित और अनधिकृत परिवर्तित रूप में पड़े हुए हैं।

स्वाधीनता का कोई अर्थ, मूल्य ही नहीं है यदि उस अभिलेख भण्डार को विनष्ट या विकृत होने दिया जाता है।

इन अग्रणी साहसी ग्रन्थों से विद्वानों को अपनी घिसी-पिटी शैक्षिक अन्तर्बाधाओं और तोते जैसी रटी-रटाई धारणाओं का परित्याग करने की, और आगरा, अहमदाबाद, गुलबर्ग, औरंगाबाद, बीजापुर, बीदर, दिल्ली, लखनऊ, मांडवगढ़ तथा अन्य बहुत से नगरों में बने हुए मध्यकालीन भवनों पर मुस्लिम दावों को असिद्ध करने के लिए इसी प्रकार के साहसी शैक्षिक ग्रन्थों की रचना करने के लिए बड़ी संख्या में आगे बढ़ने की प्रेरणा मिलेगी।

ऐतिहासिक अनुसन्धान के इस अति विशाल और अछूते क्षेत्र की समुचित और परिपूर्ण छानबीन करने के लिए विद्वानों की एक पर्याप्त विशाल संख्या अभीष्ट है। गुलबर्ग के 'इतिहास अभ्यासक मण्डल' ने पहले ही उचित मार्ग का अवलम्बन किया है और 'दरगाह बन्दा नवाज़ हिन्दू मन्दिर है' शीर्षक अत्यन्त नेत्रोन्मेषकारी और सप्रमाण पुस्तक प्रकाशित की है। इस तथ्य से स्पष्ट है कि भारत में तथा कदाचित् अन्य बाहरी देशों में भी मध्यकालीन भवनों और नगरों के मूलोद्गम व स्वामित्व के बारे में परम्परागत धारणाओं का खण्डन करने के लिए इस प्रकार के शोध-ग्रन्थों की अत्यन्त आवश्यकता है।

इस प्रकार के शोधकार्य का दूरगामी महत्त्व है क्योंकि इससे सिद्ध हो जाएगा कि तथाकथित भारतीय-जिहादी शिल्पकला-सिद्धान्त, मुगल स्वर्णिम कला, मुगल चित्रकला और नृत्य व संगीत के प्रति मुस्लिम प्रोत्साहन की बातें मात्र मानसी सृष्टि हैं।

यह भी प्रमाणित हो जाएगा कि समरकंद में तैमूरलंग का मकबरा और अफगानिस्तान में मोहम्मद गज़नी की कब्रों जैसे पश्चिमी एशिया-स्थित अनेक ऐतिहासिक भवन उसी प्रकार पूर्वकालिक हिन्दू राजभवन हैं जैसे लाहौर का किला एक हिन्दू महल है चाहे वह आज विदेशी आधिपत्य में है।

विदेशियों की निरन्तर दासता की अवधि में इतिहास पूरी तरह उलट-पुलट दिया गया है। यद्यपि हिन्दू सम्पत्ति और यान्त्रिकी कौशल द्वारा स्वयं पश्चिम एशिया में भी विशाल मध्यकालीन भवनों का निर्माण करना सम्भव हो पाया, तथापि समस्त विश्व-भर को यही बात तोते की तरह रटाई गई है

कि ये तो मुस्लिम आक्रमणकारी लोग ही थे जिन्होंने मध्यकालीन भारत में अधिकांश ऐतिहासिक भवनों और नगरों के निर्माण का आदेश दिया था।

सौभाग्य से उस विकृति का खण्डन करने के लिए चिरविस्मृत जानकारी अब उपलब्ध है। स्वयं विदेशियों द्वारा ही लिखित तिथिवृत्तों से निसृत प्रमाणों सहित किस प्रकार वह प्रतिवाद, खण्डन चरितार्थ किया जा सकता है, यह विधि वर्तमान ग्रन्थ तथा पूर्वोल्लेख की गई पुस्तकों से सीखी जा सकती है।

भारत के मध्यकालीन भवनों और नगरों के हिन्दू-मूलक सम्बन्धी ये पुस्तकें जितनी जल्दी लिखी जाएँगी उतनी ही अच्छी बात होगी क्योंकि असंख्य भ्रांतियों, बेहूदगियों, असंगतियों और अयुक्तियों को समाविष्ट करने वाले इन और उन विदेशी मुस्लिम आक्रमणकारियों और विजेताओं को निर्माण-श्रेय देने का मनचाहा व्यापार पहले ही बहुत लम्बी अवधि तक फल-फूल चुका है। यह तो इतिहास और मनुष्य की प्रतिभा, दोनों का ही घोर अपमान है।

प्रस्तुत ग्रन्थ में हमने मध्यकालीन ऐतिहासिक ग्रन्थों और पर्यटक मार्ग-दर्शक पुस्तकों में समाविष्ट एक चकाचौंधकारी भ्रांत धारणा का भंडाभोड़ किया है। आगरा-स्थित लालकिले के दर्शनार्थियों और इतिहास के विद्यार्थियों तथा विद्वानों को यह विश्वास दिलाया जा रहा है व प्रचार किया जा रहा है कि आगरे का लालकिया १६वीं शताब्दी के मुगल शासक अकबर द्वारा बनवाया गया था। यह झूठ है। आगरे का वह लालकिला, जिसे आज २०वीं शताब्दी का दर्शक उत्सुकतापूर्वक जाकर देखता है, ईसा-पूर्व युग में तत्कालीन हिन्दू शासकों द्वारा बनाया गया था। विदेशी मुस्लिम आक्रांताओं ने तो इसे केवल जीता और अपने अधीन किया था। अशोक और कनिष्क प्राचीन हिन्दू शासकों ने किले के तथाकथित दीवाने-आम में राज-दरबार सुशोभित किये थे और तथाकथित दीवाने-खास में अपने परामर्श-दाताओं से मन्त्रणाएँ की थीं। वे प्राचीन हिन्दू नरेशों के राजकीय भाग हैं जो बाद में मुस्लिम विजेताओं ने हड़प लिये थे। ये सभी बातें आगे के पृष्ठों में प्रमाणित कर दी गई हैं।

जो बात इस ग्रन्थ में सिद्ध की गई है, वही बात आवश्यक परिवर्तनों

सहित उन सभी अन्य भवनों के बारे में भी सत्य है जिन्हें आज सिकन्दर लोधी या शेरशाह, अकबर, हुमायूँ, सफदरजंग; निजामुद्दीन या ख्वाजा मोइनुद्दीन चिश्ती का मकबरा कहकर जनता के सम्मुख प्रस्तुत किया जा रहा है।

इतिहास के सच्चे विद्यार्थियों को उनके मूलोद्गम में दृष्टिपात करना चाहिए और उनको पूर्वकालिक हिन्दू भवन सिद्ध करने वाली पुस्तकें लिखनी चाहिए। जब प्रस्तुत ग्रन्थ भावी शोध-रचनाओं का मार्गदर्शक सिद्ध होगा, तभी लेखक को पूर्ण समाधान अनुभव होगा।

—पुरुषोत्तम नागेश 'ओक'

९, गुडविल सोसाइटी
(सिन्धी कॉलोनी के पीछे)
आन्दले, पुणे-४११००७

अध्याय १

मूल-समस्या

भारतीय इतिहास की एक घोर विडम्बना यह रही है कि जिस समय हजार वर्षों की अवधि से अधिक काल भारतीय लोग विदेशी पराधीनता में प्रताड़ित और मुँह बंद किए रहे, उसी समय सम्पूर्ण भारत पर अपनी सम्पूर्ण सत्ता-शक्ति का उपभोग करने वाले विदेशियों ने अपने मनमाने ढंग से भारतीय इतिहास को तोड़-मरोड़कर अथवा विकृत कर सत्यानाश कर दिया, फिर चाहे यह दुष्कृत्य उन्होंने मात्र धूर्तता और प्रतिकूलता अथवा अपने घोर अज्ञान तथा निर्दय बरबरता के कारण ही किया हो।

उस प्रक्रिया में, दीर्घ मुस्लिम आधिपत्य के अधीन आने वाले सभी मध्यकालीन भवन, मकबरों अथवा मस्जिदों के रूप में दुरुपयोग किए जाने लगे। और ज्यों-ज्यों समय बीतता गया, विदेशियों की अन्धभक्ति, दरबारी चाटुकारिता तथा धर्मान्धतापूर्ण धूर्तता के कारण सभी प्राचीन हिन्दू नगरों और भवनों का निर्माण-श्रेय मुस्लिमों को अंकित होता गया। इस प्रकार, यदि कुछ उदाहरण प्रस्तुत ही करने हों तो अत्यन्त ऐतिहासिक सरलता के साथ, माना जाने लगा कि नाम से ही स्पष्ट है कि अहमदाबाद की स्थापना अहमदशाह द्वारा, तुगलकाबाद की स्थापना तुगलकशाह द्वारा और फिरोजाबाद की स्थापना फिरोजशाह द्वारा की गई थी।

यदि किसी व्यक्ति को ऐसे बालसुलभ तर्कों और ऊपरी ऐतिहासिक विद्वत्ता से ही मार्गदर्शन प्राप्त करना है तो उसका निष्कर्ष यही होगा कि उत्तर प्रदेश राज्य का अल्लहाबाद नगर तो स्वयं मुस्लिम ईश्वर अल्लाह द्वारा ही स्थापित किया गया होगा। यह बात तो मध्यकालीन नगरों की हुई। किन्तु मध्यकालीन भवनों के सम्बन्ध में वही भावहीन, अयुक्तियुक्त

विधि अपनाई जाती है। इस प्रकार, यह बात बड़े जोर-शोर से कही जाती है कि यदि कोई भवन सलीमगढ़ कहा जाता है, तो निश्चित है कि इसका निर्माण (अकबर बादशाह के प्रिय आध्यात्मिक गुरु) शेख सलीम चिश्ती द्वारा अथवा उसके लिए, अथवा (अकबर के राज्य-उत्तराधिकारी) शाहज़ादा सलीम या अन्य किसी सलीम द्वारा किया गया था। इसी प्रकार, यदि कोई भवन जहाँगीरी महल कहलाता है तो उसी विचार-प्रणाली के अनुसार, बलपूर्वक घोषित किया जाता है कि यह भवन शाहज़ादा सलीम द्वारा गद्दी पर जहाँगीर के रूप में बैठने के बाद ही बनवाया गया था। स्वामित्व के बारे में इस प्रकार की अवास्तविक व्युत्पत्तियों और निष्कर्षों ने सभी ऐतिहासिक शोध-विधि को कलंकित ही कर दिया है।

हम एक समकालीन उदाहरण लें। नयी दिल्ली में बाबर, हुमायूं व औरंगज़ेब, केनिंग, कर्ज़न व लिटन तथा महात्मा गांधी, जवाहरलाल नेहरू व लालबहादुर शास्त्री के नाम पर सड़कें हैं। ऊपर जिस प्रकार के उदाहरणों का उल्लेख किया गया है, उस ऐतिहासिक युक्ति—तर्क-पद्धति से तो हमें यही उपहासास्पद निष्कर्ष निकालने को बाध्य होना पड़ेगा कि उन महानुभावों में से प्रत्येक ने अपने जीवन-काल में एक और केवल एक ही सड़क का निर्माण किया था और उन लोगों द्वारा उन सड़कों के निर्माण से पूर्व वहाँ सुनसान एकान्त स्थान ही था।

इतना ही नहीं, उन ऐतिहासिक महानुभावों में से बहुत से लोगों के नाम पर वीथिकाएँ भी हैं। औरंगज़ेब लेन (वीथिका), बाबर लेन और लिटन लेन ऐसे ही उदाहरण हैं। चूंकि वीथिका (लेन) किसी भी सड़क से छोटी और संकुचित होती है, इसलिए उपहासास्पद ऐतिहासिक तर्क-पद्धति का अनुसरण करने पर हम यही निष्कर्ष निकालने पर बाध्य होंगे कि कर्ज़न की सन्तान ने ही कर्ज़न लेन (वीथिका) का निर्माण किया होगा, और इसी प्रकार अन्य प्रशासकों के उत्तराधिकारियों और बाल-बच्चों ने ही उनके बाद उनके नामों पर उन लेनों (वीथिकाओं) आदि के नाम रखे होंगे।

भारतीय इतिहास में ऐसे बालोचित निष्कर्षों का भारी कूड़ा-करकट ठूंसा गया है, जिसे गहन भारतीय इतिहास कहकर विश्व-भर को दिखलाया जा रहा है। हमारा कर्तव्य है कि ऐतिहासिक अनुसंधान की ऐसी विधियों

का सार्वजनिक रूप में खण्डन किया जाए, और भारतीय इतिहास से सम्बन्ध रखने वाले तथा ऐतिहासिक भवनों और नगरों की यात्रा करनेवाले पर्यटकों को आज सभी लोगों द्वारा एक ही स्वर में, भारतीय इतिहास के नाम पर ठगे जाने से बचाएँ। जो वर्णन उन लोगों के समक्ष प्रस्तुत किए जा रहे हैं, वे न तो भारतीय हैं और न ही इतिहास से सम्बन्धित। वे तो मुस्लिम या मुस्लिम-पक्षपाती कपोल कथाएँ हैं।

भारतीय इतिहास की एक अन्य घोर विडम्बना यह है कि यद्यपि विश्व के असंख्य विश्वविद्यालयों, अनुसंधान-संगठनों, पाठशालाओं और विद्यालयों में भारतीय इतिहास के अध्ययन और प्रशिक्षण का कार्य चलता रहा है, तथापि किसी को भी यह कपट-जाल प्रत्यक्ष नहीं हुआ। सभी लोग प्रस्तुत किए गए थोथे और अव्यवस्थित स्पष्टीकरणों से संतुष्ट हुए प्रतीत होते हैं। कुछ लोगों को झूठ का सन्देह हुआ होगा, किन्तु प्रत्यक्ष है कि उन लोगों ने भी उस धोखे और बेईमानी की गहराई और सीमा को अनुभव नहीं किया जिसका नित्य व्यवहार किया जा रहा है। सम्भव है कि इस सार्वजनिक धोखेबाजी के विरुद्ध शोर-शराबा करने का साहस भी कुछ लोगों को न हुआ हो। कारण कोई भी रहा हो, इतिहास के रूप में प्रस्तुत पाखंडपूर्ण विकृतियाँ और कपोल-कथाएँ अत्यधिक लम्बे समय तक किसी चुनौती के बिना ही प्रचलित रही हैं।

इस पुस्तक का वाद-विषय भी उसी घोर ऐतिहासिक व्यापक पाखंड का एक विशिष्ट एवं नेत्रोन्मेषकारी उदाहरण है—आगरा-स्थित लालकिले का मूलोद्भव। हम आगामी पृष्ठों में सिद्ध करेंगे कि आगरे का लालकिला, आज जैसा यह लक्षित होता है, किसी भी प्रकार एक मुस्लिम भवन-संकुल न होकर, अपनी परिपूर्णता में हिन्दू-निर्माण ही है। यह तो मुस्लिम आक्रमण-कारियों द्वारा ग्रहीत, अपहृत और उपयोग में लाया गया था। तथ्य यह है कि उसमें निवास करने वाले मुस्लिमों ने तो किले के भीतर कुछ भवनों को विनष्ट किया, अन्य निर्माणों में तोड़-फोड़ की तथा कुछ अन्यों को अपवित्र किया, किन्तु निर्माण तो उन्होंने किसी का भी नहीं किया। कहने का अर्थ यह है कि हम आज इस किले में जितने भवन देख पाते हैं उनसे कहीं अधिक भव्य, विशाल और आकर्षक भवन रहे होंगे। यदि कुछ हुआ ही है, तो

यह कि मुस्लिम-उपयोग का परिणाम केवल इतना ही हुआ कि लालकिले को उसकी वास्तु-कलात्मक जाज्वल्यमानों, बहुमूल्य स्थावर-सम्पत्तियों से विलग किया गया और कुछ वस्तुओं का जघन्यरूप में, विनाश किया गया। अत: लालकिले का दर्शनार्थी पर्यटक अतिशयोक्तिपूर्ण 'मुगल' ऐश्वर्य का मुँह फाड़कर, अवाक् दर्शन भ्रमावस्था में करता है। उसको सम्मोहित करने वाला ऐश्वर्य मुस्लिम-लूट, उपभोग, विनाश एवं रख-रखाव—जानकारी और ध्यान के अभाव की शताब्दियाँ बीत जाने पर भी शेष है। अवशिष्ट ऐश्वर्य से ही दर्शक को आगरे के लालकिले में व्याप्त उस हिन्दू-गरिमा और महत्ता का आभास हो जाना चाहिए जो मुस्लिम आक्रमणकारियों द्वारा इसका सौन्दर्य-नाश करने से पीढ़ियों पूर्व विद्यमान था।

इस उपलब्धि का महत्त्व इतिहास के क्षेत्र में और भी अधिक है। आगरे के लालकिले के मूल के सम्बन्ध में गलत धारणाओं ने शिल्पकला और नगर-रचना-शास्त्र के विद्यार्थियों को भी प्राचीन हिन्दू शिल्पकला के विवरण संग्रह करने में और उस संग्रहीत सामग्री को मुस्लिम-कला की विशिष्टताएँ मानने में सदैव भ्रमित किया है।

इतिहास के लिए भी इस उपलब्धि का कि लालकिला मुस्लिम भवन-संकुल नहीं है, एक अति-हितकर और दूरगामी प्रभाव होगा। एक ही धक्के में इस उपलब्धि से सभी गड़बड़ विचारधारा स्पष्ट हो जाएगी और समस्त स्थिति समाधेय रूप में सुस्पष्ट हो जाएगी कि बड़े-बड़े ग्रंथों के होते हुए भी किसी मुस्लिम दरबारी, शाहजादे अथवा शासक द्वारा किसी भी निर्माण-कार्य को करने के संतोषजनक और संगत वर्णनों को एक ही स्थान पर एकत्र क्यों नहीं किया जा सकता। मध्यकालीन भारतीय नगरों या भवनों का निर्माण-श्रेय मुस्लिम-रचना को दिए जाने के लिए व्यक्ति को सभी समय कल्पनाएँ करने या पुरानी बातों को ही रटते रहने अथवा अतिशयोक्तिपूर्ण स्पष्टीकरणों को गटगट निगलने या फिर बेहूदी धारणाएँ ही बनानी पड़ती रहती हैं।

आगरा-स्थित लालकिले के परम्परागत वर्णन भी इस्लाम-पक्षी एक विचित्र रहस्यमयी गुत्थी प्रस्तुत करते हैं। कोई भी इतिहास-पुस्तक इसके मूलोद्गम का असंदिग्ध साक्ष्य-पूर्ण वृत्तांत प्रस्तुत नहीं करती। इतिहास के

चिन्तनशील अध्येता और लालकिला के भोले-भाले दर्शनार्थी दोनों के ही सम्मुख अव्यवस्थित वृत्तांत प्रस्तुत किए जाते हैं। उदाहरण के लिए कहा जाता है कि आज जिस भूमि पर लालकिला बना हुआ है, ठीक उसी स्थान पर एक अति प्राचीन हिन्दू किला विद्यमान था। फिर, व्यर्थ ही कहा जाता है कि वह किला किसी समय किसी प्रकार नष्ट हो गया। किसी को पता नहीं है कि यह सब-कुछ कब और कैसे हुआ! एक अन्य निर्मूल धारणा यह है कि एक विदेशी अफगान नरसंहारक सिकन्दर लोधी ने १६वीं शताब्दी के प्रारम्भ में आगरे में एक किला बनवाया। यह कहाँ बना हुआ था, कोई बता नहीं सकता। अब यह कहाँ है, किसी को भी मालूम नहीं। कहा जाता है कि उसने जो किला बनवाया था, वह पूर्णतः ऐसा विनष्ट हुआ कि अब उसका नाम-निशान भी नहीं है। सिकन्दर लोधी ने इसे कब बनाया, उसने इस पर कितना धन अथवा समय खर्च किया, इसके वर्णन-लेखे तथा अन्य दस्तावेज़ (प्रलेख) कहाँ हैं, किसने इसका अस्तित्व समाप्त किया—कब और कैसे—कोई भी इतिहासकार न तो इसकी चिन्ता करता है और न ही खोज-बीन। यह भी स्पष्ट रूप में कहा नहीं जाता कि सिकन्दर लोधी के काल्पनिक किले ने पूर्वकालिक हिन्दू किले का स्थान ग्रहण कर लिया था। यह तो केवल अण्ड-बण्ड रूप में ही सरसराहट की जाती है कि इसने प्राचीन हिन्दू किले का स्थान ग्रहण कर लिया हो अथवा यह कहीं अन्य स्थान पर ही बना हो।

एक तीसरा, अस्पष्ट परिवर्तित रूप भी है। कहा जाता है कि एक नगण्य अज्ञातकुल अपहरणकर्त्ता सलीम शाह सूर ने, जिसे भारत के बड़े विदेशी शासकों की सूची में भी सम्मिलित नहीं किया जाता, आगरे में एक किला बनवाया। उसने इसे कहाँ बनवाया, उसे कैसे बनवाया, निर्माण-कार्यों में कितने वर्ष लगे, इसके प्रलेख, विपत्र और रसीदें कहाँ हैं, उसने इस पर कितनी राशि व्यय की—न तो कोई पूछता है और न ही कोई इसे बताता है। किसी से ऐसी आशा भी नहीं की जाती। उसके किले का निर्माण-स्थल भी अज्ञात है। कुछ लोग मुँह उठाकर कह देते हैं कि उसने कदाचित् प्राचीन हिन्दू किले को नष्ट किया और फिर बिल्कुल उसी स्थान पर, उसी रूप-रेखा पर अन्य किले का निर्माण कर दिया। अन्य लोग कहते हैं कि उनका किला शायद सिकन्दर लोधी के किले के स्थान पर बन गया। यदि इस अंतिम

उल्लेख को स्वीकार करना है, तो हम इस बेहूदे निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि सिकन्दर लोधी ने बिना किसी प्रत्यक्ष कारण ही एक प्राचीन हिन्दू किले को नष्ट कर दिया। उसके बाद लगभग ५० वर्ष पहले की अवधि में ही सलीम-शाह ने भी किसी अज्ञात कारणवश लोधी के बनाए किले को ध्वस्त कर दिया और एक अन्य किला बना दिया। जितने रहस्यमय ढंग से इन दोनों शासकों ने किलों को नष्ट किया और नव-दुर्गों का निर्माण किया, हम भी अनुमान लगा लेते हैं कि उन लोगों ने अपने निर्माण से सम्बन्धित सभी नक्शे, रूप-रेखांकन तथा अन्य प्रलेख भी अज्ञात कारणों से ही नष्ट कर दिए हैं।

इन अनर्गल पूर्वानुमानों के पश्चात् हमें बताया जाता है कि आज आगरे में जिस लालकिले को दर्शक देखता है, वह किला तीसरी पीढ़ी के मुग़ल बादशाह अकबर द्वारा १६वीं शताब्दी के अन्तिम चरण में बनवाया गया था। इस धारणा में विचार किया जाता है कि या तो उसने प्राचीन हिन्दू किले को अथवा सिकन्दर लोधी द्वारा बनवाए गए किले को या फिर सलीम शाह सूर द्वारा निर्मित दुर्ग को ध्वस्त किया था। इसी क्षण यह भी कहा जाता है कि आज दिखाई पड़ने वाला आगरे का लालकिला सलीम शाह सूर द्वारा निर्मित किला ही होना चाहिए और इसी में अकबर द्वारा परिवर्धन किया गया होगा। और इन सब बातों के साथ-साथ, विश्वास-पूर्वक किन्तु भ्रामक रूप में यात्रियों के कानों में यह बात भी कह दी जाती है कि आज जिस लालकिले को यात्री अनियमित रूप में देख रहा है, उसकी भूल-भुलैयाँ में विचरण कर रहा है, वह तो पूर्ण रूप में अकबर द्वारा ही पुराने हिन्दू किले को ध्वस्त करने के पश्चात् उसी के द्वारा बनवाया गया था। यहाँ पर सहज ही भुला दिया जाता है कि वे कथाएँ भी अति पुष्ट हैं जिनमें बताया जाता है कि सिकन्दर लोधी और सलीम शाह सूर, दोनों ने ही अपने-अपने समय में प्राचीन हिन्दू किले को ध्वस्त किया था। हमें आश्चर्य यह होता है कि हिन्दू किले की पुरातनता किस प्रकार सभी मुस्लिम तिथि-वृत्तों पर छाई हुई है यद्यपि अनेक मुस्लिम शासकों के बारे में बारंबार कहा जाता है कि उन लोगों ने निरन्तर इसे विनष्ट किया था। हमें विस्मया-कुल करने वाली बात यह है कि इन सभी परस्पर विरोधी कथाओं को ज्यों-का-त्यों स्वीकार कर लिया जाता है—कोई इतिहास-शिक्षक अथवा प्राचार्य

एक भी प्रश्न नहीं करता और न ही कोई प्रमाण माँगता है।

इस प्रकार आगरे के लालकिले का प्रचलित, स्वीकृत, अस्पष्ट इतिहास यह कहता प्रतीत होता है कि किला एक समय हिन्दू-मूल का था किन्तु कदाचित् किसी समय, किसी प्रकार नष्ट किया गया था और सिकन्दर लोधी द्वारा पुन: बनवाया गया था तथा एक बार फिर सिकन्दर लोधी द्वारा बनाया गया किला किसी समय, किसी प्रकार सलीम शाह सूर द्वारा ध्वस्त किया गया था। सलीम शाह सूर का किला किसी समय किसी प्रकार अकबर द्वारा नष्ट किया गया था और तीन धर्मान्ध मुस्लिम सम्राटों द्वारा आगरे का किला 'निर्माण' और 'पुन: निर्माण' करवाने के बावजूद—जैसा दावा किया जाता है—किले के भीतर बने हुए सभी भवन रूपांकन में पूर्णत: हिन्दू प्रकार के हैं तथा उनमें बहुविध हिन्दू अलंकरण स्पष्ट दृष्टिगोचर हैं।

हम अब परम्परागत वर्णनों की उन असंगतियों की सूची प्रस्तुत करेंगे जिनमें परस्पर विरोधी साक्ष्य की विशाल विपुलता होते हुए भी धर्मान्ध दुराग्रह के कारण किले की रचना का निर्माण-श्रेय इस या उस मुस्लिम निरंकुश शासक को दिया जाता है।

असंगति क्रमांक-१ यह है कि बिना किसी औचित्य के यह मान लिया जाता है कि आगरे का पुरातन हिन्दू किला नष्ट कर दिया गया है।

असंगति क्रमांक-२ यह है कि अत्यन्त दीनावस्था से सहसा उन्नतावस्था को प्राप्त होने वाले सिकन्दर लोधी के बारे में, जो एक विदेशी तथा ऐसा व्यक्ति था जिसका जीवन निरन्तर झगड़ों व विनाश और नर-संहार की ऐयाशी से पूर्ण था, कहा जाता है कि उसने हिन्दू-किले को किसी अज्ञात कारणवश नष्ट कर दिया और उसी अथवा अन्य स्थान पर एक दूसरा किला बनवा दिया था।

असंगति क्रमांक-३ यह है कि एक महत्त्वहीन विदेशी आततायी सलीम शाह सूर को आगरा में एक किला निर्माण करने का श्रेय दिया जाता है यद्यपि यहाँ पहले ही एक हिन्दू किला बना हुआ था, और मनगढ़न्त मुस्लिम वर्णनों के अनुसार, आगरे में एक और किला भी था जिसे सिकन्दर लोधी ने बनवाया था।

असंगति क्रमांक-४ यह है कि मुगल बादशाह अकबर द्वारा आगरे में

एक और किला बनवाया गया कहा जाता है यद्यपि यहाँ पर एक हिन्दू किला तथा झूठे मुस्लिम वर्णनों के अनुसार सिकन्दर लोधी व सलीम शाह सूर जैसे विदेशियों द्वारा बनवाए गए दो अन्य किले पहले ही विद्यमान थे।

असंगति क्रमांक-५ यह है कि सभी अनुवर्ती किलों को पूर्वकालिक हिन्दू किले और परवर्ती मुस्लिम किलों की परिरेखाओं पर ही निर्माण और पुनः-निर्माण किए जाने का दावा किया जाता है। यहाँ यह बात स्पष्टतः अनुभव किए जाने की आवश्यकता है कि यदि कोई सम्राट् नया किला बनवाना चाहेगा, तो वह बिल्कुल नया स्थान ही निर्माण-स्थल के रूप में चुनेगा। यदि वह पुराने किले को गिराएगा, तो गिराने और ध्वस्त-सामग्री को अन्यत्र ढोकर ले जाने के कार्य में ही वर्षों का समय बीत जाएगा। यदि बाद के किले को भिन्न नमूने पर बनाना है, तो पुराने किले की नींवों को भी खोद डालना होगा। यदि नये किले को पुराने किले की नींव पर ही बनाना है, तो पुरानी दीवारों को गिराना और नई दीवारों का निर्माण मूर्खता का कार्य होगा। यदि पुरानी दीवारें हों तो उनको पुनः शक्ति प्रदान की जा सकती है। यहाँ यह बता देना भी आवश्यक है कि प्राचीन हिन्दू कारीगरी अद्वितीय, बेजोड़ थी। किसी भी विदेशी मुस्लिम आक्रमणकारी को प्राचीन हिन्दुओं द्वारा निर्मित राजमहलों, किलों और जल-भण्डारों के रख-रखाव व सुधार-कार्य की जानकारी नहीं थी, अतः वे हिन्दू-संरचनाओं को विनष्ट करके उन्हीं के स्थान पर दूसरी रचनाएँ निर्माण करने का जोखिम नहीं उठा सकते थे। इस प्रकार, आगरे के लालकिले और अन्य मध्यकालीन भवनों के सम्बन्ध में मुस्लिम निर्माण और पुनर्निर्माण के दावे न केवल ऐतिहासिक असंगतियाँ हैं अपितु, इंजीनियरी और अर्थशास्त्र का विचार करने पर भी असम्भवनाएँ हैं।

असंगति क्रमांक-६ यह है कि मुस्लिम दावों के पोषक प्रमाण का रंच-मात्र अथवा अभिलेख का एक टुकड़ा भी विद्यमान नहीं है। यह ऐतिहासिक छल-विडम्बना इस्लामी त्रासदायक-शासन की शताब्दियों में निष्क्रिय, पद-दलित और पराभूत नागरिकों पर बलात् थोप दी गई थी। जिस समय भारत में अंग्रेज लोग विदेशी मुस्लिमों के स्थान पर सत्तारूढ़ हुए, उस समय तक हिन्दू भवनों के बारे में मुस्लिम-निर्मिति के झूठे मुस्लिम दावे इतिहास

में बार-बार दोहराए जाने पर इतने पक्के समझे जाने लगे थे कि उनको अकाट्य सत्य मानकर स्वीकार कर लिया गया था।

असंगति क्रमांक-७ यह है कि यद्यपि कम-से-कम तीन मुस्लिम शासकों को आगरे में लालकिले का परिपूर्णता में निर्माण और पुनर्निर्माण करने का और जहाँगीर व शाहजहाँ जैसे शासकों को किले के भीतर कुछ भवनों को ध्वस्त एवं अनेक भवनों को पुनः बनाने का यश दिया जाता है, दावा किया जाता है तथापि परिपूर्ण किला और उसके सभी भवन हिन्दू लक्षणों व सजावट की विपुलता से भरे पड़े हैं।

असंगति क्रमांक-८ यह है कि यद्यपि किले के भीतर बहुत सारे मुस्लिम शिलालेख विद्यमान हैं तथापि उनमें से एक में भी उल्लेख नहीं है कि किसी मुस्लिम बादशाह ने कुछ निर्माण-कार्य किया था।

पठान महमूद गजनी से लेकर मुगल अकबर तक सभी विदेशी आक्रमणकारी आगरे के एक विजित हिन्दू किले में ही रहे—यह तो पूरी तरह समझ में आने वाली बात है क्योंकि डकैतियों और आक्रमणों का मूलतः अभिप्राय ही दूसरे की सम्पत्ति का अपहरण होता है। किन्तु जो बात अनुचित एवं क्रोधोत्पादक है, वह यह कि उस अपहृत सम्पत्ति के निर्माता के रूप में यश अर्जित करने के लिए झूठे साक्ष्य गढ़ लिए गए हैं। यह झूठ प्रसार-कार्य सर्वप्रथम दरबारी चाटुकारों और चापलूसों ने अस्पष्ट सन्दर्भों द्वारा, तथा बाद में, जैसे-जैसे शताब्दियाँ बीतीं, विजित हिन्दू सम्पत्ति के लिए मुस्लिम-निर्माण होने के संदिग्ध दावों द्वारा किया गया। उन्होंने यह कार्य अपनी आत्मा को शान्त करने एवं इस्लामी दुरभिमान को सन्तुष्ट करने के लिए किया कि उनका शाहंशाह गैर-इस्लामी चिह्नों और लक्षणों से भरे हुए एक विजित हिन्दू भवन में नहीं अपितु स्वयं जहाँपनाह द्वारा निर्मित ऐसे भवन में निवास कर रहा था जिसमें उदारतावश काफिरों की विशिष्टताएँ भी अंकित कर दी गई थीं। ऐसे इतिहास-लेखक की निर्लज्जता और ऐसे दावों द्वारा सहज रूप में भ्रमित होते रहने की पाठकों की सरलता अत्यन्त विचलित करने वाली है।

मुस्लिम दरबारों के रीति-रिवाजों और सेवकों की बोलचाल की पद्धति का ज्ञान रखने वालों को मालूम ही है कि वहाँ का प्रत्येक अधीनस्थ व्यक्ति

अपने को सत्ताधारी और अधिकारी-वर्ग की प्रजा मात्र समझता था। वह व्यक्ति घृणित प्रभाव और परले दर्जे की चापलूसी के जीवन का अभ्यस्त था। यदि कोई सरदार या सुलतान अपने किसी अधीनस्थ व्यक्ति के घर जाता और पूछता कि यह मकान किसका है, तो तुरन्त जवाब मिलता। "यह आपका अपना ही मकान है"; यदि आगन्तुक अपने चारों ओर एकत्र बच्चों के बारे में पूछता कि ये बच्चे किसके हैं, तो तुरन्त उत्तर मिलता— "ये बच्चे जहाँपनाह के ही हैं।" अधीनस्थ व्यक्ति का तो दृष्टिकोण ही यह बना हुआ था कि उसका तो अस्तित्व ही अपने महान् स्वामी की महती कृपा और अनुकम्पा पर निर्भर था। अपने मकान और अपने बच्चों का स्वामित्व अपने मालिक को देने वाले निर्लज्ज नराधम चापलूस के लिए विजित हिन्दू भवनों का निर्माण-श्रेय भी अपने इस्लामी बादशाह को देने में कोई संकोच की बात नहीं थी। किन्तु कोई कारण नहीं है कि भावी पीढ़ियों के इतिहासकार औपचारिक दरबारी द्वारा स्वयं को ठगे जाने दें।

इस विश्लेषण के द्वारा आधुनिक इतिहासकारों को प्रोत्साहित होना चाहिए और कुछ दरबारी लेखकों और चाटुकारों की लिखी हुई बातों में अन्धविश्वास रखने के कारण किसी भी भवन-निर्माण का श्रेय किसी भी मुस्लिम दरबारी या शासक को दिए जाने से पहले उसे चाहिए कि प्रत्येक मध्यकालीन भवन व नगरी की सूक्ष्म जाँच-पड़ताल करे और शपथ-पत्रों की सत्यता को परख ले।

भारत में बने प्रत्येक ऐतिहासिक भवन पर तथा पश्चिम एशिया के अन्य देशों में अनेक मध्यकालीन भवनों पर एक सूक्ष्म दृष्टिपात तथा पुनः-परीक्षा का सुफल प्राप्त होना सम्भव है। पहले ही आगरे के सुप्रसिद्ध ताजमहल और फतहपुर सीकरी नगरी निर्णायक रूप में प्राचीन हिन्दू संरचनाएँ सिद्ध की जा चुकी हैं, जिनका निर्माण-श्रेय असत्य ही विदेशी मुस्लिमों को दिया जाता रहा है।

इस ग्रन्थ में हमारा वाद-विषय एक अन्य भव्य, विशाल और ऐश्वर्य-युक्त भवन-संकुल अर्थात् आगरा स्थित लालकिला है। अन्य सभी मध्यकालीन भवनों के समान इसका निर्माण-श्रेय भी इस या उस विदेशी मुस्लिम शासक को दिया गया है किन्तु उन सभी के समान आगरा स्थित लालकिला भी एक प्राचीन हिन्दू-संरचना है जो पराभव के कारण मुस्लिम आधिपत्य में हो गई और बाद में चाटुकारितावश लिपि-बद्ध कर दिया गया कि इसका निर्माण तो स्वयं मुस्लिम विजेताओं द्वारा किया गया था।

अध्याय २

किले का चिर अतीत हिन्दू मूल

किले के अन्दर बने हुए सभी भवनों की हिन्दू कलाकृतियाँ जिस प्रकार घोषित करती हैं, उसी के सत्य अनुरूप दर्शनार्थी को आज आगरे में दिखाई देने वाला लालकिला चिर अतीत, स्मरणातीत, हिन्दू मूल की संरचना है।

प्राचीन काल में, प्रत्येक महत्त्वपूर्ण नगर में, हिन्दू सम्राट् के लिए एक दुर्ग व राजमहल, तथा प्रत्येक दरबारी सामन्त के लिए एक गढ़ी हुआ करती थी। ये सब भी एक विशाल दाँतेदार नगर-प्राचीर से परिवेष्ठित रहते थे। आगरा नगर की भी एक ऐसी प्राचीर थी। उस नगर का एक भाग और उसके कुछ द्वार अब भी बने हुए देखे जा सकते हैं। प्राचीन हिन्दू किला अब भी अपने विस्तृत और विराट् रूप और भव्यता में विराजमान है। वह हिन्दू किला आधुनिक आगरे के सर्वश्रेष्ठ पर्यटक आकर्षणों में से है, किन्तु दुर्भाग्य है कि उस किले को अकबर द्वारा बनवाया हुआ कहकर भ्रम उत्पन्न किया जा रहा है। झूठे और मन-गढ़न्त मुस्लिम वर्णनों की भ्रांति और अस्पष्टता को अधिक बढ़ाने के लिए ही यह भी साथ-साथ कह दिया जाता है कि जो-जो भवन अकबर ने किले के भीतर बनवाए थे, वे सब ध्वस्त और पुनः बनवाए गए थे कदाचित् उसके पुत्र जहाँगीर अथवा पौत्र शाहजहाँ द्वारा। किन्तु उसी साँस में इस बात पर भी जोर दिया जाता है कि आज दर्शनार्थी जिस किले और संलग्न भवनों को देखता है, वे सब, किसी-न-किसी प्रकार, अकबर द्वारा ही बनवाए गए थे। यह बात उसी भोली-भाली ग्रामीण बाला के समान है जो अंग्रेज कवि वड्र्सवर्थ को मिलने पर यही हठ करती रही थी कि यद्यपि उसके कुछ भाई मर गए थे तथापि वे फिर भी सात ही थे क्योंकि वे बाहर श्मशान-भूमि में कब्रों में लेटे पड़े थे। उसका

यह विश्वास तो सरलतापूर्ण था कि उसके मृत भाई लोग पत्थर की कब्र के नीचे गड़े पड़े थे किन्तु आगरे के किले को सिकन्दर लोधी, सलीम शाह सूर, अकबर, जहाँगीर और शाहजहाँ द्वारा निर्मित और पुनर्निमित कहकर अनेकों पीढ़ियों को पथभ्रष्ट करने वाले मध्यकालीन इतिहासज्ञों द्वारा झूठ बोलना इतनी सरल बात नहीं है। यह तो अभिप्रेत, घोर झूठ है जो इतिहास में जान-बूझकर ठूँस दी गई है।

उस झूठ को उखाड़ फेंकने और पाठक को यह बात हृदयंगम करा देने के लिए कि वह आज जिस लालकिले को आगरे में देखता है वह वही प्राचीन हिन्दू किला है जिसके अस्तित्व से चिरस्मरणातीत युग में सुप्रसिद्ध प्राचीन आगरा नगर सम्पन्न हुआ था, हम सुविख्यात ब्रिटिश इतिहासकार कीन के उद्धरण प्रस्तुत करेंगे। उसने लिखा है[1]—"आगरा (अग्र) में जुड़ी 'ग्र' संस्कृत धातु इसके प्रागैतिहासिक-काल से अस्तित्व की द्योतक है, चाहे यह सुरक्षित नगर रहा हो अथवा किलेदार नगर। इस बाद के तो निश्चित आधार प्राप्त हैं कि यह आगरा नगर किसी भी अन्य नगर के समान ही चिर अतीत काल का है। परम्परा के अनुसार आगरे की पुरातनता आर्यों के पूर्वकालीन आगमन के समकालीन अथवा ईसा से २००० वर्ष पूर्व तक है, और विश्वसनीय धारणाओं पर आधारित विश्वास के अनुसार आगरे का सम्बन्ध पाण्डवों के शोषण से है। अतः आगरे पर मगध के महान् मौर्य सम्राट् अशोक का आधिपत्य ईसापूर्व २६३ से २२३ वर्ष तक निस्संदेह रूप में था। इस बात का वैध कारणों पर आधारित होने का निष्कर्ष आगरे के अधिशासी अभियन्ता श्री एम० फो० ओरटल द्वारा पहले की गई खोज से निकाला जा सकता है। उनको आगरे के किले में जहाँगीर-महल के निकट, भूमि में, नींव की दीवार का एक भाग प्राप्त हुआ जो उनके विचार में जैन या बौद्ध चिह्न था और वे जिसको असंदिग्ध रूप में उस या उन कुछ अति प्राचीन भवन या भवनों के खण्डहर समझते हैं जो किले के स्थान पर पहले विद्यमान थे—यह बात इस किले को अकबर द्वारा अपने आवास के लिए चुनने से लगभग कई हजार वर्ष पहले की ही होगी। आगरे के सम्बन्ध में

१. कीन्स, हैंड बुक फार विजिटस टु आगरा एण्ड इट्स नेबरहुड, पृष्ठ सं० १ से ३ तक।

अभिलिखित उल्लेख सर्वप्रथम फारसी के कवि सलमान का है जो ईसा पश्चात् ११३४ में मरा। तारीखे-दाऊदी का रचनाकार कहता है कि कंस (कनिष्क) के दिनों से एक हिन्दू सुदृढ़ गढ़ चला आ रहा आगरा महमूद गज़नी द्वारा इतनी बुरी तरह विनष्ट किया गया था कि यह सिकन्दर लोधी के शासन काल के समय तक एक महत्त्वहीन गाँव ही बना रहा। जब महमूद ने लगभग १०१८ में आगरे को लूटा, तब उसने वहाँ की एक सुदृढ़ गढ़ी विनष्ट कर दी जो शक कनिष्क के समय से, जिसका राज्यकाल ईसवी सन् की पहली शताब्दी में था, चली आ रही थी। तारीखे-दाऊदी के अनुसार उस किले को कनिष्क द्वारा राज्य कारावास के रूप में उपयोग में लाया गया था। इससे भी आगे इतिहास और परम्परा दोनों के ही द्वारा विश्वास दिलाया जाता है कि आगरा-स्थित गढ़ी अनेक बार नष्ट की गई थी। किन्तु अनुमान है कि यह विनाश-कार्य सदैव एक ही स्थल पर हुआ था, और इन किलों तथा अकबर द्वारा बनवाए गए इस किले के बीच परस्पर निस्संदेह सम्बन्ध की ओर ध्यान आकृष्ट किया जाएगा। महमूद द्वारा लूटे जाने के बाद आगरा पुनः प्राचीन महत्त्व को प्राप्त हुआ और लगभग दो शताब्दियों तक मुख्यतः शक्तिशाली चौहान राजपूतों के आधिपत्य में रहा, जिनके प्रधान अजमेर के विशालदेव ने ११५१ में तुंवर राजपूतों को उखाड़ फेंका था और दिल्ली को अपने राज्य में मिला लिया था।"

कीन ने अपनी पुस्तक के पृष्ठ २ पर पदटीप में पर्यवेक्षण किया है; "सलमान के अनुसार, 'आगरे का किला बुत-सिकन्दर (मूर्तिभंजक) कुल-नायक गज़नी के शासक पठान महमूद ने जयपाल से एक अति भयंकर आक्रमण के बाद जीत लिया था।' सुदृढ़ सुरक्षित स्थान के सम्बन्ध में कवि कहता है कि—'धूल भरे गर्द-गुब्बार में दूर से देखने पर किला अत्यन्त डरावना और भव्याकार प्रतीत होता था।' बादशाह जहाँगीर ने इस कविता का उल्लेख अपने स्मृतिग्रन्थ में किया है।"

आइए, हम उपर्युक्त अवतरण का तनिक और अधिक सूक्ष्म विवेचन करें। जैसा कीन ने ठीक ही कहा है, 'आगरा' (अग्र) संस्कृत शब्द है। इसका अर्थ 'प्रथम श्रेणी' का अथवा अग्रसर, आगे बढ़ा हुआ नगर है।

आगरा नगर की एक विशाल सुरक्षा-प्राचीर थी। इसके कुछ भाग तथा कुछ फाटक अब भी ज्यों-के-त्यों खड़े हैं। नगर-प्राचीर के भीतर एक किला था जिसको ईसा पूर्व युग के हिन्दू सम्राट् अशोक ने आवास के लिए और हिन्दू-सम्राट् कनिष्क ने राज्य-कारावास के रूप में उपयोग में लिया था।

वही किला ईसवी सन् १०१८ में भी विद्यमान था। जब नर-संहारक महमूद गज़नी ने इस पर आक्रमण किया था। "उसने वहाँ की एक सुन्दर गढ़ी विनष्ट कर दी"—शब्द भ्रामक है। सबसे पहली बात यह है कि 'विनष्ट' शब्द का अर्थ 'रौंद दिया' या आक्रमणकारी ने अपने धर्मान्ध मुस्लिम उन्माद में हिन्दू मूर्तियों को अपवित्र किया ही है। दूसरी बात यह है कि मध्यकालीन मुस्लिम तिथिवृत्त लेखकों ने प्राचीर परिवेष्ठित नगर का प्राय: 'गढ़ी' के ही रूप में उल्लेख किया है। उनके वर्णनों में गढ़ी शब्द का अर्थ आवश्यकीय रूप से गढ़ी (दुर्ग) न होकर वह नगर है जो विशाल दीवार से घिरा हुआ हो। यह बात हम आगरे के सम्बन्ध में बदायूँनी द्वारा लिखित उद्धरणों से प्रमाणित करेंगे। तीसरी बात यह है कि महमूद गज़नी के पास आगरे के लालकिले जैसे बड़े दुर्ग को समूल नष्ट करने का समय ही नहीं था। वह तो आक्रमण करता, लूट का सामान इकट्ठा करता और भाग जाता था। चौथी बात यह है कि "वहाँ की एक सुदृढ़ गढ़ी विनष्ट कर दी" शब्दों का सन्दर्भ आगरा स्थित किसी भी किलेदार भवन से हो सकता है। जैसा हम जानते हैं, मध्यकालीन युग में सभी भवनों की विशाल दीवारें और उनके चारों ओर बुर्जें हुआ करती थीं। यही सामान्य नमूना था जिसके अनुसार सभी निवास-स्थान, भवन, राजभवन, गढ़ियाँ और नगरियाँ बना करती थीं। स्वयं 'सुदृढ़ गढ़ी' शब्द किसी अपूर्व सुरक्षित स्थान का द्योतक है जहाँ आक्रमणकारी को प्रबल प्रतिरोध का सामना करना पड़ा होगा। यह तो आगरा नगर की परिधि अथवा उपनगरी का स्थान हो सकता था। मध्य-युग में सामान्यत: यदि शत्रुपक्ष नगर में प्रविष्ट हो पाता था तो अन्दर वाले किले जो अधिक सुरक्षित राजमहल होते थे, बिना प्रबल प्रतिरोध ही आत्म-समर्पण कर देते थे और नष्ट होने से बच जाते थे क्योंकि उन्हें बाहर से किसी भी प्रकार खाद्य-सामग्री, शस्त्रास्त्र अथवा बारूद आदि की रसद

प्राप्ति की आशा नहीं रहती थी। इसी कारण तो हम आगरे और दिल्ली के लाल किलों को पूर्णतः अक्षत पाते हैं। यद्यपि इन पर अनेकों आक्रमण हुए थे। पाँचवीं बात यह है कि विजयी होने पर किसी भी मुस्लिम आक्रमण-कारी ने किले को ध्वस्त करने की आत्मघाती कार्यवाही नहीं की क्योंकि उसे स्वयं की सुरक्षा के लिए भी संरक्षणशील स्थान की आवश्यकता थी। उसे भावी आक्रमणकारियों से अपना बचाव करना था। वह अपनी विशाल सेना, दरबारीगणों और अन्य परिचारकों के साथ खुले स्थान पर रहने का साहस ही नहीं कर सकता था। इसमें तो कोई सन्देह नहीं है कि भारत में विपुल संख्या में प्राप्य अन्य भव्य नगरों, किलों, राजमहलों, भवनों, गढ़ियों तथा मन्दिरों में से हजारों निर्माण धूलि में समा गए और आज कहीं भी दिखाई नहीं पड़ते। किन्तु उसका कारण यह था कि वे स्थान तो हिन्दुओं के विरुद्ध बर्बर विदेशी मुस्लिम आक्रमणों में पैशाचिक युद्ध के समय महत्त्वपूर्ण स्थल बन गए थे तथा मुस्लिम बेटों और बापों में, राजाओं और दरबारियों, तथा भाई-भाई में अनवरत लड़ाइयों-झगड़ों की जड़ थे। हिन्दू बाहुल्य समृद्धि तथा कला की यशस्विता और भव्यता के थोड़े-से नमूनों के रूप में ही आज हम ताजमहल, तथाकथित ऐतमाद्दुद्दौला, लालकिले, तथाकथित अकबर, हुमायूँ और सफदरजंग के मकबरों को देख पाते हैं। विडम्बना तो यह है कि वे भी आज इस या उस विदेशी सुल्तान या दरबारी द्वारा निर्मित, असत्य ही बताए जाते हैं।

ब्रिटिश कर्मचारी ओरटल को किले के अन्दर खुदाई में जिन दीवारों की उपलब्धि की चर्चा की जाती है, वे दीवारें उन भवनों की हैं जो किले के भीतर विद्यमान थे किन्तु आक्रमणकारी के विरोध में ध्वस्त हो गए थे अथवा विदेशी आक्रमणकारी द्वारा विजयोपरान्त धार्मिक उन्माद में नष्ट कर दिए गए थे।

बहुत सारे अन्य यूरोपीय इतिहासकारों के समान ही कीन भी झूठी, भ्रामक, विभ्रमकारी धारणाओं के कारण प्रतिवाद का दोषी है। हमने ऊपर जिस पुस्तक का उल्लेख किया है, उसके एक अवतरण में कीन ने एक स्थान पर कहा है, "कंस (कनिष्क) के दिनों से ही हिन्दुओं का एक अति सुदृढ़ स्थान आगरा महमूद गज़नी द्वारा इतनी बुरी तरह नष्ट किया गया था कि

यह (१६वीं शताब्दी के प्रारम्भ में) सिकन्दर लोधी के शासन से पूर्व तक एक नगण्य ग्राम बना रहा था।" केवल कुछ पंक्तियों के बाद ही कीन लिखता है : "महमूद द्वारा लूटे जाने के बाद आगरा पुनः प्राचीन महत्त्व को प्राप्त हुआ और लगभग दो शताब्दियों तक मुख्यतः शक्तिशाली चौहान राजपूतों के आधिपत्य में रहा, जिनके प्रधान अजमेर के विशालदेव ने ११५१ में तुंवर राजपूतों को उखाड़ फेंका था और दिल्ली को अपने राज्य में मिला लिया था।"

इस प्रकार, एक बार इस बात पर बल दिया जाता है कि सन् १०१८ ई० से लगभग ५०० वर्ष तक आगरा एक नगण्य ग्राम मात्र रहा। फिर यह कहा जाता है कि महमूद गजनी के हमले के तुरन्त बाद आगरे को महत्त्व प्राप्त हो गया था। स्पष्टतः, दूसरा कथन सत्य है। दिल्ली, आगरा और ऐसे अन्य हिन्दू नगरों का महत्त्व कभी तिरोहित नहीं हुआ। मुस्लिम त्रासदायक हमलों से, ठीक है, महान् हिन्दू नगरों के नागरिकों को आघात, दुःख, पीड़ा, निर्धनता तथा यातनाओं के सभी प्रकार भोग करने पड़ते थे, तथापि उसके शीघ्र बाद ही जीवन सामान्य हो जाया करता था।

हम यहाँ विश्व-भर में भारतीय इतिहास के विद्यार्थियों और विद्वानों को सावधान, सचेत करना चाहते हैं। उनको दरबारी चापलूसों, खुशामदियों तथा घोर इस्लामियों द्वारा लिखित मुस्लिम तिथिवृत्तों का भाव समझने का अभ्यस्त हो जाना चाहिए। उनको मुस्लिम शब्दावली और वाक्य-समूहों को ठीक से समझने और उनकी व्याख्या करना भी सीख लेना चाहिए। उदाहरण के लिए, जब मुस्लिम तिथिवृत्तों में 'चोर, डाकू, दास, नृत्य-बाला, वेश्या, काफिर, शरारती और उद्दण्डी' जैसे शब्दों का प्रयोग किया जाता है, तब आमतौर से इन विविध अपशब्दों को 'हिन्दू' शब्द के पर्याय के रूप में ही प्रयोग किया गया है। उनको 'हिन्दू' शब्द का प्रयोग करने में लज्जा अनुभव होती थी। अतः, उस शब्द के स्थान पर वे ऊपर लिखी हुई शब्दावली जैसी भाषा का प्रयोग करते थे।

इसी प्रकार, जब मुस्लिम तिथिवृत्त उल्लेख करते हैं कि 'एक मन्दिर गिराया गया और एक मस्जिद बनाई गई' तो उसका कुल अर्थ इतना ही है कि हिन्दू देव-प्रतिमा को भूमि में गाड़ दिया गया था, हिन्दू पुजारी को

इस्लामी-धर्म बदले में दिया था और उसी मन्दिर को मुसलमानी 'नमाज' के लिए इस्तेमाल किया गया था।

इसी भाँति जब मुस्लिम वर्णनग्रंथ उल्लेख करते हैं कि 'ग्राम-मात्र ही था' अथवा 'ग्राम-मात्र ही रह गया था', तो उनका इतना ही आशय होता है कि विदेशी मुस्लिम बादशाह उस स्थान को अपनी राजधानी के रूप में उपयोग में नहीं ला रहा था अथवा अपना दरबार वहाँ नहीं लगाता था। (स्पष्टत: भ्रामक मुस्लिम विवरणों पर आधारित) कीन के वर्णन में विसंगति का उल्लेख करके हम दर्शा ही चुके हैं कि आगरा ग्राम-मात्र रह जाने के सम्बन्ध में मुस्लिम दावे पूरी तरह अर्थहीन हैं। उन वर्णनों का इतना ही अर्थ लगाना चाहिए कि महमूद गज़नी के क्रूर और लुटेरे हमलों से विवश होकर आगरे के हिन्दू निवासियों ने कुछ समय के लिए आगरा त्याग दिया था। स्वाभाविक रूप में ऐसा परित्याग निर्जनता को जन्म देता है परन्तु नगर का वास्तु-कलात्मक वैभव तो केवल इसी कारण ताश के पत्तों की भाँति विनष्ट नहीं हो जाता। जब लोग वापस आते, नगर का जीवन फिर चहल-पहल से भर जाता था। यह स्थान ग्राम-मात्र कैसे हो सकता था जब आज भी इसमें एक प्राचीन विशाल दीवार, प्रभावशाली नगर-द्वार, भव्य भवन, राज्योचित मन्दिर और अतिविशाल किला है। अत: आवश्यक है कि पाठकों को भ्रामक वाक्यों, शब्दों के जालों से आत्मरक्षा के उपाय स्वयं ही करने पड़ें।

इसी बात को अकबर के मिथ्याचारी स्वयं नियुक्त दरबारी तिथि-वृत्तकार अबुलफज़ल की रचनाओं से भी प्रदर्शित किया जा सकता है। अबुलफज़ल कहता है कि जब तक अकबर आगरे से अपना दरबार फतहपुर सीकरी नहीं ले गया था, तब तक वह (फतहपुर सीकरी) 'मात्र ग्राम' थी। वह उन्मादी वाक्यावली केवल यह अर्थ-द्योतन करती है कि वह मुस्लिम बादशाह तब तक अपना दरबार फतहपुर सीकरी में नहीं लगा रहा था। यदि इतिहास का कोई असावधान विद्यार्थी या आकस्मिक पाठक अबुलफ़ज़ल की प्रवंचक वाक्यावली से यह भावार्थ लगाता है कि अकबर के दरबार-स्थानान्तरण से पूर्व फतहपुर सीकरी में कोई भवन और राजमहल नहीं थे, तो उसे दु:खी ही होना पड़ेगा। तथ्यत:, यदि फतहपुर सीकरी में मुस्लिम

आधिपत्य के योग्य राजमहल और मन्दिर न रहे होते तो अकबर ने अपना शाही मुस्लिम दरबार भी किसी सुनसान अथवा कच्ची झोपड़ियों वाले स्थान पर स्थानान्तरित न किया होता। तथ्य तो यह है कि वैसी हालत में तो एक गाँव का वह 'फतहपुर सीकरी' जैसा भव्य राजपूत नाम भी न चला होता। 'पुर' प्रत्यय स्वयं एक ऐश्वर्यशाली भव्य नगरी का द्योतक है। महमूद गज़नी से प्रारम्भ हुए बारम्बार मुस्लिम त्रासदायक हमलों के कारण वह भव्य हिन्दू नगर सुनसान हो गया होगा, परन्तु इसका हिन्दू वास्तु-कलात्मक धन-वैभव बना रहा जिससे अकबर जैसे संयोगी मुस्लिम विजेता के मन में उस स्थान को अपने वश में करने का प्रलोभन उत्पन्न हुआ होगा।

हम स्वयं अपने समय में भी कह सकते हैं कि फतहपुर सीकरी एक 'ग्राम मात्र' है किन्तु उसका यह अर्थ नहीं है कि उसमें भव्य हिन्दू राजमहल संकुल विद्यमान नहीं है। हमारा कहना यह है कि इस समय वह प्राचीन नगर पूर्णतः उपेक्षित पड़ा है और आज सरकार द्वारा एक महत्त्वपूर्ण केन्द्र के रूप में प्रयुक्त नहीं हो रहा है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट हो जाना चाहिए कि आगरा कभी भी ग्राम मात्र नहीं था। यह एक महान् नगर रहा है जिसका इतिहास हमको (प्रचलित गणनानुसार ईसा पूर्व तीसरी शताब्दी के) सम्राट् अशोक के काल से अपने समय तक प्राप्त होता है।

इस प्रकार, आगरे के लालकिले का पिछले २००० वर्षों का अनवरत इतिहास प्राप्त है। इस बात की खोज करनी पड़ेगी कि इसका निर्माण अशोक द्वारा अथवा अन्य किसी पूर्वकालिक हिन्दू राजा द्वारा किया गया था। किन्तु हमने जो कुछ विवेचन ऊपर किया है उससे इस पुस्तक के प्रयोजनार्थ यह सिद्ध करने के लिए पर्याप्त है कि दर्शक को आज आगरे में दिखाई पड़ने वाला लालकिला वही किला है जिसमें अशोक, कनिष्क, जयपाल और पृथ्वीराज जैसे महान् हिन्दू सम्राट् निवास कर चुके है। वही प्राचीन हिन्दू किला अभी भी बना हुआ है। यह कभी ध्वस्त नहीं हुआ था।

यह निष्कर्ष ऊपर दिए हुए कीन के अपने कथन से ही स्पष्ट है। वह कहता है—"यह बात इतिहास और परम्परा से भी पुष्ट होती है कि आगरा स्थित किला अनेक बार नष्ट हुआ था, किन्तु मान्यता है कि सदैव एक ही

स्थान-विशेष पर, किन्तु इन किलों और अकबर द्वारा निर्मित वर्तमान किले के बीच निसंदिग्ध सम्बन्ध की ओर ध्यान बाद में आकर्षित किया जाएगा।''

जैसा हम पहले ही देख चुके हैं, मुस्लिम वर्णनों में उल्लेख किए गए 'ध्वस्त' शब्द का (जिसे कीन जैसे पश्चिमी इतिहासकारों ने बारम्बार दुहराया है) अर्थ केवल 'पद-दलित' (और अनेक बार 'विजित') है।

उपर्युक्त अवतरण में यह बात भी ध्यान रखनी चाहिए कि 'इतिहास और परम्परा' शब्दों का इतना अस्पष्ट अर्थ बोधन है कि व्यंग्यार्थ यह होता है कि आगरे के लालकिले के बारे में किसी को भी स्पष्ट ज्ञान है ही नहीं। जो कुछ है भी वह केवल अस्पष्टवादिता एवं गर्वोक्ति, संदिग्ध किंवदन्ती और बेतहाशा उग्र इस्लामी दावे हैं। कीन द्वारा प्रयुक्त अन्य शब्द 'मान्यता' है जिससे भी ध्वनित यही होता है कि सभी इतिहासकार आगरे के लालकिले के सम्बन्ध में 'इतिहास' की कल्पना झूठी धारणाएँ और मनगढ़न्त बातों पर करते रहे हैं।

''सदैव एक ही स्थल-विशेष पर (निर्मित)'' वाक्यांश का निहितार्थ इस बात की पूर्ण स्वीकृति है कि वही प्राचीन हिन्दू किला आज भी हमारे युग तक ज्यों-का-त्यों चला आ रहा है। अन्यथा एक किला बारम्बार नष्ट और भू-ध्वस्त हो जाने पर भी उसी स्थल और परिरेखा पर कैसे विद्यमान हो सकता है?

यह भी स्मरण रखना चाहिए कि हम आज किले को जिस रूप में देखते हैं, वह पूर्णतः हिन्दू सजावट है। अनुवर्ती धर्मान्ध, मध्यकालिक मुस्लिम आक्रमणकारी, बन्दी करने वाले, अपहरणकर्ता और आधिपत्यकर्ता उसी किले को बारम्बार, एक ही स्थल पर, उसी परिरेखा पर किस प्रकार बना पाते और साथ ही इसका रूप और अलंकरण भी पूर्णतः हिन्दू प्रदान कर देते?

कीन की ''इन किलों और अकबर द्वारा वर्तमान किले के बीच निसंदिग्ध सम्बन्ध'' शब्दावली भी निहित स्वीकृति है कि प्राचीन हिन्दू किला, उसी स्थान व उसी नींव पर बने अन्य मुस्लिम शासकों के काल्पनिक किले और वर्तमान किला जिसे असत्य ही अकबर द्वारा निर्मित विश्वास किया जाता है, सब एक और वही किले हैं; तथा जबकि वही २००० वर्ष

प्राचीन हिन्दू किला अब भी आगरा में विद्यमान है, इतिहासकारों को झूठे ही यह विश्वास करा दिया गया है कि यह किला बारम्बार बना है। यदि यह किला विभिन्न जातियों; राष्ट्रीयताओं, अभिरुचियों, सामर्थ्य तथा स्रोतों-साधनों वाले बादशाहों द्वारा बारम्बार और पुनर्निमित हुआ तो ईसा पूर्व शताब्दी में बने मूल हिन्दू किले का सम्बन्ध लगभग १८०० वर्ष बाद अकबर द्वारा बनाए गए किले से और इन दोनों किलों के बीच की अवधि में बने किलों से कैसे बना रह सकता था ?

हमने ऊपर जिस पद-टीप का उल्लेख किया है, उसमें स्वीकार किया गया है कि सलमान के अनुसार किले को महमूद गज़नी ने जयपाल से जीत-कर अपने अधिकार में ले लिया था। यह कभी नष्ट नहीं हुआ था।

अब हम पुनः आगरा-नगर और यहाँ के किले के सम्बन्ध में कीन द्वारा प्रस्तुत विवरण की ओर अपना ध्यान लगाते हैं। वह कहता है[२]—"अकबर पहली बार आगरा सन् १५१८ में आया, और कुछ समय बाद ही बादलगढ़ के प्राचीन किले को चला गया।"

पाठक को ध्यान रखना चाहिए कि बादलगढ़ एक हिन्दू शब्दावली है न कि कोई इस्लामी शब्दावली। यदि अशोक और कनिष्क के काल का हिन्दू किला बारम्बार नष्ट किया गया था और मुस्लिम विजेताओं द्वारा निर्मित किलों द्वारा हटा दिया गया था, तो इसका 'बादलगढ़' हिन्दू नाम किस प्रकार बना रहा ! एक बात और भी ध्यान रखने की है कि कीन इस किले को 'प्राचीन किला' संदर्भित करता है। (जैसा अंधविश्वासपूर्वक या धोखे के कारण कहा जाता है) यदि यह किला कुछ वर्ष पूर्व सिकन्दर लोधी अथवा सलीम शाह सूर द्वारा बनवाया गया होता, तो इसको 'नया', न कि 'प्राचीन' किला, पुकारा गया होता। साथ ही इसका हिन्दू नाम न रहा होता। यह बात भी सिद्ध करती है कि अकबर के अधीन वही प्राचीन हिन्दू किला था जिसमें अशोक और कनिष्क जैसे प्राचीन हिन्दू सम्राट् निवास कर चुके थे। इसी प्रकार महमूद गज़नी, सिकन्दर लोधी और सलीम शाह सूर तथा अन्य अनेक मुस्लिम विदेशी विजेतागण भी उसी प्राचीन किले में रह चुके थे

२. कीन्स हैंड बुक, वही, पृष्ठ सं० १४।

यद्यपि उग्रवादी दरबारी चापलूसों ने प्रत्येक मुस्लिम बादशाह को उसी किले को फिर-फिर से बनवाने का यशगान किया है।

कीन द्वारा लिखित अवतरण में से उपर्युक्त वाक्य से स्पष्ट है कि अकबर के समय आगरे का हिन्दू प्राचीन लालकिला 'बादलगढ़' के रूप में पुकारा जाता था। यहाँ हम पाठकों को साग्रह सूचित करना चाहते हैं कि वह किला आज भी हमारे अपने ही युग में 'बादलगढ़' कहलाता है। कोई भी दर्शक मार्गदर्शकों से पूछे तो वे लोग 'बादलगढ़' नाम से पुकारे जाने वाले राजभवनों (महलों) की ओर इशारा कर देंगे।(ये राजमहल अमरसिंह फाटक की ओर से प्रवेश करने पर दाईं ओर स्थित हैं।) उन लोगों का कहना है कि इन महलों में चौथी पीढ़ी का मुगल बादशाह जहाँगीर निवास करता था। सम्भव है। किन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि उसने या उसके पिता अकबर ने उसको बनवाया था। यह तथ्य कि 'बादलगढ़' शब्दावली, (जो सन् १५४२ से १६०५ तक) अकबर के समय में किले से सम्बन्धित थी, आज हमारे समय में भी प्रचलित है, प्रमाणित करता है कि अकबर ने भी प्राचीन किले को ध्वस्त नहीं किया अपितु वह उसमें निवास-भर करता रहा।

अत:, स्पष्टत: जब कुछ आगे चलकर कीन लिखता है कि[3], "अनेकों वर्षों तक अकबर अत्यन्त सक्रियता से विद्रोह दबा रहा था⋯वह बारम्बार आगरा गया⋯ऐसे ही अवसरों में एक बार १५६५ में उसने बादलगढ़ को ढाना और उसके स्थान पर आगरे के किले का निर्माण प्रारम्भ किया⋯" तब बिल्कुल स्पष्ट है कि उग्रवादी मुस्लिम वर्णनों से दिग्भ्रमित हो गया है। उसे यह ज्ञान होना चाहिए था कि यदि बादलगढ़ नाम हमारे समय में भी प्रचलित है, तो प्राचीन हिन्दू किला भी अभी विद्यमान है, और यह विश्वास या दावा भ्रमपूर्ण है कि अकबर ने बादलगढ़ को विनष्ट किया तथा उसके स्थान पर, बिल्कुल उसी जगह पर एक किला बनवा दिया।

पाठक को उपर्युक्त अवतरण में एक बात और भी ध्यान में रखनी चाहिए। यदि अकबर आमतौर पर आगरा आता-जाता रहता था तथा

---

३. कीन्स हैंड बुक, वही, पृष्ठ १५।

यदि उसके किले को नष्ट कर दिया था तो किले का पुन:निर्माण होने तक उसका आवास कहाँ होता था ? इतिहास उस वैकल्पिक स्थल की ओर संकेत करने में सक्षम होना चाहिए जो आगरे के लालकिले जितना ही विशाल, भव्य और सुरक्षित हो, जहाँ अकबर विद्रोहियों को कुचलने के लिए नगर में बराबर आता-जाता रहता था। वह किले को गिराकर तथा खुले आकाश के नीचे आवासीय-व्यवस्था करके हत्या या पकड़े जाने का अवसर नहीं देता। यदि वह वास्तव में वर्षों तक किसी अन्य स्थान पर रहा तथा उसने किले को विनष्ट किया तो इतिहास उसके वैकल्पिक निवास-स्थान के बारे में चुप्पी क्यों साधे हुए है ? इसका स्पष्ट अर्थ यह है कि वह दावा, जिसमें कहा जाता है कि अकबर ने बादलगढ़ नष्ट किया और उसके स्थान पर एक अन्य किला बनवाया, दरबारी चाटुकारिता मात्र है तथा उस पर विश्वास नहीं करना चाहिए।

एक बात और भी कही जा सकती है कि दुर्ग-निर्माण कोई हँसी-मजाक की बात नहीं थी जिसे अनवरत विद्रोहों को कुचलने में संलग्न व्यक्ति साथ-साथ कर सकता। विद्रोहों को दबाने में विपुल धन-राशि के साथ-साथ स्वयं शरीर व प्राणों का जोखिम व संकट सदा बना रहता है। क्या कोई बादशाह धन और शान्ति से विहीन होकर भी, तंग होने पर ऐसे किले को व्यर्थ ही नष्ट कर देगा जहाँ उसे सुविधा, सुख और सुरक्षा सभी कुछ उपलब्ध हों ! और यदि वह वास्तव में ऐसा कर बैठा था, तो क्या इतिहास उसके नये स्थान का पता नहीं बताएगा—वह स्थान जहाँ वह स्थानान्तरण करके गया और शाही ताम-झाम के साथ वर्षों ठहरा ! (वह (लगभग ३५ मील दूर) फतहपुर-सीकरी में नहीं ठहर सकता था क्योंकि भ्रामक मुस्लिम लेखाओं—वर्णनों के अनुसार तो फतहपुर-सीकरी का निर्माण ईसवी सन् १५५९ के कुछ पश्चात् ही हुआ था।

हम अब एक बार फिर कीन की पुस्तक पर आ जाते हैं। वह लिखता है[४]—"प्राय: कहा जाता है कि सन् १३५४ में बारूदखाने में विस्फोट के कारण बादलगढ़ ढह गया था किन्तु चूँकि इसमें बाद में इब्राहीम खाँ सूर,

४. कीन्स हैंड बुक, वही, पृष्ठ १५।

सिकन्दर शाह सूर, हुमायूँ, हीमू और स्वयं अकबर रहे थे, अतः इसके विनष्ट होने का वास्तविक कारण बादशाह की इच्छा रही होगी···अत्यधिक महत्त्व की बात यह है कि क्षतिग्रस्त अवस्था का उल्लेख जहाँगीर द्वारा नहीं किया गया है जिसने केवल इतना कहा है कि सन् १५७० में मेरे जन्म से पूर्व मेरे पिता अकबर ने एक प्राचीन किला धूल में मिला दिया था और फिर उसके स्थान पर लाल पत्थर का एक अन्य किला बनवा दिया था।"

उपर्युक्त अवतरण की सूक्ष्म विवेचना आवश्यक है। कीन की इस स्वीकृति का कि 'किले का ढहना प्रायः कहा जाता है' अर्थ यह है कि अकबर द्वारा आगरे के हिन्दू लालकिले को विनष्ट किए जाने का दावा केवल एक कल्पना अर्थात् किंवदन्ती मात्र पर ही आधारित है। यह अफवाह स्पष्टतः दरबारी चापलूसों और खुशामदियों ने विजयी इस्लामी आत्मा को इस भाव से सन्तुष्ट करने के लिए फैलाई थी कि वे और उनके इस्लामी महानुभाव किसी पुराने 'काफिर-किले' में नहीं रह रहे थे। इस प्रकार स्पष्ट है कि अकबर ने किसी पुराने किले का विनाश नहीं किया और इसीलिए उसके स्थान पर अन्य किले का निर्माण नहीं किया।

उपर्युक्त अवतरण में यह भी ध्यान रखना चाहिए कि अकबर द्वारा किले के निर्माण करने के बारे में कीन ने अकबर के अपने दरबारियों अथवा उसके अन्य समकालीन व्यक्तियों द्वारा लिखित साक्ष्य पर विश्वास नहीं किया है अपितु अकबर के पुत्र जहाँगीर द्वारा, अकबर की मृत्यु के बाद लिखी गई बातों पर अपना निष्कर्ष प्रस्तुत किया है। स्वयं अकबर के कम-से-कम तीन दरबारी थे जिन्होंने अकबर के शासन काल के वर्णन लिखे हैं। वे हैं—निजामुद्दीन, बदायूँनी और अबुलफज़ल[५]। कीन को उन सबों की उपेक्षा करने और जहाँगीर द्वारा लिखित किसी विवरण पर आश्रित होने की आवश्यकता क्या और क्यों हुई ?

इस बात की ओर संकेत करते समय हम पाठकों को यह सूचित भी करना चाहते हैं कि आज जिसे 'जहाँगीरनामा' अर्थात् 'जहाँगीर के राज्य काल का जहाँगीर द्वारा लिखित वर्णन' कहा जाता है, वह एक पुस्तक नहीं

५. इन तीनों के लिखे हुए इतिहास-ग्रन्थों के नाम क्रमशः 'तबाकते-अकबरी', 'मंतखावात तवारीख' और 'आईने-अकबरी' हैं।

अपितु कई विभेदकारी पुस्तकें हैं। दूसरी बात जो सामान्य पाठक तथा इतिहास के विद्वान् भी नहीं जानते अथवा उन्होंने जानने की परवाह नहीं की, वह यह है कि जहाँगीरनामा की प्रत्येक पुस्तक प्रारम्भ से अन्त तक झूठ का पुलिन्दा है। इस सम्बन्ध में पाठक तथाकथित जहाँगीरनामा के विभिन्न संस्करणों के बारे में स्वर्गीय सर एच० एम० इल्लियट का समालोचनात्मक पर्यवेक्षण देख लें। फिर भी (अन्य अधिकांश मध्यकालीन मुस्लिम तिथिवृत्तों की ही भाँति) जहाँगीरनामा में समाविष्ट अनेक पाखंड ऐसे हैं जिनको अपनी बिरली अन्तर्दृष्टि एवं सतर्कता के होते हुए भी सर एच० एम० इल्लियट भी फोड़ नहीं पाए। यदि सम्भव होगा तो केवल अत्यन्त सतर्क, सावधान और अनुभवी पाठक को ही मध्यकालीन मुस्लिम तिथिवृत्तों की तह तक पहुँच पाना सम्भव होगा। उनमें किए जाने वाले निश्चय तथा दावे अत्यन्त रूप-परिवर्तित अथवा कूट कथनों से पूर्ण हैं। इस बात का दिग्दर्शन हमने उनकी कुछ सहज अभिव्यक्तियों और उनके निहितार्थों का उल्लेख करके करा दिया है।

सहज अस्पष्टता में ही जहाँगीर इस बात का उल्लेख नहीं करता है कि प्राचीन किला कब और क्यों गिराया गया था, इसमें कितने वर्ष लगे थे, क्या यह उसी नींव पर बनवाया गया था, यह कब बनवाना प्रारम्भ किया गया था तथा इसे पूर्ण होने में कितने वर्ष लगे थे ?

अकबर के अपने शासन काल में तथा उसके पुत्र जहाँगीर के राज्य-काल में इतिहास के ग्रन्थों पर ग्रन्थ लिखे जाएँ और फिर भी उनमें से किसी में भी अकबर द्वारा प्राचीन किला गिराने और नया किला निर्माण करवाने का विवरण न होना स्वयं ही इस बात का स्पष्ट प्रमाण है कि वे दावे झूठे, जाली हैं तथा प्रचलित ऐतिहासिक पुस्तकों ने उनमें विश्वास प्रकट करके भयंकर भूल ही की है।

इस घोर विसंगति की करुणाजनक स्वीकृति कीन के इस पर्यवेक्षण में सन्निहित है। यद्यपि बारूदखाने में विस्फोट के कारण किला असमाधेय रूप में क्षतिग्रस्त हो गया था, तथापि मुस्लिम शाही खानदान पीढ़ियों तक वहीं प्रसन्नतापूर्वक बना रहा। यह स्पष्ट रूप में दर्शाता है कि अकबर के समय में भी प्राचीन हिन्दू-किला पूरी तरह अक्षुण्ण था तथा ऐसा कोई कारण नहीं

था कि वह इसको गिरा दे जबकि उससे पूर्ववर्ती अन्य अनेक मुस्लिम शासक उस किले में निवास करते थे।

कीन ने स्वयं ही अकबर द्वारा किले को गिराने के परम्परागत पाखण्ड को अपर्याप्त माना है और हत-बुद्धि होकर विचार प्रगट किया है कि[६]—"इसके गिराने का वास्तविक कारण यह रहा होगा कि बादशाह ने अपनी इच्छा के अनुरूप पूरा दुर्ग बनाना चाहा होगा। अन्य महत्त्व की बात यह है कि बादलगढ़ की क्षतिग्रस्त व्यवस्था का उल्लेख बादशाह जहाँगीर द्वारा नहीं किया गया है।"

कीन द्वारा उद्धृत एक अन्य समकालीन स्रोत से भी स्पष्ट है कि बादलगढ़ तनिक भी क्षतिग्रस्त नहीं हुआ था अपितु बिल्कुल ठीक हालत में था। कीन का पर्यवेक्षण है[७]—"अबुलफजल अकबरनामा में लिखता है कि शहंशाह ने आगरा को अपने साम्राज्य की राजधानी बनाया और अपने शासन-काल के तीसरे वर्ष में उस गढ़ी को अपना निवास-स्थान बनाया जिसे सामान्यतः बादलगढ़ के नाम से पुकारा जाता था।"

चूँकि अकबर ईसवी सन् १५५६ में बादशाह हो गया था, अतः अबुलफजल के अनुसार अकबर सन् १५५९ में बादलगढ़ में अर्थात् आगरे के लालकिले में रहने लगा था। यदि बादलगढ़ अकबर के आवास योग्य न होता तो अकबर कभी भी वहाँ न रहा होता।

कीन का एक अन्य पर्यवेक्षण प्रचलित ऐतिहासिक पुस्तकों में समाविष्ट इस विश्वास को तुरन्त धराशायी कर देता है कि अकबर ने मनमस्ती में ही बादलगढ़ को गिरवा दिया था और उसके स्थान पर एक अन्य किला बनवाया था। कीन ने अवलोकन किया है[८]—"तबाकते-अकबरी के अनुसार आजमखाँ की हत्या सन् १५६६ में की गई थी, तथापि इस दुर्दान्त दृश्य का साक्षी बादलगढ़ रहा होगा, न कि अकबर का किला, क्योंकि उस किले का निर्माण सन् १५६५ से पूर्व निश्चय ही प्रारम्भ नहीं किया गया था, इसकी दीवारों की नींव भी सन् १५६६ से पूर्व तो किसी भी हालत में पूरी तरह

६. कीन्स हैंड बुक, वही, पृष्ठ १५।
७ कीन्स हैंड बुक, वही, पृष्ठ १४ में पद-टीप।
८. कीन्स हैंडबुक, वही, पद-टीप, पृष्ठ १५।

नहीं भरी गई होगी। यह तथ्य दु:खान्त घटना के वर्णनों के सम्बन्ध में अति महत्त्वपूर्ण है जिसमें कहा गया है कि आज़मखाँ की हत्या अकबर के किले में बने दीवाने-आम या दीवाने-खास में की गई थी, और आधम खाँ (हत्यारा) उसी खुली छत के नीचे फेंक दिया गया था जहाँ वे खड़े थे। यह राजमहल बादलगढ़ में विद्यमान रहे होंगे, किन्तु प्रकट कारणोंवश, वर्तमान किले को आज़मखाँ और आधमखाँ की मौतों से जोड़ने के प्रयास भ्रामक और निरर्थक हैं।"

उपर्युक्त पर्यवेक्षण को स्पष्ट करने के लिए हम उस घटना का कुछ और हवाला प्रस्तुत करते हैं जिसकी ओर कीन ने ऊपर संकेत किया है। अकबर के परिचरों में आज़म खाँ उपनाम अत्गाहखाँ तथा आधम खाँ नामक दो व्यक्ति थे। मुस्लिम दरबारों में अत्यधिक मात्रा में व्याप्त दरबारी प्रतिद्वन्द्विता व शत्रुता के कारण आधमखाँ ने आगरे के लालकिले के एक भाग में आज़म खाँ (उपनाम अत्गाहखाँ) को छुरा घोंपकर मार डाला। यह हत्याकांड दीवाने-आम (सामान्य जन-कक्ष) अथवा दीवाने खास (विशिष्ट जन-कक्ष) में सन् १५६६ ईसवी (अथवा उसके आसपास) में हुआ था। अकबर द्वारा घोषित दण्ड यह रहा कि हत्यारे आधम खाँ को राजमहल की दूसरी मंजिल से नीचे ज़मीन पर फेंक दिया जाए। तभी कीन को आश्चर्य होता है कि यदि किले को सन् १५६५ में नष्ट कर दिया गया था तो यह कैसे सम्भव है कि सम्पूर्ण किले को नष्ट कर देने के एक वर्ष के भीतर ही अर्थात् सन् १५६६ में किले के भीतर राजमहलों की दूसरी मंज़िल से एक हत्यारे को नीचे फेंक दिया गया?

शाही परिचरों को स्वयं किला खाली करने में महीनों का समय लगेगा। फिर किले को ध्वस्त करने में भी वर्षों की अवधि बीत जाएगी। उसके बाद, एक नई नींव खोदना और सैकड़ों भवनों वाले एक पूर्ण किले को बनाने में तो वर्षानुवर्ष—सम्भवत: पूर्ण जीवन-काल, यही क्या, अनेकों पीढ़ियाँ बीत जाएँगी। और फिर भी, किसी प्रकार मुस्लिम तिथिवृत्त लेखन के चमत्कार से एक ही वर्ष में किला पूर्णत: नष्ट कर दिया जाता है और दूसरे ही वर्ष अपने आलंकारिक बहु-मंजिले शानदार भवनों सहित यह किला पुन:निर्माण हो जाता है, अकबर वहाँ निवास करने आता है, दरबारी परस्पर हत्या-कार्य

में लग जाते हैं, हत्यारे को दूसरी मंज़िल से फेंक दिया जाता है—यह सभी कार्य १२ मास या उतनी ही अवधि में हो जाता है। यह तो इतनी अतिशयोक्तिपूर्ण बात है जितनी 'अरेबियन नाइट्स' की कथाओं से भी प्राप्त नहीं होगी।

कीन को आश्चर्य होना ठीक ही है कि जब सन् १५६६ तक दीवारों की नींवें भी नहीं भरी गई होंगी, तब किसी भी व्यक्ति को ऊपर से नीचे कैसे फेंका जा सकता था? स्पष्ट है कि कीन सत्य बात के अति निकट तक पहुँच गया था। वह उसी के चारों ओर समीप ही था। वह उसको ग्रहण कर सकता था। किन्तु अनिच्छुक तीसरा पक्ष होने के कारण सत्य उससे ओझल हो गया। वह उसके इतने निकट होते हुए भी बहुत दूर रह गया। उसे अपने पद-टीप में कहना चाहिए था कि यदि किला सन् १५६५ में नष्ट कर दिया गया था तो किसी आदमी को ऊपरी मंज़िल से नीचे नहीं फेंका जा सकता था; इसलिए यह दावा, कि आगरे का हिन्दू लालकिला (बादलगढ़) कभी अकबर द्वारा विनष्ट किया गया था, एक उग्रवादी इस्लामी गप्प-मात्र है। चूँकि कीन को अपनी पद-टीप उन पर्यवेक्षण के साथ पूर्ण करने की अन्तर्दृष्टि न थी, यह कार्य हमें करना है। फिर भी हम कीन के अत्यन्त आभारी हैं कि उसने हमें इतनी विपुल साधन-सामग्री उपलब्ध कर दी।

कीन इस बारे में भी अपना आश्चर्य ठीक ही अभिव्यक्त करता है कि प्राचीन हिन्दू लालकिले में दीवाने-आम (सामान्य जन-कक्ष) और दीवाने-खास (विशिष्ट जन-कक्ष) आज जैसे ही थे कि पूर्वकालिक हिन्दू किले को सन् १५६५ में किस प्रकार गिराया जा सकता था और किस प्रकार केवल १२ मास की थोड़ी-सी अवधि में ही उसी के स्थान पर अभिनव, अकबर का नया किला पूर्ण ठाठ-बाट से बन सकता था।

तथ्यतः, वह विवरण हमारे उस विश्वास की और भी पुष्टि करता है कि आज आगरे में लालकिले के रूप में जो कुछ दर्शक को देखने को मिलता है, वह २००० वर्ष प्राचीन वही हिन्दू किला है जिसमें अशोक और जयपाल, विशालदेव और पृथ्वीराज निवास कर चुके थे। वही किला किसी समय मध्यकालीन-युग में 'बादलगढ़' के नाम से पुकारा जाने लगा था। आज भी वही बादलगढ़ नाम इस किले (अथवा इसके एक भाग) के साथ

जुड़ा हुआ है। इसी प्रकार हमें कीन से ज्ञात होता है कि बादलगढ़ में दीवाने-आम और दीवाने-खास बने हुए थे। आगरे के लालकिले में वे प्रसिद्ध महा-कक्ष आज भी विद्यमान हैं। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि आज हम जिस लालकिले को देखते हैं, वह प्राचीन बादलगढ़ ही है। इसलिए यह स्पष्ट हो जाना चाहिए कि अकबर ने किसी हिन्दू किले को गिराया नहीं, जैसा सामान्यतः विश्वास किया जाता है, बल्कि उसे अपने रहने के उपयुक्त स्थान के रूप में उपयोग में लिया।

आगरा और उसके आस-पास का स्थान राजपूत-भवनों, राजमहलों, दुर्गों, किलों और मन्दिरों से भरा-पड़ा था—इस तथ्य का प्रगटीकरण कीन के एक अन्य पर्यवेक्षण से भी हो जाता है। वह कहता है[९]—"परम्परागत उल्लेख के अनुसार अन्य राजपूत भी थे जो आगरे से अधिक दूर नहीं थे, जैसे फतहपुर-सीकरी में सीकरवाड़ और किरावली में मोरिस लोग।"

हम कीन के पर्यवेक्षण का पूर्ण समर्थन करते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि इसका पूर्ण अर्थ इतिहासकारों की समझ में नहीं आ पाया। ऊपर कहे गए कीन के पर्यवेक्षण से स्पष्ट है कि फतहपुर-सीकरी का राजमहल-संकुल भी, जो व्यर्थ ही अकबर के नाम कर दिया जाता है, अपहृत सम्बन्ध सीकर-वाड़ राजपूतों से है। आज दर्शक को फतहपुर-सीकरी के नाम से दिखाई देने वाला वह शानदार राज्योचित नगर राजपूतों के सीकड़वाड़-कुल की गद्दी था। इसी प्रकार (आगरा से उत्तर दिशा में छः मील दूर) सिकन्दरा में आज जिसे अकबर का मकबरा समझा जाता है, वह स्थान तथा उसके चारों ओर राजकीय अवशेष अन्य राजपूती नगर के भाग थे। गोवर्धन, भरतपुर, कन्वाहा और किरावली तथा उसके आसपास के कई अन्य स्थानों पर भी उसी प्रकार महान् राजकीय नगर थे। तथ्य तो यह है कि उत्तरांचल कश्मीर से लेकर नीचे कन्याकुमारी तक सम्पूर्ण भारत ही शानदार और विस्तृत भवनों, विशालाकार भव्य संरचनाओं से सुशोभित था। क्रूर और बर्बर मुस्लिम आघात के ११०० वर्षों में इन संरचनाओं की बहुत बड़ी संख्या विनष्ट या पूर्णतः ध्वस्त हो गई थी जिससे हिन्दुस्तान भंग अवशेषों, गरम

९. पदटीप, वही, पृष्ठ ३।

लूओं वाले मैदानों, या पंकिल मढ़ैयों तथा दुर्गन्धपूर्ण घने क्षेत्रों वाला भूखंड बन गया।

बादलगढ़ के मूल निर्माता के बारे में अन्य कल्पित-कथाओं की ओर संकेत करते हुए कीन ने लिखा है[१०] —"परम्परा के अनुसार एक राजपूत सरदार बादलसिंह को इस बात का श्रेय दिया जाता है कि उसने अपने नाम पर बादलगढ़ नामक किले का निर्माण किया था। यह पूर्णतः सिद्ध बात है कि जब बहलोल लोधी ने इस पर कब्ज़ा किया, तब आगरे में एक गढ़ था। (सिकन्दर लोधी अपने पिता बहलोल की गद्दी पर सन् १४८८ में बैठा था।) सिकन्दर सन् १५०२ में अपना दरबार आगरा ले गया था। सिकन्दर लोधी ने एक नगर बनाया, बसाया कहा जाता है, और आगरे के सम्मुख यमुना के वाम-तट पर कुछ अवशेष उसी के एकमात्र खण्डहर कहे जाते हैं। उसे आगरा में एक किला बनाने का भी श्रेय दिया जाता है इतिहासकारों द्वारा अकबर के काल तक उल्लेखित एकमात्र किला तो बादलगढ़ ही है, और यदि सिकन्दर लोधी ने यमुना के किसी भी तट पर कोई किला बनवाया होता तो स्वयं ही निश्चित रूप में इसके कुछ चिह्न स्पष्ट दृष्टिगोचर हो जाते।"

कीन द्वारा उपर्युक्त पर्यवेक्षण भी अत्यन्त उद्बोधक है। यह प्रदर्शित करता है कि किस प्रकार मुस्लिम उग्रवादी ने प्रत्येक इस्लामी शासक को नगरों और किलों के निर्माण का श्रेय दिया है। किन्तु दुर्भाग्यवश, इतिहासकारों को सिकन्दर लोधी के तथाकथित नगर व आगरे के किले का कोई भी चिह्न लक्षित नहीं हो पाया है। दूसरी ओर उन लोगों को हिन्दू किले का उल्लेख बारम्बार मिल जाता है। यद्यपि हम देखते हैं कि शताब्दियों की अवधि में लगभग दर्जन भर मुस्लिमों का उल्लेख आगरे के लालकिले के निर्माताओं अथवा पुनर्निर्माताओं के रूप में किया गया है, तथापि हमें यह भी स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है कि इतिहासकार लोग अनेक बार हिन्दू किले के उल्लेख के बारे में भारी भूल कर जाते हैं चाहे यह अशोक और कनिष्क अथवा तुलनात्मक रूप में परवर्ती बादलसिंह हो। जिस-तिस प्रकार किले के हिन्दू मूल का भूत सभी यूरोपीय और मुस्लिम इतिहास-लेखकों पर चढ़ा

१०. वही, पृष्ठ ५।

रहता है यद्यपि उन्होंने किले के हिन्दू मूलक होने के सम्बन्ध में अपनी आँखें बन्द रखने के भरसक प्रयत्न किए हैं और वे झूठे ही विश्वास करते हैं अथवा यह सिद्ध करना चाहते हैं कि अनेक पीढ़ियों तक यह किला विदेशी मुस्लिमों द्वारा एक-के-बाद-एक ध्वस्त किया जाता रहा और फिर-फिर बनवाया जाता रहा।

इसी प्रकार का एक विवरण इसका निर्माण-श्रेय बादलसिंह को देता है। वह कौन था, प्रतीत होता है कि किसी को ज्ञात नहीं है। सम्भवतः बादलगढ़ का नाम किसी व्यक्ति के साथ सम्बद्ध करना था, इसीलिए एक कल्पित बादलसिंह की काल्पनिक-सृष्टि कर ली गई होगी। इतिहास की यह दुःखद स्थिति है। मध्यकालीन इतिहास ऐसी अनियमित, अव्यवस्थित कानाफूसी की बालू-रेत पर आधारित है। मध्यकालीन इतिहास को विदेशी मुस्लिम और परवर्ती ब्रिटिश-शासन में निराधार कल्पनाओं पर टिका रहने दिया गया है।

हम यह प्रदर्शित करने के लिए साक्ष्य आगे चलकर प्रस्तुत करेंगे कि मध्यकाल में बादलगढ़ शब्दावली इतनी प्रचलित एवं सामान्य थी कि यह लगभग प्रत्येक किले के साथ जुड़ गई थी, विशेष रूप से कम-से-कम उत्तरी भारत में। स्वतः स्पष्ट है कि ऐसे बादलसिंह की कल्पना नहीं की जा सकती जो विशाल क्षेत्र में सभी स्थानों पर एक-एक किला बनाए। इसी प्रकार आगरा में लालकिले को दिया गया बादलगढ़ नाम भी किसी बादलसिंह से प्रारम्भ हुआ नहीं कहा जा सकता। इस बात का अन्वेषण किया जाना चाहिए कि अनेकों किलों के साथ बादलगढ़ नाम किस प्रकार और क्यों संयोज्य हो गया। हम यहाँ इतना ही कहेंगे कि यह एक सामान्य शब्दावली होने के कारण ऐसी कल्पना करना तो अनुचित होगा कि बादलगढ़ नाम के किले—गढ़—का आदेश किसी बादलसिंह द्वारा ही दिया जाता था। हम यहाँ जिस बात का संकेत करना चाहते हैं वह यही है कि दर्शक आज जिस लालकिले को आगरे में देखता है, वह हिन्दू किला ही है जो कम-से-कम (तीसरी शताब्दी ईसा पूर्व से) अशोक-काल से चला आ रहा है। अतः यह कम-से-कस २१०० वर्ष पुराना है। मध्यकालीन-युग में बादलगढ़ नाम जिस-तिस प्रकार इससे जुड़ गया। वह नाम जो मध्यकालीन युग में सम्पूर्ण किले

का द्योतक था, अब दाईं ओर वाले इसके राजमहलों से जुड़ा हुआ है।

अब दीवाने-आम और दीवाने-खास जैसे इस्लामी नामों से जाने जाते इसके भव्य, विशाल हिन्दू अंश निर्माण-काल से ही बादलगढ़ के भाग रहे हैं। जिस प्रकार मुस्लिम आक्रमणकारियों ने बन्दी हिन्दुओं को मुस्लिम नाम अंगीकार करने के लिए बाध्य किया उसी प्रकार किलों और उनके भीतरी भाग में बने विभिन्न अंशों सहित विजित हिन्दू भवनों पर भी इस्लामी नाम थोप दिए गए थे, झूठे ही जोड़ दिए गए थे।

अध्याय ३

शिलालेख

मध्यकालीन भवनों के दर्शक, जो इस्लामी शब्दावली को उन भवनों पर उत्कीर्ण पाते हैं, इस विश्वास के साथ वापस लौटते हैं कि वे शिलालेख उन भवनों के मुस्लिम-मूलक होने के सत्य प्रमाण हैं। यह बड़ी भारी गलती और भ्रांत-धारणा है। इतिहास के विद्यार्थी-गण और विद्वान् लोग भी उस कपट-रचना के शिकार हो गए हैं।

उन लोगों ने देखा होगा कि वन-विहारियों द्वारा अनेक नामों और असंगत बातों से वन-विहार-स्थल प्रायः पूरी तरह गोद दिए जाते हैं। उन बार-बार भिन्न-भिन्न लिखावटों से यह निष्कर्ष निकालना क्या ठीक होगा कि उस स्थान के प्रारम्भकर्त्ता अर्थात् निर्माता, संस्थापक या बनाने वाले वे व्यक्ति ही थे। दूसरी ओर इसका विपरीत निष्कर्ष ही बिल्कुल ठीक होगा कि जिन लोगों ने असंगत लेखन-कार्य से सम्पत्ति की शोभा नष्ट की थी, वे तो अनुत्तरदायी मनमौजी लोग थे जिनको अन्य लोगों की सम्पत्ति को खराब करने में कोई शर्म, संकोच, लिहाज नहीं था। कोई भी वास्तविक स्वामी, निर्माता या संस्थापक ऊल-जलूल बातों को लिखकर अपनी सम्पत्ति को कभी विद्रूप नहीं करता है। इसके विपरीत, वह तो उन लोगों को दूर भगाने के यत्न करता है जो उसके भवन पर पर्चे चिपकाने, असंगत नारों से या भद्दे विज्ञापनों से उसके भवन को विद्रूप करने आते हैं।

मध्यकालीन भवनों पर मुस्लिम-लेखनकार्य यथार्थ रूप में इसी प्रकार का है। प्रायः किसी भी स्थान पर मध्यकालीन भवनों पर लगे हुए इस्लामी-शिलालेखों में किसी विशेष भवन की निर्मिति या संरचना का दावा नहीं किया गया है। तथापि, सभी मध्यकालीन भवनों पर अवश्य ही प्राप्य

इस्लामी-लिखावट की प्रचुर मात्रा दृष्टिगोचर होती है। जिस सिद्धान्त का प्रतिपादन हमने ऊपर किया है, उसके अनुसार तो इस्लामी पुनःलेखन-कार्य का सुनिश्चित प्रतिकूल निष्कर्ष असंदिग्ध-रूप में यही होना चाहिए कि उनको लिखने वाले निर्माता नहीं थे। यह निष्कर्ष अन्य ऐतिहासिक साक्ष्य से भी पुष्ट होता है।

व्यावहारिक उदाहरणों के रूप में हम ताजमहल और फतहपुर-सीकरी राजमहल-संकुलों को प्रस्तुत करते हैं। ताजमहल पर्याप्त फारसी-शब्दावली लिख देने से विद्रूप कर दिया गया है। किन्तु कहीं भी दावा नहीं किया गया है कि शाहजहाँ ने ताजमहल बनवाया था। इसी प्रकार फतहपुर सीकरी के भवनों में भी अनेक शिलालेख गढ़े हुए हैं किन्तु उनमें से किसी में भी दावा नहीं किया गया है कि यह नगरी अथवा इसका कोई भी भवन अकबर या सलीम चिश्ती द्वारा बनवाया गया था—जैसा कि प्रचलित ऐतिहासिक और सरकार-प्रेरित पर्यटक-साहित्य द्वारा असत्य ही घोषित किया जा रहा है।

यदि कोई भी स्वामी—निर्माता अपना शिलालेख छोड़ेगा, तो वह निरर्थक बातें नहीं करेगा। शिलालेख साफ-साफ और सीधे शब्दों में घोषित करेगा कि इसे किसने बनाया, किस उद्देश्य से बनाया, इसमें कितना समय लगा, इसकी रूपरेखा क्या थी और कार्य करने वाले व्यक्ति कौन थे। ऐसे ही कुछ संगत विवरण उसमें होंगे। किन्तु जब शिलालेख में ऐसे कुछ विवरणों के स्थान पर तुच्छ और असंगत बे-सिर-पैर की बातें समाविष्ट हों तो उसका यह अर्थ है कि शिलालेखक उस भवन का अपहरणकर्त्ता, भ्रष्टकर्त्ता और छेड़छाड़ करने वाला था, न कि उसका मालिक। उदाहरण के लिए, फतहपुर-सीकरी के शिलालेखों में गुजरात और खान देश पर अकबर की विजयों का, जीवन की संक्रमणशीलता पर आडम्बरी उपदेशों का तथा फर्श पर चमक लाने का वर्णन है। इन असंगत उत्कीर्णांशों से यह निष्कर्ष निकालना तो दूर रहा कि अकबर फतहपुर-सीकरी का अपहारी मात्र था, इतिहासकारों ने गुजरात और खान देश पर उसकी विजयों के सन्दर्भों का अर्थ यह लगा लिया है कि अपनी उन विजयों की स्मृति-स्वरूप ही अकबर ने उस द्वार को बनवाया था, जिस पर वे शिलालेख मिलते हैं।

इतिहासकारों को ऐसा निष्कर्ष निकालने का कोई अधिकार नहीं था।

यह निष्कर्ष तर्क और साक्षी-नियम का स्पष्ट उल्लंघन है। इस सबके विपरीत, उनको उलटा ही निष्कर्ष निकालना चाहिए था कि चूँकि अकबर ने फतहपुर-सीकरी की दीवारों को असंगत पुनर्लेख द्वारा विद्रूप ही किया था, अतः निश्चित बात यह है कि वह इसका निर्माता नहीं था। इस सिद्धांत को ध्यान में रखकर उन सभी शिलालेखों की पुनः समीक्षा की जानी चाहिए जो उन सभी मध्यकालीन भवनों के सम्बन्ध में हैं जिनका झूठा श्रेय मुस्लिमों को अंधाधुंध दिया जाता है। जैसा कि इतिहासकारों द्वारा मनमाने ढंग से निराधार ही विश्वास किया जाता है, यदि अकबर ने सचमुच ही फतहपुर-सीकरी के बुलन्द दरवाजे को अपनी खान देश और गुजरात की विजयों की स्मृति में बनवाया होता तो वह उसका उल्लेख करने में संकोच क्यों करता! यदि वह इतना संकोची और निरहंकार था तो उसने उन शिलालेखों में उन विजयों की इतनी शेखी न बघारी होती, इन पर इतराया न होता।

साधारण दर्शक-गण, जिनके पास समय, धैर्य, साधन तो होता ही नहीं, इस्लामी शिलालेख का कूटार्थ निकालना, पढ़ना और हृदयंगम करने की जानकारी भी जिनको नहीं होती, उन्हीं शिलालेखों को उन भवनों का इस्लामी-मूलक होने का पर्याप्त साक्ष्य मान लेते हैं। हम पहले ही स्पष्ट कर चुके हैं कि इस प्रकार का निष्कर्ष निकालना कितनी बड़ी भूल है।

आगरे में लालकिले को देखने वाले दर्शक भविष्य में भी इसी प्रकार जाल में न फँस जाएँ—इस उद्देश्य को ध्यान में रखकर ही हम इस अध्याय में उन सभी इस्लामी शिलालेखों को उनके समक्ष अवलोकनार्थ प्रस्तुत करना चाहते हैं जो लालकिले में उत्कीर्ण हैं। हम उनके सन्दर्भ में उनके लिए सिद्ध करना चाहेंगे कि उनमें से किसी एक में भी (सिवाय एक के) किसी भी सुलतान या बादशाह ने किसी भी भवन निर्माण का दावा नहीं किया है।

(सिवाय एक के) किसी भी मुस्लिम का किसी भी निर्माण-कार्य का दावा न कर सकना उचित ही था। क्योंकि उसके सभी समकालीन व्यक्तियों को भली-भाँति मालूम था कि वे भवन पूर्वकालिक हिन्दुओं की स्वामित्व वाली वस्तुएँ थीं जो विजयों के कारण मात्र से ही मुस्लिमों के हाथों में जा पहुँची थीं। जहाँगीर और अकबर जैसा उसका अधिपत्यकर्त्ता कोई भी व्यक्ति उन भवनों को बनाने का दावा किस प्रकार कर सकता

था ? वे लोग सम्भवत: ऐसा कोई झूठा दावा अपने उन लाखों समकालीन व्यक्तियों के होते हुए नहीं कर सकते थे जो जानते थे कि मुस्लिम बादशाह तो एक हिन्दू की सम्पत्ति का अपहरणकर्ता मात्र था।

आगरे के लालकिले में प्राप्त हुए शिलालेखों के उद्धरण के हेतु हम पाठकों के सम्मुख सैयद मुहम्मद लतीफ की पुस्तक प्रस्तुत करते हैं जिसमें उस नगर के ऐतिहासिक स्मारकों का वर्णन संग्रहीत है। सैयद मुहम्मद लतीफ ने लिखा है :

"दिल्ली-दरवाजे के समीप, प्राचीन निर्जन रक्षक-गृह में अकबर के समय का निम्नलिखित शिलालेख तोरणद्वार पर लगा हुआ है : 'शहंशाहों के शंहशाह, राज्य के संरक्षक, ईश्वर-रूप, जलालुद्दीन मोहम्मद अकबर, बादशाह के समय में, हिजरी १००८ (ईसवी १५९९) में'। शिलालेख का शेष भाग बहुत अधिक विद्रूप है। जैसा शिलालेख दर्शाता है, यह भवन सन् १५९९ में बना था।"[1]

लेखक श्री लतीफ इस निष्कर्ष पर पहुँचने में स्पष्टत: गलती पर हैं कि "जैसा शिलालेख दर्शाता है, यह भवन सन् १५९९ ई० में बना था।" क्या उन सभी व्यक्तियों को उन भवनों का निर्माता माना जा सकता है जो अपनी इच्छानुसार भवनों की दीवारों पर मनचाही बातें उत्कीर्ण करा देते हैं। इतिहासकार के लिए ऐसी किसी विधि का अनुसरण करना अत्यन्त दोषपूर्ण और खतरनाक है। ऐसा करके तो वह स्वयं अपने को और प्रवंच्य जनता को, भोले-भाले लोगों को धोखा देता है। किसी भी प्राचीन भवन को देखने जाइए। हरएक भवन पर निरुद्देश्य घुमक्कड़ों द्वारा नाम, उद्घोष तथा तारीखें लिखी मिलेंगी। क्या इसका अर्थ यह है कि उन सब लोगों ने उस भवन का निर्माण करवाया था ?

यद्यपि शिलालेख का एक भाग इतना बिगड़ चुका है कि कुछ पढ़ा नहीं जा सकता, तथापि फतहपुर सीकरी व अन्य स्थानों पर अकबर द्वारा लगाए गए निरर्थक शिलालेखों से अभ्यस्त होने के कारण हम प्रारम्भिक पंक्तियों से सरलतापूर्वक अनुमान लगा सकते हैं कि यह एक निरर्थक असंगत शिला-

१. 'अकबर और उसके दरबार तथा आगरे के आधुनिक नगर के वर्णन के साथ आगरा—ऐतिहासिक और विवरणात्मक'—सैयद मुहम्मद लतीफ, पृष्ठ ७५।

लेख था। वे प्रारम्भिक पंक्तियाँ स्पष्टतया घोषित करती हैं कि उनका भाव यह प्रदर्शित करना कभी नहीं रहा कि अकबर ने उस भवन का निर्माण किया। इसके साथ ही यह भी ध्यान रखना चाहिए कि सभी स्थानों में से 'प्राचीन रक्षक-गृह' ही वह विशिष्ट स्थल नहीं होता है कि जहाँ कोई शक्ति-शाली बादशाह किसी भव्य किले को बनवाने का दावा करने वाले शिलालेख को लगवाए। ऐसे अवसरों पर, निर्माता दरबार-कक्ष या शाही निजी कक्ष को ही पसन्द करेगा। एक अन्य विचारणीय बात यह भी है कि रक्षक-गृह तो अति विशाल किले का अत्यन्त छोटा भाग-मात्र ही होता है। यह कभी निर्जन, एकान्त, सुनसान स्थान पर नहीं बनाया जाएगा। यह तो किले का अत्यन्त क्षुद्र महत्त्वहीन भाग ही था। इस प्रकार, यह मूल-योजना का एक अंश ही रहा होगा। अतः यह दावा करना कि अकबर ने सन् १५६६ ई० में केवल एक नगण्य रक्षक-गृह ही बनवाया, गलत है। यह भी ध्यान रखना चाहिए कि स्वयं शिलालेख में ऐसा कोई दावा नहीं किया गया है। जब शिलालेख ही ऐसा कोई दावा नहीं करता, तब किसी भी इतिहासकार को स्वयं को, जनता को, सरकार को तथा इतिहास के विद्यार्थियों और विद्वानों को दिग्भ्रमित नहीं करना चाहिए।

उपर्युक्त शिलालेख के ठीक नीचे, उसी तोरणद्वार पर निम्नलिखित काव्यमय पंक्तियाँ अंकित हैं जो अनुमानतः जहाँगीरी शासनकाल की हैं। श्री लतीफ की तर्क-पद्धति का अनुसरण करते हुए क्या हम यह निष्कर्ष निकालें कि यद्यपि तोरणद्वार का ऊपरी भाग अकबर द्वारा निर्मित हुआ था, तथापि उसका निचला भाग अकबर के बेटे जहाँगीर द्वारा पूरा किया गया था? इसी में उस विश्वास-पद्धति की युक्तिहीनता प्रगट हो जाती है कि चूँकि रक्षक-गृह के तोरणद्वार पर अकबर के समय का एक शिलालेख लगा हुआ है, अतः उसी बादशाह ने उस रक्षक-गृह का निर्माण किया होगा। विजित हिन्दू भवनों पर असंगत मुस्लिम लिखावटों से निकाले गए ऐसे ऊल-जलूल निष्कर्ष भारतीय इतिहास के अध्ययन में जटिल फंदे बन गए हैं। हिन्दू सिक्कों, भवनों, शिलालेखों तथा कदाचित प्रलेखों के साथ भी मुस्लिम आक्रमणकारियों और शासकों द्वारा की गई छेड़छाड़ और मरम्मत ने भारतीय इतिहास के उचित अवबोधन में एक घोर और विकट बाधा

उपस्थित कर दी है।

पहले जिस तोरणद्वार का उल्लेख किया गया है, उसके निचले भाग में लगे शिलालेख की काव्यमय पंक्तियाँ निम्नलिखित प्रकार से हैं :

[२]"जब विश्व के सम्राट ने भव्य सिंहासन पर अपना आसन ग्रहण किया,

सिंहासन ने अपना परम सौभाग्य मानकर अपने चरण आकाश पर जमा दिए,

प्राचीन अनन्त आकाश ने अत्यधिक हर्षोल्लास में अपने हाथ प्रार्थना में फैला दिए और उच्च घोष किया : 'यह सत्ता सदैव बनी रहे' जब निहानी ने शहंशाह के राज्यारोहण की तारीख लिखनी चाही, तब उसके होंठ प्रशंसा और प्रार्थना से पूरित थे, गर्म लाल-लाल सूओं से शत्रु की दोनों आँखें फोड़ देने के बाद उसने कहा—

'भगवान करे हमारे सम्राट जहाँगीर विश्व-सम्राट बन जाएँ'

इसका लेखक और संकलनकर्ता महमूद मासूम-अल-बुकरा है।"

मध्यकालीन भवनों पर लगे हुए मुस्लिम शिलालेखों के बारे में हम जो कुछ कह चुके हैं उसी के सन्दर्भ में पाठक स्वयं ही अनुभव कर सकते हैं कि उपर्युक्त शिलालेख कितना निरर्थक, बेतुका है। यदि अकबर वाला शिलालेख इसी के ऊपर लगा हुआ न मिलता तो भयंकर भूल करने वाले इतिहासकारों ने अपनी भावी पीढ़ियों को यह विश्वास दिलाकर पथभ्रष्ट किया होता कि उस रक्षक-गृह को बनवाने वाला व्यक्ति जहाँगीर था क्योंकि उससे सम्बन्ध रखने वाली एक असार कविता उस संरचना पर विद्यमान है।

शिलालेखक महमूद मासूम-अल-बुकरा स्पष्टतः कोई ऐसा व्यक्ति रहा होगा जो दरबार के आश्रित होगा और जिसको हिन्दू किले का आधिपत्य करने वाले मुस्लिम बादशाह की चापलूसी करने वाले निरर्थक पद्यांश का निर्माण करने के लिए भरपूर इनाम दिया गया होगा। यहाँ इस बात का ध्यान रखना महत्त्वपूर्ण बात है कि उन पंक्तियों में कहीं भी उल्लेख नहीं है

२. श्री लतीफ की पुस्तक, वही, पृष्ठ ७५।

कि जहाँगीर ने किले अथवा उसके आसपास कहीं कोई निर्माण किया था।

किले के भीतर एक पत्थर का कुंड (हौज) बना हुआ है; उस पर भी एक निरर्थक, असंगत शिलालेख गड़ा हुआ है ; यह निम्नलिखित है—

[२]"राज्य और धर्म का शरण-स्थान, बादशाह अकबर का बेटा बादशाह जहाँगीर—ऐसा बादशाह जिसकी बुद्धिमानी से भाग्य को सफलता प्राप्त होती है। इसकी निर्माण-तिथि पूछी जाने पर बुद्धि ने उत्तर दिया कि ज़मज़म ने जहाँगीर का यह कुंड देखकर लज्जावश अपना मुखड़ा छुपा लिया।"

ज़मज़म मक्का में काबा-मन्दिर के बाहर एक जल-कूप है। मुस्लिमों द्वारा यह बहुत अधिक पवित्र माना जाता है। फिर भी, जहाँगीर के दरबार का एक चापलूस व्यक्ति उस जलकूप की (जहाँगीर द्वारा निर्मित) पत्थर के कुंड की तुलना में तीव्र अवमानता करता है। वह कुंड भी हिन्दू किले की निजी (हिन्दू) संपत्ति में से एक अंश था जो विजयोपरान्त मुस्लिमों के हाथ जा पड़ा था। यही कारण है कि यह बताने की अपेक्षा कि इस पत्थर के कुंड-निर्माण का आदेश किसने दिया, कब दिया, कितने धन के लिए और किस आयोजन से दिया, शिलालेख में सन्दर्भरहित प्रशंसा के शब्द-मात्र भरे पड़े हैं।

असंगत होने के अतिरिक्त यह शिलालेख अनेक दोषों से पूर्ण भी है क्योंकि प्रथमत: इसमें एक छोटे-से कुंड की तुलना एक जल-कूप से की गई है; दूसरी बात यह है कि इसमें भौतिक सुख के उपयोग में आने वाले पत्थर के कुंड की पवित्र जल-कूप से तुलना में पवित्र जल-कूप की हेठी कर दी गई है; और तीसरी बात यह है कि इस शिलालेख में उस जहाँगीर की प्रशंसा करने का यत्न स्पष्टत: गोचर है जो इतिहास में व्यभिचारी, परले दर्जे का शराबी, अत्यन्त झूठा और भयंकर क्रूरताओं का करने वाला कुख्यात है। इस प्रकार, यह ध्यान में आ ही गया होगा कि कुंड पर लगा हुआ शिलालेख भी किसी प्रकार यह दावा प्रस्तुत नहीं करता कि किसी मुस्लिम ने आगरे के लालकिले में रहते हुए कोई निर्माण-कार्य किया था।

२. वही, पृष्ठ ८०।

किले के भीतर 'खास महल' नाम से पुकारे जाने वाले शाही राजमहल की दीवारों पर इस्लामी काव्य की कुछ पंक्तियाँ उत्कीर्ण हैं जो निम्न-लिखित हैं :

[४]"विशाल नींव वाले इस सुखद राजमहल के निर्माण द्वारा अकबराबाद का शीष ९वें आसमान में ऊँचा पहुँच गया है। इसकी मुँडेरें आकाश-मस्तक तक पहुँचती हैं। वे पापाक्षर के दंतों की भाँति दृश्यमान हैं, सुख के इस भवन के द्वार के समक्ष श्रद्धाभाव से नत होने पर अपने ऊपर दुर्भाग्य दूर हो जाता है। इसकी प्रशंसा में केवल 'श्रेष्ठता' शब्द ही कहा जा सकता है। इसकी दीर्घाओं की अनन्य साथी समृद्धि है, किसी भी प्रकार उत्पीड़न-कार्य बन्द है, अत्याचार के हाथ न्याय की जंजीर से बँधे हुए हैं, मैं बादशाह की न्याय-जंजीर पर गर्व करता हूँ क्योंकि यह इच्छुक व्यक्तियों को न्याय प्रदान करने के लिए सदैव तत्पर रहती है। इसको जनता की अवस्था का इतना परिपूर्ण ज्ञान है कि इसे पता चल जाता है कि वे लोग स्वप्न में भी क्या देखते हैं। भगवान से प्रार्थना है कि यह बादशाह के राजमहल में हज़ारों चमकों के साथ बनी रहे। जिस प्रकार आकाश में सूर्य चमकता है, उसी प्रकार जब बादशाह का महल विश्व में सुशोभित हुआ, तब भूमि का मस्तक गर्व से आकाश को छू उठा। जहान के बादशाह शाहजहाँ ने, जो शाहिब किरण की आत्मा का गौरव है, एक भवन इतने सौन्दर्य, वैभव और लावण्य के साथ बनाया कि उसी के समान दूसरे के दर्शन पृथ्वी के धरातल पर आकाश ने कभी नहीं किए। इसकी ऊपरी मंजिल का प्रांगण चन्द्र के पूर्व-भाव की भाँति प्रदीप्त होता है, इसी के नीचे आकाश एक छाया की भाँति रह जाता है। जब मैंने इसकी तारीख के सम्बन्ध में युक्ति के साथ परामर्श किया, तब सभी दिशाओं से सौन्दर्य-द्वार मेरे लिए खुल गए। सदैव सत्य का पक्ष लेने वाले मस्तिष्क ने कहा—यह समृद्धि की, भाग्यशाली नींव की इमारत है…"

उपर्युक्त पंक्तियाँ मध्यकालीन मुस्लिम शिलालेखों की असारता की एक और झाँकी दिखती हैं। वे ऊल-जलूल, असंगत, असम्बद्ध चापलूसी के

---

४. लतीफ की पुस्तक, पृष्ठ ८३।

दर्शन कराती हैं जो अर्ध-शिक्षित दरबारी चापलूसों ने सम्मुख प्रस्तुत की हैं।

जहाँगीर के शासन के कुंड पर लगे शिलालेखक ने 'तारीख' की घपलेबाजी के लिए 'बुद्धि' से पूछा था कि कौन-सी तारीख अंकित की जाय। इसी प्रकार, शाहजहाँ के शासन के शिलालेखक ने 'युक्ति' से प्रश्न किया था कि कौन-सी तारीख लिखी जाय, किन्तु उसका कोई प्रयोजन नहीं था।

अन्य शिलालेखों की भाँति, खास महल का शिलालेख भी इस बारे में कोई उल्लेख नहीं करता कि यह कब बना था, कितना धन खर्च हुआ था और उसके निर्माण में कितने वर्ष लगे थे! यह अस्पष्ट रूप में इसके 'निर्माण' की बात करता है, परन्तु यह बताता नहीं कि कब और कितने में यह कार्य हुआ। इस प्रकार के टाल-मटोल एवं सहज उल्लेख से स्पष्ट है कि शिलालेखक ने अपने आपको किसी पक्ष-विशेष से सम्बद्ध किए बिना ही अभिव्यक्ति के इस अस्पष्ट प्रकार का सहारा ले लिया।

किन्तु इतिहासकारों ने यह विश्वास करके भूल और गलती की है कि चूंकि 'खास महल' पर लगे हुए शिलालेख में शाहजहाँ का नाम आता है, इसलिए वह भवन उसी के द्वारा बनाया गया था। यदि उसने वास्तव में 'खास महल' बनवाया होता, तो उसने सीधी और स्पष्ट भाषा में उस बात का दावा किया होता। यद्यपि 'खास महल' पर एक लम्बी कविता वाला शिलालेख निक्षारित है, तथापि उस भवन के किसी भी मुस्लिम अधिग्रहणकर्त्ता द्वारा उसके बारे में स्वयं दावा न किया जाना इस बात का प्रमाण है, कि किले के भीतर का 'खास महल' भी, किले के शेष भाग के समान ही, मुस्लिम-पूर्व हिन्दू मूल का है।

आगरे के लालकिले के राजसी भागों के चबूतरों में से एक पर काले संगमरमर का मंच है जिस पर आगरे के हिन्दू राजा अपना सिंहासन स्थापित करते थे। विजयोपरान्त किला मुस्लिमों के हाथों च ग जाने के बाद मुस्लिम सम्राट् भी उसी काले संगमरमर के मंच पर रखे सिंहासन पर बैठते थे। किन्तु चौथी पीढ़ी के मुगल बादशाह जहाँगीर के शासन काल में किन्हीं दो खाली हाथों ने चौकी के चारों पैरों पर एक निरर्थक पद्यावली अंकित कर दी।

५"जब ताज और गद्दी का उत्तराधिकारी शाह सलीम सिंहासन पर बैठा और उसने विश्व पर प्रशासन किया तो उसका नाम जहाँगीर अर्थात् विश्व का विजेता हो गया, जैसा उसका स्वभाव था और अपने न्याय की ज्योति से उसे नूरुद्दीन, विश्वास का जाज्वल्यमान रूप, उपाधि प्राप्त हुई। उसकी तलवार ने मिथुन नक्षरों की भाँति शत्रु का शीष दो भागों में विभाजित कर दिया। भगवान् करे, यह भाग्यशाली सिंहासन अनेक भावी राजाओं का शरण-स्थल बने। यह तो देवदूतों की समानता करने वाले राजाओं की परीक्षा है, सूर्य के स्वर्ण और चन्द्र के रजत का पारस है। यह परमोच्च सिंहासन अपनी उच्चता एवं दीप्ति के माध्यम से एक अमूल्य और अनमोल, बहुमूल्य मोती के समान है। इसकी तारीख का विचार करने पर मैंने सर्वशक्तिशाली ईश्वर की सहायता माँगी। अन्त में यह आवाज आई—

"जब तक सूर्य का सिंहासन आकाश है, तब तक बादशाह सलीम का सिंहासन बना रहे! १०११ हिजरी सन्। अकबर शाह के पुत्र सुलतान सलीम का सिंहासन ईश्वर की दया से, उसके प्रकाश से अपनी आभा सदैव प्राप्त करता रहे। सिंहासनारूढ़ होने से पूर्व उनका शुभ नाम शाह सलीम था और बाद में 'नूरुद्दीन मोहम्मद जहाँगीर बादशाह गाजी' हो गया। भगवान् करे, अकबर शाह के पुत्र जहाँगीरशाह के सिंहासन की शान भगवान् के आदेश से आकाश से भी अधिक बढ़े।"

कोई भी पाठक उपर्युक्त शिलालेख का कुछ भी सिर-पैर नहीं निकाल सकता। इतनी सारी लिखा-पढ़ी के बाद भी शिलालेखक द्वारा विश्व को एक अंशमात्र भी सज्ञान नहीं बना पाना उस कूड़े-करकट का परिमाप है जो मध्यकालीन मुस्लिम दरबार के चापलूस लोग अधिग्रहीत हिन्दू भवनों और सिंहासनों को विद्रूप करने के लिए एकत्र कर सकते थे।

किन्तु उससे भी अधिक भयावह वह निष्कर्ष था जो इतिहास पर थोप दिया गया था कि चूँकि काले संगमरमर के मंच पर जहाँगीर के समय का उत्कीर्णांश विद्यमान था, इसलिए वह मंच बनवाने का आदेश भी जहाँगीर द्वारा ही दिया गया था। हम पहले ही कह चुके हैं कि काले संगमरमर के

५. लतीफ़ की पुस्तक, पृष्ठ ८७।

मंच को विद्रूप करने वाला असंगत शिलालेख निर्णायक रूप से सिद्ध करता है कि जहाँगीर तो सिंहासन पर अधिकार करने वाला मात्र ही था, हड़पने वाला व्यक्ति था—इसको बनाने वाला नहीं।

आगरे के लालकिले में मुस्लिमों की ओर से बाद की ऊपरी लिखवाई के दूसरे उदाहरण के सन्दर्भ में श्री लतीफ़ कहते हैं—[६]"(तथाकथित मोती मस्जिद) मस्जिद के भीतरी भाग के पश्चिमी छोर की ओर सहारा देने वाले खम्बों की अगली पंक्ति के ऊपर प्रस्तर के साथ-साथ निम्नलिखित शिलालेख स्थापित है—

"उज्ज्वल कंवा और स्वर्गसुख का दूसरा मन्दिर इतना परम प्रकाशित है कि इससे तुलना करने पर प्रातःकाल की ऊषा की लालिमा संध्या की कालिमा जैसी प्रतीत होती है; इसकी महान् तेजस्विता का प्रभाव ऐसा है कि इसकी तुलना में सूर्य चमक से चुँधियाई आँख जैसा मालूम पड़ता है। इसकी पहली नींव इतनी ऊँची है जितनी ऊँची सर्वोच्च आकाश की नींव है। इसके इनाम बाँटने वाले शीर्ष-स्तम्भ इतने ऊँचे हैं जितने ऊँचे स्वर्ग के (द्वार) मण्डप। इसकी महान् नींव प्रदर्शित करती है कि यह एक मस्जिद है जो दया के आधार पर स्थापित है और इसके कंगूरे तेजस्विता में सर्वोच्च सूर्य से प्रतिस्पर्धा करते हैं। पुष्प-कलश वाला इसका प्रत्येक मीनार उज्ज्वल तारों के झुण्ड से सम्बद्ध प्रकाश-पुंज के समान है, सूर्य से निकलती परोपकारी किरणों के फव्वारे के समान है। इसका प्रत्येक आकर्षक कलश आकाश के नक्षत्रों को प्रकाशित करता है, इसकी प्रत्येक जाज्वल्यमान मेहराब नये चन्द्र से मिलती-जुलती है; और उसका सदैव ईद के पर्व के समान स्वागत किया जाता है। इसके दोनों ओर अकबराबाद की राजधानी का लाल पत्थर का किला बना हुआ है। यह मस्जिद किले के रूप में है जिस प्रकार सप्त-ग्रह आकाश के लिए होते हैं। कोई भी व्यक्ति इसे देख सकता है कि यह चन्द्र के चारों ओर विद्यमान प्रभा-पुंज है जो दया रूपी मेघों के पदार्पण का स्पष्ट प्रमाण है; अथवा यह प्रकाश-पुंज सूर्य के चारों ओर का वृत्त है जो हितकारी वर्षा आने का निश्चित लक्षण है। वस्तुतः यह स्वर्ग का

६. लतीफ़ की पुस्तक, पृष्ठ ९१-९४।

विशाल ऊँचा भवन है (जो मानो) एक ही बहुमूल्य मोती का बना हुआ है, क्योंकि जब से यह संसार बना है, तब से विशुद्ध संगमरमर की ही बनी हुई कोई मस्जिद बनी नहीं थी—और जब से सृष्टि प्रारम्भ हुई है, तब से इतने तेजस्वी और चमकदार मन्दिर के समान दूसरा मन्दिर, जो ऊपर से नीचे तक जगमगाता हो, दृष्टिगत नहीं हुआ है। इब्राहीम के सम्मान का सुलतान, इस्लाम का आनन उज्ज्वल करने वाला, साम्राज्य का संस्थापक, बादशाहों का बादशाह, जनता का शरण-स्थल, जिसका दरबार शान-शौकत में सर्वोच्च आकाश की समता करता है, ईश्वर के प्रतिबिम्ब, राज्य-स्तम्भों की सामर्थ्य, न्याय और सदय-प्रवृत्ति के आधार का अवलम्बन, जिसके चरणों से पृथ्वी सौभाग्यशालिनी हो कृतार्थ हुई है, ऐसे सुलेमान की भव्यता के प्रभुत्व के आदेश से निर्मित (यह मस्जिद) स्वर्गों से अधिक प्रतिष्ठा-सम्पन्न हज़ारों प्रकार से अनुभव करती है, उसके उपहारों के बाहुल्य-वश स्वर्ग भी पृथ्वी की श्रेष्ठता, समृद्धि और धनधान्य सम्पन्नता स्वीकार करने के लिए बाध्य हो जाते हैं, उसके प्रति सेवा-प्रेम के माध्यम से कर्त्तव्य के प्रति सदैव जाग्रत् रहते हैं, उसके मुख-सौन्दर्य द्वारा राज्य और धर्म सदैव अत्यधिक आकृष्ट होते हैं, स्वर्ग के ऋतु-पवन उसके उपासना-गृह की धूलि को तरसते हैं; स्वर्ग की गरिमा प्राप्त करके नरक की विध्वंसकारी अग्नि शत्रुओं का नाश करने वाली उसकी तलवार की फौलाद की चमक से तनिक आनुतोषक प्राप्त करती है, राज्य की नींव उससे शक्ति प्राप्त करती हैं, न्याय का आधार उससे कालावधि ग्रहण करता है। उसकी विजयी तलवार काफिरों को सदा के लिए सुला देती है। स्वर्ग तो उसके अनेकों दासों में से एक है। दिवस की प्रातः बेला तो उसके आनन के लिए दर्पण-पीठिका है। वह तो आकाशीय आस्था और नियमों की आलम्बन धुरी है; न्याय और प्रशासन वृत्त का केन्द्र है, विजय-जनक शाहबुद्दीन मोहम्मद, ग्रहों के शुभ संगम का दूसरा स्वामी, शूरवीर बादशाह शाहजहाँ। वह भवन शुभ शासन के २७वीं वर्ष समाप्ति पर तदनुसार १०६३ हिजरी वर्ष में सात वर्षों की अवधि में तीन लाख रुपयों की लागत पर बन पाया था। यह भगवान् को, अतुलनीय भगवान् को, इतना प्रसन्न करे कि इस सम्राट् की सुरुचियों के शुभाशीर्वाद से, विश्वास के रक्षक से, सभी लोगों के मन में भक्ति और

सत्कार्यों में प्रवृत्त होने की इच्छा बलवती हो। और सही कार्य में निदेशन और मार्गदर्शन का परिणाम इस सच्चरित्र बादशाह का, ईश्वर के ही रूप का, विश्व के स्वामी का मोक्ष हो, आमीन।"

उपर्युक्त शिलालेख में निश्चय ही उल्लेख है कि यह भवन सात वर्षों में तीन लाख रुपयों की लागत से बना था। किन्तु जिस प्रकार इस बात का उल्लेख किया गया है, उससे पर्याप्त संशय उत्पन्न हो सकता है। कई पृष्ठों में वर्णित इस पूरे शिलालेख की वह संगत जानकारी निरर्थक और असंगत विषय-वस्तु के ढेर में छुपी हुई है। जिस सूचना का सबसे अधिक महत्त्व है उसका वर्णन एक टेढ़े-मेढ़े असंगत अवतरण वाले शिलालेख के अन्तिम छोर में समाविष्ट किये जाने के कारण इतिहासकार को अवश्य ही सावधान होना चाहिए था।

उपर्युक्त जानकारी से पहले और उसके बाद अनर्गल, असंगत बातों की उपस्थिति इस बात की द्योतक है कि दावा अग्राह्य है। इस प्रकार के साक्ष्य का कानूनी अदालत में कोई मूल्य नहीं है। यदि सूचना सच्ची एवं ठीक होती तो वह लम्बे शिलालेख की प्रारम्भिक पंक्तियों में ही समाविष्ट होनी चाहिए थी। इसके अतिरिक्त इसमें यह बताया जाना चाहिए था कि क्या वह मस्जिद किसी खाली भू-खण्ड पर बनाई गई थी, क्या यह खाली भू-खण्ड किले के भीतर था, अथवा कोई अन्य भवन गिराया गया था, क्या किले के अन्दर कोई अन्य मस्जिद नहीं थी तथा इस मस्जिद के निर्माण के लिए क्या आवश्यकता तथा अवसर (प्रयोजन) उपस्थित हो गया था। यदि किसी शिलालेख को बड़ा होना ही है तो उसमें ऐसी संगत आवश्यक जानकारी होनी चाहिए न कि वैसी ऊल-जलूल जानकारी जैसी उपर्युक्त शिलालेख में है।

विचारणीय अन्य बात यह भी है कि उस मस्जिद पर किया गया तीन लाख रुपयों का व्यय-विवरण, जिसके सम्बन्ध में शिलालेखक ने मुक्त-कंठ से सराहना, प्रशंसा की है, शाहजहाँ के दरबारी कागज-पत्रों में भी उपलब्ध होना चाहिए। जहाँ तक हमारी जानकारी है, शाहजहाँ के शासन-काल के सरकारी प्रलेखों में मस्जिद के निर्माण एवं उस पर किये गए धन-व्यय के बारे में कोई उल्लेख नहीं है।

मध्यकालीन मुस्लिम तिथिवृत्तों के एक अध्येता एवं एक प्रसिद्ध इतिहासकार सर एच० एम० इल्लियट ने बारम्बार स्पष्ट किया है कि उन तिथिवृत्तों में जाली दावे, अतिशयोक्तियाँ और अत्युक्तियाँ भरी पड़ी हैं। उनको विवश होकर उन तिथिवृत्तों के अपने अष्ट-खण्डीय आलोचनात्मक-अध्ययन में पर्यवेक्षण करना पड़ा था कि भारत में मुस्लिम-काल का इतिहास "निर्लज्ज एवं रोचक धोखा है।"

चूंकि उपर्युक्त शिलालेख में कुछ व्यय का उल्लेख है ही, इसलिए मुस्लिम मध्यकालीन रचनाओं के अपने अनुभव से हम जो कुछ मान सकते हैं, वह सब कुछ यह है कि वहाँ विद्यमान हिन्दू मूर्तियों अथवा शिलालेखों को संगमरमर की पट्टियों के नीचे यह घोषित करने के लिए दबा दिया होगा कि वह एक मस्जिद है। हमारे इस निष्कर्ष पर पहुँचने का कारण यह है कि मध्यकालीन मुस्लिम आक्रमणकारियों एवं शासकों का यह सामान्य नित्य का अभ्यास था कि जिन स्थानों पर से मुस्लिम लोगों को गुज़रना होता था, उन्हीं स्थानों पर हिन्दू देव-प्रतिमाओं को दबा दिया करते थे ताकि वे पैरों तले रौंद डाली जाएँ। मध्यकालीन मुस्लिम तिथिवृत्तों के अध्ययन से हमने जो दूसरा निष्कर्ष निकाला है वह यह है कि मुस्लिम आक्रमणकारियों और शासकों की एक प्रवृत्ति प्रत्येक हिन्दू मन्दिर को मस्जिद के रूप में प्रयोग करने के लिए अधिगृहीत करने की थी। अतः हमें ऐसा लगता है कि आज जिसको मोती मस्जिद के रूप में प्रस्तुत किया जाता है, वह आगरे के लालकिले में निवास करने वाले हिन्दू राजवंश का हिन्दू मन्दिर रहा होगा जो हिन्दुओं द्वारा मुस्लिमों के सम्मुख पराजित होने पर मुस्लिमों के हाथों में जा पहुँचा। उस मन्दिर में भिन्न-भिन्न मुस्लिम शासकों द्वारा उसके अपवित्रीकरण हेतु हथौड़े और छैनी की अप्रतिहित चोटें तब तक पड़ती रहीं जब तक कि सर्वाधिक असहिष्णु शाहजहाँ ने उसके ऊपर संगमरमर के टुकड़े नहीं लगवा दिए। अतः, हम स्थापत्यशास्त्र वाली बुद्धि रखने वाले व्यक्तियों को यह संकेत देना चाहते हैं कि कुछ संगमरमर के पत्थरों को हटाने और उनके नीचे दबी हुई वस्तुओं को देखने से पूर्व-कालिक हिन्दू मन्दिर के कुछ साक्ष्य प्राप्त हो सकते हैं।

हम भारतीय मध्यकालीन इतिहास के सभी विद्यार्थियों को भी एक

संकेत देना चाहते हैं कि जब कभी कोई मुस्लिम तिथिवृत्त या शिलालेख तीन लाख रुपये (रु० ३,००,०००-००) खर्च करने का दावा करता है तब वास्तविक खर्चा मात्र तीन रुपयों तक का भी हो सकता था क्योंकि मुस्लिम दरबारों के चापलूस मुस्लिम उग्रता एवं शाही शान-शौकत को मनचाहे ढंग से बढ़ाकर या खर्चे की राशियों की मनचाही सृष्टि करने के अभ्यस्त थे। मुगल-दरबार से सम्बन्धित किसी भी आँकड़े को गणित-ज्योतिष अनुपात में रखना पड़ता था ताकि वे सम्माननीय एवं शान-शौकत के अनुरूप मालूम पड़ें। इस त्रुटि को पकड़ लिया गया है और दिवंगत सर एच० एम० इल्लियट द्वारा इसकी पर्याप्त आलोचना भी की गई है।

जैसे अन्य शिलालेख असंगत थे, वैसे ही एक अन्य मुस्लिम शिलालेख उस समय मिला था, जब ब्रिटिश कर्मचारी अपने शासन-काल में किले के भीतर खुदाई का काम कर रहे थे। उसका उल्लेख करते हुए श्री लतीफ़ कहते हैं [७] "पुरानी दीवारों की नीवें खोदने पर 'झन-झन कटोरा' नामक स्थान से १०० कदम की दूरी पर चार मजारें मिली थीं। उनमें से दो तो बिना किसी शिलालेख के थीं, किन्तु अन्य दो में फारसी शिलालेख संगमर-मर पर गढ़े हुए थे। इनमें से एक प्रदर्शित करता है कि एक मजार का सम्बन्ध किसी उच्चपदस्थ व्यक्ति से था जो अकबर के इलाही वर्ष के ४६वें वर्ष (१६०१ ई०) में मर गया था। शिलालेखों में से एक था—"हाय ! दुर्भाग्य है ! मेरा प्रिय मुझे शोक-संतप्त छोड़कर विदा हो गया है। जब मैंने तर्क (शक्ति) से उसकी मृत्यु का वर्ष पूछा तो उसने उत्तर दिया; 'ओ' भोले आदमी, यह हिजरी सन् का १०१०वाँ वर्ष था, जब वह इस मर्त्य संसार से स्वर्ग की ओर चल पड़ा। शमसी का एक और वर्ष सुनो। वह इलाही के ४८वें वर्ष में मर गया। पूर्ण सच्चाई सहित मैं उसकी पवित्र आत्मा के लिए प्रार्थना करता हूँ। "हे भगवान्। इसको अदन के स्वर्ग में स्थान देने की कृपा करें।"

"दूसरी मजार पर निम्नलिखित शिलालेख है—"हाय ! विश्व का जीवन विश्व से विदा हो गया है ! उसके बिना, शरीर आत्मा-विहीन और

७. वही, पृष्ठ ६८-६९।

जीवन नष्ट है। उचित यह है कि मैं ज़ोर-ज़ोर से रोऊँ और 'हाय हाय' चिल्लाऊँ। क्योंकि वह चाँद के जैसा था और जवानी में ही मर गया था। मेरा पुत्र, जो मुझे मेरे जीवन से भी अधिक प्रिय था, उसने मुझपर कोई तरस नहीं खाया और भगवान् से मिलने चला गया। मैंने जब तर्क (शक्ति) से उसकी मृत्यु की तारीख पूछी, तब उसने उत्तर दिया—'गुलाब की शाखा और उसकी पत्तियों, दोनों ही ने गुलाब के बाग को त्याग दिया है। हे लेखक, अब उचित है कि तू अपने जीवन को समाप्त कर दे क्योंकि मधुर-वाणी और मधुमय चोंच वाला तोता उड़ चुका है।''

ये दोनों शिलालेख, किले के काल्पनिक मुस्लिम उद्गम पर किसी प्रकार का प्रकाश डालना तो दूर रहा, मृतक का परिचय प्रस्तुत करने एवं जिन परिस्थितियों में वे मरे, उनका उल्लेख भी नहीं करते, किसी प्रकार का दर्शन भी नहीं कराते।

यदि अकबर अथवा अन्य किसी बड़े मुस्लिम शासक ने किले को बनवाया होता, तो उसने इस किले को किसी कुली-कबारी की कब्रों, मज़ारों में परिवर्तित कर देने की अनुमति न दी होती। यदि कथित चार मज़ारों का सम्बन्ध शाही वंशजों से होता, तो शिलालेखों ने निश्चय रूप में ही वैसा ही कह दिया होता। चूँकि मृतकों की पहचान नहीं की जा सकी है, अतः हम निष्कर्ष निकालते हैं कि उन कब्रों का सम्बन्ध उन मुस्लिमों से है जो किले में किसी उपद्रव के समय मारे गए थे, यदि वे अकबर के युग की हैं। किन्तु वे कब्रें उन मुस्लिमों की हैं जो पहले ही मर गए थे, तो वे कब्रें सम्भवतः उन मुस्लिमों की हैं जिनको किले पर आक्रमण करते समय मार डाला गया था। इस भावना से वे अज्ञात सैनिकों की मजारें हैं।

पाठक को यह स्मरण ही होगा कि हमने ऊपर जिन शिलालेखों का उल्लेख किया है, उनमें से केवल एक बहुत लम्बे शिलालेख में ही कुछ दावा समाविष्ट है कि शाहजहाँ ने तथाकथित मोती मस्जिद सात वर्षों की अवधि में तीन लाख रुपयों की लागत पर बनाई थी। यह दावा भी अविश्वसनीय है, जैसा हम पहले ही स्पष्ट कर चुके हैं। किन्तु जहाँ तक अन्य शिलालेखों का सम्बन्ध है, किसी भी मुस्लिम ने यह दावा कभी भी नहीं किया है कि उसने किला या भवन या जल-कुंड अथवा सिंहासन का मंच बनाया था।

इसके विपरीत, उग्रवादी मुस्लिम शिलालेखों में ऐसे किसी भी दावे का निश्चित अभाव इस बात का प्रबल प्रमाण है कि दर्शक जिस लालकिले को आज आगरा में देखता है, यह वही किला है जिसमें अशोक, कनिष्क, जयपाल, विशालदेव, अनंगपाल और पृथ्वीराज ने निवास किया था।

किले में जिन स्थानों पर असंगत मुस्लिम शिलालेख मिले हैं, वे इस बात के द्योतक हैं कि कदाचित् उन स्थानों पर लगे हुए पूर्वकालिक संस्कृत शिलालेख तोड़कर फेंक दिए गए थे और जालीपन को दूसरा रूप देने के लिए इस्लामी अक्षरों को ऊपर थोप दिया गया था। संस्कृत शिलालेख किले के अन्य स्थानों पर भी विद्यमान रहे होंगे। इनमें से बहुत सारे शिलालेख किले के भू-गर्भस्थ कमरों में ठूंसे हुए अथवा किले की दीवारों और धरती में धरातल पाटने के लिए कूड़ा-करकट के रूप में प्रयोग किए गए मिल सकते हैं। किले के भीतर की धरती का उपर्युक्त स्थापत्यात्मक उत्खनन तथा इसके छिपे व अँधेरे तहखानों, कमरों का अन्वेषण आगरे के लालकिले के मुस्लिम-पूर्व काल का इतिहास पता लगाने में ऐतिहासिक दृष्टि से अत्यंत उपयोगी होगा। यह भी सम्भव है कि ऐसे किसी अन्वेषण में कोई छिपा हुआ, गुप्त खजाना भी प्राप्त हो जाए।

अध्याय ४

लालकिला हिन्दू बादलगढ़ है

'बादलगढ़' शब्दावली, जो आज तक आगरा-स्थित लालकिले के शाही भागों के नाम के रूप में साथ-साथ चली आ रही है, मध्यकालीन युग में पर्याप्त लोकप्रिय और प्रचलित रही है। यह आगरा के किले के लिए ही विशेष बात नहीं है अपितु अनेक हिन्दू किलों के शाही भागों अथवा उसके समीपस्थ भागों के नाम-द्योतन के लिए भी इसी शब्द का प्रयोग होता रहा है। अतः यह अनुमान लगाना गलत है जैसा कुछ इतिहासकारों ने किया है कि बादलगढ़ का निर्माण बादलसिंह नाम से पुकारे जाने वाले किसी सरदार ने ही किया होगा।

इतिहासकारों को यह खोज निकालने का यत्न करना चाहिए कि मध्यकालीन युग में हिन्दू किले के भीतर के भाग अथवा उसके समीपस्थ भागों के नाम किस प्रकार और कब 'बादलगढ़' पड़ गए। किन्तु बादलगढ़ शब्दावली का सम्पृक्तार्थ इतना सामान्य था, यह इसी बात से प्रत्यक्ष है कि यह अनेक हिन्दू किलों के वर्णनों में बारम्बार आया है।

उदाहरणार्थ (बादशाह अकबर का समकालीन) बदायूंनी इतिहासकार बादलगढ़ के सम्बन्ध में उल्लेख करता है[1] कि वह ग्वालियर में किले की तिलहटी में एक अत्युच्च रचना है। राजस्थान के इतिहास में हमें किलों के भीतर बने हुए अनेक स्थान ऐसे मिलते हैं जिनको बादलगढ़ कहते हैं। उसी परम्परा में आगरे का लालकिला भी या उसके (भीतर के शाही राजमहल) बादलगढ़ के नाम से पुकारे जाने लगे।

हमें ऐसा प्रतीत होता है कि बादलगढ़ शब्दावली प्राकृत-मूल की है।

---

१. बदायूँनी रचित मतखाबुत तवारीख़ (फ़ारसी)।

इसी प्रकार आगरे के लालकिले का नाम अशोक के युग में और कनिष्क के युग में पृथक्-पृथक् रहा होगा, जब संस्कृत ही सामान्य उपयोग में, प्रचलन में थी।

डॉक्टर एस० वी० केतकर द्वारा प्रकाशित 'महाराष्ट्रीय ज्ञानकोष' के अनुसार आगरा नगर का प्राचीन नाम यमप्रस्थ था। अतः प्राचीन इतिहास के विद्यार्थियों को अशोक और कनिष्क जैसे राजाओं के शासनों से सम्बन्धित वर्णनों में से आगरा उपनाम यमप्रस्थ के लालकिले के प्राचीन संस्कृत नाम को खोज निकालने का यत्न करना चाहिए। सम्भव है कि इसका कोई विशेष नाम रहा हो अथवा आज की भाँति प्रचलित 'लालकिले' का अर्थ-द्योतक 'ताम्र-दुर्ग' अथवा लोहित-दुर्ग रहा हो। कुछ भी हो, मुस्लिम आक्रमण-कारियों के हाथों पड़ने से तुरन्त पूर्व यह किला 'बादलगढ़' के नाम से भी पुकारा जाता था।

इस किले के इतिहास की विभिन्न घड़ियों में चाहे जो भी नाम रहा हो, यह निश्चित है कि आज दर्शक जिस किले को आगरे में देखता है, वह वही है जो अशोक और कनिष्क जैसे प्राचीन हिन्दू-सम्राटों के स्वामित्व में था। यह धारणा गलत है कि मूल हिन्दू किला किसी प्राकृतिक दुर्घटनावश नष्ट हो गया था अथवा सिकन्दर लोधी, सलीमशाह सूर और अकबर द्वारा ढहा दिया गया था तथा उन्हीं के द्वारा उसी स्थान पर अन्य किला बनवाया गया था। इस प्रकार की धारणा की सृष्टि मुस्लिम शासन काल में जान-बूझकर फैलाई गई उन अभिप्रेरित कहानियों से हुई जो मुस्लिम उग्रवाद और साम्राज्यवादी मुस्लिम आडम्बर की पूर्ति हेतु गढ़ी गई हैं।

वर्तमान भारत सरकार का पुरातत्त्व विभाग भी इसी बात को उस समय स्वीकार करता हुआ प्रतीत होता है जब वह पर्यवेक्षण करता है।[२] "परम्परा घोषित करती है कि बादलगढ़ का पुराना किला, जो सम्भवतः प्राचीन तोमर या चौहानों का प्रबल केन्द्र था अकबर द्वारा रूप-परिवर्तन किया गया था और उसे आवश्यकतानुसार घटा-बढ़ा दिया गया था। किन्तु

२. पुरातत्त्व के सेवा निवृत्त सहायक अधीक्षक श्री मोहम्मद अशरफ़ हुसैन विरचित तथा महाप्रबन्धक, भारत सरकार मुद्रणालय, नई दिल्ली द्वारा सन् १९५६ में मुद्रित 'आगरा फोर्ट' पुस्तक का पृष्ठ १, पदटीप १।

इस बात की पुष्टि जहाँगीर द्वारा नहीं की गई जिसका कहना है कि उसके पिता अकबर ने यमुना नदी के तट पर बने हुए एक पुराने किले को भूमिसात किया था और उसी स्थान पर लाल पत्थर का एक भव्य किला बनवाया था—।"

उपर्युक्त अवतरण का लेखक एक सेवा-निवृत्त पुरातत्व-विभागीय कर्मचारी है और उसकी पुस्तक वर्तमान भारत सरकार द्वारा प्रकाशित की गई है। जहाँ तक उपर्युक्त अवतरण के प्रथम भाग के सार का—अर्थात् बादलगढ़ उपनाम लालकिला एक प्राचीन हिन्दू किला है—का सम्बन्ध है, वह लेखक पूर्णतः ठीक वर्णन करता है। किन्तु हम उसके अनिश्चित भाग में अवश्य कुछ संशोधन करना चाहते हैं। यदि, जैसा कीन बलपूर्वक कहता है, आगरा स्थित लालकिला अशोक और कनिष्क जैसे शासकों के प्रयोग में आया था, तो स्पष्ट है कि किला उत्तरकालीन तोमर और चौहान राजाओं को बाद में उत्तराधिकार ही में मिला था न कि उनके द्वारा बनवाया गया था। दूसरी बात यह है कि यह धारणा भी भ्रान्त है कि अकबर द्वारा उस किले का रूप-परिवर्तन किया गया था और उसे आवश्यकतानुसार घटा-बढ़ा दिया गया था। हमारा कहना है कि अकबर ने उस किले में लेशमात्र भी परिवर्तन नहीं किया। यह तथ्य किले की आदि से अन्त तक और ऊपर से नीचे तक शत-प्रतिशत हिन्दू बनावट से स्पष्ट है। अकबर ने उस किले को हिन्दुओं से जिस स्थिति में लिया था वह वैसी ही स्थिति में रहा तथा किला आज भी उसी पूर्व-स्थिति में ज्यों-का-त्यों है।

जहाँ तक लेखक के कथन के उस भाग का सम्बन्ध है कि अकबर के बेटे और उत्तराधिकारी बादशाह जहाँगीर ने साग्रह कहा है कि अकबर ने किला ध्वस्त करा दिया तथा उसकी जगह दूसरा बनवा दिया, हम पहले ही कह चुके हैं कि तथाकथित जहाँगीर का स्मृति-ग्रंथ (जो जहाँगीरनामा जैसे अनेकों नामों से पुकारा जाता है) इतिहास के प्रयोजन के लिए सर्वाधिक खतरनाक प्रलेख है। इसका तनिक भी विश्वास नहीं करना चाहिए। हम इसके विभिन्न रूपान्तरों की जाँच-पड़ताल कर चुके हैं तथा इस निष्कर्ष पर पहुँच चुके हैं कि यह झूठों का ताना-बाना है और इसीलिए यह एक अत्यन्त अविश्वसनीय धोखापूर्ण और भ्रमोत्पादक प्रलेख है। इसका यह वर्णन करना

कि अकबर ने पुराने हिन्दू किले को ध्वस्त किया और उसके स्थान पर दूसरा किला अपनी ओर से बनवाया, स्वयं उस मनगढ़न्त बात का प्रमाण है जिसका संग्रह जहाँगीरनामा है। जहाँगीर को क्या अधिकार था, क्या मतलब था यह अध्यारोपित करने का कि उसके पिता अकबर ने आगरे में लालकिले का निर्माण किया जब स्वयं अकबर ने ही ऐसा कोई उल्लेख नहीं किया है और न अकबर के दरबार के कागज-पत्रों में ऐसा कोई साक्ष्य मिलता है कि उसने कभी कोई पुराना किला गिराया था तथा उसके स्थान पर नया किला बनवाया था।

हम इस सम्बन्ध में न्याय की जंजीर के संकेत की भी चर्चा करना चाहते हैं जिसका उल्लेख लालकिले के एक शिलालेख में किला गया है। हम उस शिलालेख का उल्लेख पिछले अध्याय में कर चुके हैं। ब्रिटिश इतिहासकार स्वर्गीय सर एच० एम० इलियट ने उस दावे को पूर्णतः निराधार कहकर तिरस्कृत किया है। यह अभिप्रेरित मुस्लिम धोखा है कि जहाँगीर ने एक सोने की जंजीर बँधवाई थी जिससे न्याय का इच्छुक व्यक्ति बादशाह की ओर से तुरन्त न्याय प्राप्त कर सके। किसी प्रकार का न्याय करना तो दूर रहा, जहाँगीर का शासन तो क्रूरतम अत्याचारों के उदाहरणों से बुरी तरह भरा पड़ा है। उदाहरण के लिए उसने अपने ही लिपिक की जीवितावस्था में खाल खिंचवा ली थी। परिस्थितिसाक्ष्य इस निष्कर्ष की ओर इंगित करता है कि उसने अपनी ही पत्नी मानबाई की हत्या की थी जो हिन्दू जयपुर राज-परिवार की एक राज-कन्या थी। उसने नूरजहाँ के पति का वध करने के बाद नूरजहाँ का अपहरण कर लिया था। उसने शाहजादा परवेज़ के लिए स्थान का प्रबन्ध करने की दृष्टि से महाबत खाँ के परिवार को उसके भवन से बाहर निकाल फेंका था। उसने अबुल फ़ज़ल को जान से मार डालने का आदेश दिया था। जहाँगीरी क्रूरताओं के ऐसे कितने ही उदाहरण तुरन्त प्रस्तुत किए जा सकते हैं। यदि ऐसा जहाँगीर सभी परस्परविरोधी साक्ष्य की उपस्थिति में भी कहता है कि उसके पिता ने आगरा में एक किला बनवाया तो इस कथन को सफेद झूठ कहना ही सर्वोत्तम है। अतः उपर्युक्त पुरातत्वीय प्रकाशन में उल्लेख की गई यह परम्परा ठीक है कि अकबर विजित हिन्दू किले में रहता था जो वही है जिसे हम आज भी

आगरा के लालकिले के रूप में देखते हैं।

हम इससे पूर्व इतिहासकार कीन को उद्धृत कर यह पहले ही प्रत्यक्ष कर चुके हैं कि सन् १५६६ में बादलगढ़ की छत पर ही आधम खाँ द्वारा आज़म खाँ का कत्ल किया गया था, यद्यपि धारणा यह रही थी कि अकबर ने एक वर्ष पूर्व ही उस किले को नष्ट करा दिया था। इससे उन लोगों की बात पूर्णत: निराधार सिद्ध हो जाती है जो कहते हैं कि आगरे में हमें लाल-किले के रूप में दिखाई देने वाला किला अकबर द्वारा बनवाया गया था। जहाँ यह कहा जाता है कि सन् १५६५-१५६६ ई० में अकबर ने पुराना किला ध्वस्त करवा दिया और उसके स्थान पर स्व-निर्मित किला स्थापित किया, वहीं पर उपर्युक्त हत्याकांड अकबर की यशगाथा को पूर्णत: असिद्ध कर देता है।

हम अब पाठक के समक्ष विभिन्न पुस्तकों के उद्धरण यह प्रदर्शित करने के लिए रखेंगे कि यद्यपि अफवाहें हैं कि प्राचीन हिन्दू किले को न केवल अकबर ने ही बल्कि पूर्वकालिक अन्य मुस्लिम शासकों ने भी विनष्ट किया व अनेकों बार उसे बनवाया, तथापि एक के बाद एक लेखक और इतिहास-कार के बाद अन्य इतिहासकार ने प्राचीन हिन्दू किले और वर्तमान लालकिले में सातत्य-सूत्र विद्यमान पाया है।

आइए, हम ऊपर लिखे हुए सरकार के अपने प्रकाशन से ही प्रारम्भ करें। इसमें कहा गया है—[3]"आगरा फोर्ट स्टेशन की दक्षिण-दिशा में, यमुना नदी के दाएँ तट पर, ताज से ऊपर की ओर लगभग एक मील पर, आगरे का किला बना हुआ है। यही स्थान बादलगढ़ के पुराने राजमहल का स्थान था। मुगलों से पूर्व आगरे में एक किला विद्यमान होने का तथ्य लोधी बादशाहों से बहुत पहले गजनी के मोहम्मद के प्रपौत्र मसूद III (१०९९-१११४) की प्रशंसा में सलमान विरचित स्तुति से प्रत्यक्ष हो जाता है किन्तु निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता है कि यह वही किला था जो बाद में बादलगढ़ नाम से पुकारा जाने लगा था।"

ऊपर दिए गए अवतरण का लेखक यह कहने में गलत है कि "आगरे

३. श्री मोहम्मद अश्रफ हुसैन की पुस्तक, वही, पृष्ठ १।

का किला बना हुआ है। यही स्थान बादलगढ़ के पुराने राजमहल का स्थान था" क्योंकि पहले उद्धृत उसका पदटीप अब ऊपर कही गई बात को स्वयं ही काट देता है। उसकी यह टिप्पणी कि "निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता है कि यह वही किला था जो बाद में बादलगढ़ नाम से पुकारा जाने लगा था" स्पष्ट दर्शाता है कि किस प्रकार भ्रामक मध्यकालीन मुस्लिम दावों ने इसके पूर्व के इतिहासकारों के दिमागों को भ्रमित कर दिया है। हम अब उसकी अनिश्चितता को दूर कर देते हैं और उसे बता देते हैं कि मुस्लिम शायर सलमान द्वारा वर्णित वही किला है जिसको बाद में बादलगढ़ के नाम से पुकारा गया है और जो अब लालकिले के रूप में विख्यात है। वह नाम बादलगढ़ अब भी प्रचलित है, अतः बादलगढ़ वही अर्थ लक्षित करता है जिसे हम आज लालकिले के नाम से पुकारते हैं। अतः यह स्वतः स्पष्ट है कि सिकन्दर लोधी या सलीमशाह सूर या अकबर में से किसी ने भी कोई किला नहीं बनवाया। वे उसी प्राचीन हिन्दू किले में निवास करते रहे हैं जो मध्यकालीन युग में बादलगढ़ के नाम से पुकारा जाता था और जो आज भी 'लालकिले' के नाम के साथ-साथ उसी नाम से भी पुकारा जाता है।

श्री हुसैन कहते हैं[४] "बादलगढ़ के राजमहल को सिकन्दर शाह के शासनकाल में सन् १५०५ के भूकम्प में अत्यधिक क्षति हुई थी। वर्तमान किला बादशाह अकबर द्वारा लगभग आठ वर्षों में (सन् १५६५ से १५७३ ई०) बनवाया गया था।"

स्पष्टतः श्री हुसैन परम्परागत मुस्लिम किंवदन्ती को ही दोहरा रहे हैं। जहाँ तक भूकम्प का सम्बन्ध है, इससे कोई भी उल्लेख योग्य हानि नहीं हुई क्योंकि बहुत सारे मुस्लिम शासक लोग अनवरत रूप में उसके बाद भी निश्चिन्त होकर किले में निवास करते रहे थे, जैसा कि हम इस पुस्तक में उपर्युक्त सन्दर्भ में पहुँचकर विचार-विमर्श करेंगे। यहाँ यह भी स्मरण रखना चाहिए कि बाढ़, हिमधाव अथवा भूकम्प जैसी प्राकृतिक विनाश-लीला की प्रत्यक्षदर्शी साक्षियाँ प्रायः उसका प्रभाव तथा उसके द्वारा हुई हानि को अत्यधिक बढ़ा-चढ़ाकर कहने लगती हैं। इससे बताने वाले लोगों

४. वही, पृष्ठ १-२।

को मानसिक संतुष्टि प्राप्त होती है, यदि वह नगण्य प्राकृतिक विनाश-कार्य को भी अतिशयोक्तिपूर्ण ढंग से बातचीत करके श्रोता की उत्सुकता तथा दया-भावना को उत्तेजित कर सके। यह भी अनुभव करने की बात है कि एक किले की परिधि-रेखा सभी दिशाओं में विशाल-क्षेत्र पर फैली रहती है। भूकम्प अधिक-से-अधिक एक दीवार का एक भाग अथवा किसी एक ही दिशा का कंगूरा ध्वस्त कर देगा। यह किसी कैंची के समान दीवारों को समस्त परिधि के साथ-साथ तो विभाजित करेगा नहीं। एक या अधिक स्थानों पर टूटे अथवा गिरे भागों को आसानी से ही मरम्मत किया जा सकता है। इसके लिए सम्पूर्ण किले को खाली करने अथवा त्याग देने तथा पुनर्निर्माण करने की आवश्यकता नहीं होती। ऐतिहासिक साक्ष्य भी सिद्ध करता है कि इस किले का कभी परित्याग नहीं किया गया था। तथ्य तो यह है कि अनेक पीढ़ियों और वंशों के मुस्लिम शासकगण इस कथित भूकम्प से पूर्व और उसके पश्चात् भी किले में निवास करते रहे थे जो इस बात का प्रमाण है कि भूकम्प ने किले के शाही मेहमानों के लिए किसी भी प्रकार का भेद प्रस्तुत नहीं किया।

श्री हुसैन का विश्वास है कि[5]—"भवनों का क्रम मोटे रूप में निम्न-लिखित प्रकार से था—अकबर ने इसकी दीवारों और फाटकों को तथा अकबरी महल बनवाया था, जहाँगीर ने जहाँगीरी महल व सम्भवतः सलीमगढ़ का निर्माण करवाया था तथा औरंगजेब ने शेरे-हाजी या चहार-दीवारी, पाँच द्वार और बाहर की खाई की संरचना कराई थी।"

हमें आश्चर्य यह है कि लेखक जो एक पुरातत्वीय कर्मचारी था, न जाने किस आधार पर उन निष्कर्षों पर पहुँचा है। पहली बात यह है कि उसने स्वयं ही एक पद-टीप में उस परम्परा का उल्लेख किया है जिसमें कहा जाता है कि किला पूर्व-कालिक हिन्दू उद्गम का है। दूसरी बात यह है कि वह किस आधार पर दीवारों व फाटकों तथा अकबरी महल का निर्माण-श्रेय अकबर को और फिर पाँच द्वारों का निर्माण-श्रेय औरंगजेब को देता है? ऐसी अनुमानगत धारणाओं में और भी बहुत सारी तर्कहीनताएँ हैं। अकबर

५. श्री हुसैन की पुस्तक, वही, पृष्ठ २।

द्वारा अकबरी महल निर्माण किए जाने की बात कहना इसी प्रकार है जैसे यह कहना कि महात्मा गांधी और जवाहरलाल नेहरू ने विश्व-भर में बनी अपने नाम वाली सड़कों का निर्माण स्वयं ही किया था। एक अन्य ध्यान देने योग्य बात यह है कि श्री हुसैन ने किसी भी भवन-निर्माण का श्रेय शाहजहाँ को नहीं दिया है यद्यपि अन्य उग्रवादी मुस्लिम कथाओं ने अत्यन्त उदारतावश कम-से-कम ५०० भवनों का निर्माण-श्रेय उसी को दिया है। साधारणत: मूल योजना की एक परिपूर्ण इकाई के रूप में ही एक किले की कल्पना की जाती है और फिर उसका निर्माण किया जाता है। यह कुछ-कुछ कल्पना करके तथा अव्यवस्थित रूप में नहीं बनाया जाता। आगरा-स्थित लालकिले के सम्बन्ध में कुछ शिल्पकला का यशार्जन करने के बारे में विभिन्न मुस्लिम बादशाहों के नामों के मध्य एक-दूसरे से प्रतिस्पर्धा लगी प्रतीत होती है क्योंकि मुस्लिम दरबारों के चापलूसों और खुशामदियों ने बेधड़क और मनमाने ढंग से अपने-अपने शाही संरक्षकों के पक्ष में जाली दावे प्रस्तुत करके इतिहासकारों को बोझिल कर दिया है। इस प्रकार सिकन्दर लोधी, सलीम शाह सूर, जहाँगीर, शाहजहाँ, औरंगजेब तथा उत्तरकालीन मुस्लिम उग्रवादियों के दरबारों के मुस्लिम उग्रवादियों ने अपने-अपने शाही-संरक्षकों को किले की दीवारों और दरवाजों का या भवनों और अन्दर बने स्तम्भों का निर्माण-श्रेय दिया है। इस प्रकार इतिहास के कपटपूर्ण दुर्व्यवहार का परिणाम इतिहास शिक्षकों, लेखकों, अनुसन्धानकर्ताओं, पुरातत्व विभाग के कर्मचारियों और अनभिज्ञ दर्शकों के मन में ऐतिहासिक स्थलों के बारे में सर्वत्र पूर्ण भ्रम का जन्म ही हुआ है।

हम अब पाठक से एक अन्य पुस्तक की चर्चा करेंगे। उसका लेखक लिखता है[६]—"इस सम्बन्ध में कोई सन्देह नहीं हो सकता कि आगरा हिन्दू-मूलक है। इसके नाम की 'अग्र' धातु ही संस्कृत की है जिसका अर्थ पहले या प्रथम है। यह शब्द यूनानी लेखक क्विन्टस कर्टियस द्वारा उल्लेख किए 'अग्रेमस' शब्द से मिलता-जुलता है। आगरा की अति प्राचीनता का प्रमाण

६. श्री एम० एस० लतीफ़ कृत आगरा—ऐतिहासिक और वर्णनात्मक पुस्तक का पृष्ठ २।

उस जिले में समाविष्ट कुछ विशेष प्राचीन नगरों से भी लक्षित हो जाता है।"

लेखक पर्याप्त सदाशय वृत्ति वाला व्यक्ति है कि उसने ईमानदारी से मान लिया है कि 'अग्र' एक संस्कृत शब्द है। इससे हमें एक अत्युत्तम अवसर पाठक को यह बात बताने का मिल जाता है कि किस प्रकार मध्यकालीन मुस्लिम दरबारी खुशामदियों और चापलूसों ने अपने पापिष्ठ और उर्वर मस्तिष्कों से अपने शाही मुस्लिम संरक्षकों को प्रसन्न करने के लिए अथवा अपनी इस्लामी अहमन्यता की तुष्टि के लिए बिल्कुल सफेद झूठ गढ़ लिया था। ऐसा ही मध्यकालीन चापलूस नियामत-उल्ला नामक व्यक्ति था जो तारीखे-खान जहान लोधी नामक छद्म-ऐतिहासिक पुस्तक का लेखक है। उस पुस्तक में वह निर्लज्ज मुख से वर्णन करता है[७] कि सिकन्दर लोधी ही वह व्यक्ति था जिसने न केवल आगरा नगर की स्थापना की अपितु इसका नाम भी उसी ने रखा क्योंकि जब सिकंदर लोधी ने अन्य दरबारी चापलूस मिहतर मुल्ला खान से पूछा था कि किस टीले पर आगरा नगर की स्थापना की जाय तो उसने कहा था कि अग्र (आगे वाले) पर। सिकन्दर लोधी ने तब विचार प्रकट किया था कि 'अग्र' नाम उस नगर के लिए बिल्कुल उपयुक्त था। इतिहास में छद्मनामी मध्यकालीन मुस्लिम चाटुकारों द्वारा ऐसी ऊल-जलूल कहानियों की सृष्टि की गई है। अपने उग्र इस्लामी जोश में वह यह भी भूल गया कि उससे पूर्व शताब्दियों से चले आ रहे असंख्य अन्य ऐतिहासिक वर्णनों में भी आगरा का नाम उल्लेख किया हुआ मिलता है। असत्यसिद्धकारी साक्ष्यों की ऐसी विपुल संख्या की विद्यमानता होते हुए भी नियामतउल्ला जैसा छद्म-तिथिवृत्तकार गाल बजाता हुआ कहता है कि 'अग्र' शब्द और स्वयं आगरा नगर उसके स्वामी सिकन्दर लोधी द्वारा प्रचलित किए गए थे।

किसी एक चाटुकार द्वारा प्रयुक्त संयोगवशात् विशेषण को नगर के नाम में बादशाह द्वारा चुन लेने की बेहूदगी के अतिरिक्त आश्चर्य की बात यह भी है कि और तो और सिकन्दर लोधी व उसके अशिक्षित अथवा अर्ध-शिक्षित प्यादे क्या कभी संस्कृत भाषा को बोल या जान भी सकते थे ? वे

---

७. इलियट और डासन, खंड-५, पृष्ठ ६८ व उससे आगे।

संस्कृत नाम की बात किस प्रकार सोच सकते थे ! और यदि उन्होंने 'अग्र' नाम का आविष्कार किया ही था तो सिकन्दर लोधी और उसके चाटुकार से शताब्दियों पूर्व 'अग्र' नाम से प्राप्त सन्दर्भ का स्पष्टीकरण क्या है ?

अन्य लेखक यह कहना श्रेयस्कर समझता है[८]—"इतिहासकारों के अनुसार यह किला उस बादलगढ़ के स्थान पर है जो राजा बादलसिंह द्वारा निर्मित एक सुदृढ़ किला था और जिसे वर्तमान किले के निर्माण के लिए नष्ट कर दिया गया था। तथ्य बात तो यह है कि किला आज जिस रूप में खड़ा है, वह क्रमिक बादशाहों के संयुक्त प्रयत्नों का परिणाम है। अकबर द्वारा रूपरेखांकित और निर्मित होने के बाद इसमें वृद्धि जहाँगीर और शाहजहाँ द्वारा की गई थी।"

यह स्पष्ट है कि उपर्युक्त पर्यवेक्षण का अनेक कारणों से कोई ऐतिहासिक मूल्य नहीं है। पहली बात तो यह है कि लेखक जन-किंवदन्ती पर अन्ध-विश्वास करता है क्योंकि वह उनको 'इतिहासकार' समझता है यद्यपि इतना भी कष्ट नहीं करता कि उनकी रचनाओं का मूल्यांकन तो कर लेता। दूसरी बात यह है कि वह बताता नहीं कि बादलसिंह कौन था और उसने कब, कहाँ और कितने समय तक राज-शासन किया। तीसरी बात वह सरलतापूर्वक विश्वास करता प्रतीत होता है कि एक किले को पूर्णतः ध्वस्त करना और उसी के स्थान पर दूसरे किले का निर्माण करना अकबर के बाएँ हाथ का खेल था। अकबर को केवल इतना ही कहना था, "बादलगढ़ का पुराना किला नष्ट हो जाए और उसके स्थान पर दूसरा किला बन जाए" और वाह, देखिए ! बादलगढ़ के स्थान पर नया और ताजा अकबर का किला बनकर तैयार खड़ा था। चौथी बात यह है कि यह सुझाव बिल्कुल बेहूदा है कि अकबर जो अशिक्षित बादशाह था, आगरे के लालकिले जैसे अत्यन्त विस्तृत किले का रूपरेखांकन तैयार कर सकता था, जिसमें अत्यन्त संभ्रम में डालने वाले अनेक भवन-संकुल हैं। जब तक भवन-रूपरेखांकन का गहन प्रशिक्षण प्राप्त न किया हो, तब तक शिल्पकलात्मक-रेखा खींचने में तो कोई अत्युच्च शिक्षा प्राप्त व्यक्ति भी सफल न हो पाएगा। पाँचवीं बात

८ ताज की नगरी आगरा की एक यात्रा, पृष्ठ-२० : लेखक श्री ए० सी० जैन, लालचन्द एण्ड संस, २५६३, धर्मपुरा, दरीबा कलाँ, दिल्ली।

यह है कि हम पहले ही देख चुके हैं कि एक अन्य लेखक ने शाहजहाँ को किसी भी भवन-निर्माण का यश नहीं दिया है। छठी बात यह है कि यह कल्पना करना भी गलत है कि अकबर ने तो किले का केवल रूपरेखांकन ही किया था, उसके बेटे और पोते ने इसमें भवनों की पूर्ति कर दी। सातवीं बात यह है कि ये तीनों मुस्लिम बादशाह तो आजीवन अपने विरोधियों को दबाने में और युद्धों में संलग्न रहे। भवनों के निर्माण के हेतु उनके पास न तो धन था, न ही समय तथा धैर्य। आठवीं बात यह है कि अपनी साज-सजावट, भव्यता और विशालता में पूर्ण बादलगढ़ तो वहाँ पहले ही विद्यमान था। तथ्य रूप में बात यह है कि मुस्लिमों ने तो भारत के धन-धान्य को लूटने एवं इसके असंख्य सुन्दर भवनों पर आधिपत्य करने के विचार से ही बार-बार आक्रमण किए थे। यदि भारत में भवन और धन-धान्य विपुल मात्रा में न होता तो मुस्लिम संहारक-लोग भारत में आए ही न होते।

आइए, हम अब एक अन्य लेखक की बातों पर विचार करें। वह पर्यवेक्षण करता है[९]—"जहाँगीर द्वारा उल्लेख किया गया पुराना किला, जिसके स्थान पर अकबर ने अपना किला बनवाया, सलीम शाह सूर द्वारा निर्माण कराया गया था, जिसने इसे 'बादलगढ़' नाम दिया। पुराना किला सिकन्दर और इब्राहीम के मध्य लड़े हुए युद्ध में विनष्ट हो गया था तथा उस घटना की तारीख 'आतिशे-बादलगढ़' (बादलगढ़ की आग) शब्दों में पाई गई थी जो अहजाद-राज्यशासन के अनुसार ९६२ हिजरी अर्थात् १५३६ ईसवी सन् है।"

उपर्युक्त कथन में अनेक दोष हैं। पहली बात यह है कि इसमें अकबर द्वारा किले को बनवाने के बारे में जहाँगीर के कथन को सत्य मान लिया गया है जो सत्य बात नहीं है। एक अन्य कल्पना कि अकबर ने एक किला बनवाया यद्यपि सलीम शाह सूर का निर्मित एक किला वहीं पर विद्यमान था, भी अनुचित, अग्राह्य है। अकबर एक किले को क्यों गिराता यदि यह कुछ ही वर्ष पूर्व बिल्कुल नया-नया बना था? यह धारणा कि सलीम शाह सूर ने एक किला बनवाया, भी निराधार है। यह एक अन्य विपरीत क्रम

९. श्री एस० एम० लतीफ़ कृत 'आगरा : ऐतिहासिक और वर्णनात्मक' पुस्तक का पृष्ठ ३४।

वाली धारणा है कि वह (एक विदेशी मुस्लिम) इसे निर्माण करने के बाद किले का नाम हिन्दू नाम पर 'बादलगढ़' रखेगा। यह विश्वास करना भी दोषपूर्ण है कि सिकन्दर और इब्राहीम लोधी के बीच हुए युद्ध में एक पूरा का पूरा किला पूर्णतः लुप्त—अस्तित्वहीन हो गया। यदि किले को पूर्णतः विनष्ट कर चुकने वाली अग्नि को 'बादलगढ़ की आग' के नाम से पुकारा जाता है, तो क्या यह बात सही नहीं है कि किले को अग्निकांड के बाद दुबारा बनवाया था ? इसी बात से इतिहासकारों द्वारा की गई गल्ती स्पष्ट हो जाती है। इस तथाकथित अग्नि से पूर्व और पश्चात् भी बादलगढ़ विद्यमान था। यदि था भी तो, अग्निकांड नगण्य ही रहा। इसका अर्थ यह है कि सलीमशाह सूर ने पूर्वकालिक हिन्दू बादलगढ़ पर अधिकारमात्र ही किया था, उसी में निवास किया था। उसने इसको बनवाया अथवा फिर से निर्माण नहीं कराया। यद्यपि सलीम शाह सूर से पूर्व भी आगरे में लालकिला था तथापि उसी को उस किले के निर्माण कराने का श्रेय देने वाले उन मध्यकालीन तिथि-वृत्तकारों ने यह श्रेय प्रदान करने का कार्य मात्र दरबारी चापलूसी और इस्लामी उग्रवाद के विचारोंवश झूठ अंकित करने के स्वभाव से ही किया है। प्रसंगवश यह भी कह दिया जा सकता है कि ऊपर दिए गए अवतरण का लेखक उन लोगों से स्पष्टतः असहमत है जो कहते हैं कि बादलगढ़ का निर्माण बादलसिंह नामक किसी हिन्दू शासक के द्वारा किया गया था। इसका अर्थ यह है कि सभी इतिहासकार अभी तक निराधार अनिश्चयात्मक कथन और अनुचित कल्पनाएँ करके असावधानीवश अथवा जान-बूझकर सरकार और जनता, दोनों को ही धोखा देते रहे हैं।

वही लेखक आगे पर्यवेक्षण करता है[10]—"सन् १५७१ में बना, अकबर द्वारा बनवाया गया आधुनिक किला भारत की सर्वोत्तम स्थापत्य रचनाओं में से एक है। यह सारा का सारा अपने संस्थापक अकबर से सम्बन्धित नहीं है, क्योंकि इसका अधिकांश भाग उसके परवर्तियों द्वारा बनवाया गया था, किन्तु इसकी रूपरेखा तैयार करने का श्रेय उसी बादशाह को दिया जाता है।"

---

१०. श्री एस० एम० लतीफ़ की पुस्तक, वही, पृष्ठ ७४।

ऊपर दिए हुए कथन में भी अनेकों विसंगतियाँ और परस्पर-विरोधी बातें हैं। यह धारणा कि दर्शक को आज दिखाई देने वाला आगरे का लालकिला अकबर द्वारा बनवाया गया था, स्वयं ही गलत है। इस वक्तव्य को प्रमाणित करने के लिए तो अकबर के दरबारी-कागजों में एक कतरन भी उपलब्ध नहीं है। न ही ऐसा कोई परिस्थिति-साक्ष्य प्रत्यक्ष है। ये वक्तव्य कि अकबर ने किला बनाया और 'इसका अधिकांश भाग उसके परवर्तियों द्वारा बनवाया गया था' स्वयं ही परस्पर-विरोधी हैं। क्या अकबर ने केवल परिधीय-प्राचीर बनाई थी और उसके अनुवर्तियों ने भीतर स्थित भवन ! यदि ऐसा ही है, तो भी इस बात का आधार, प्रमाण क्या है ? दूसरा कथन कि अकबर ने स्वयं ही रूपरेखांकन-कार्य किया था, अत्यन्त अनुचित और विक्षोभकारी है। क्या अकबर कोई नियमित नगर रचना-शास्त्री था जो वह किले की रूपरेखा तैयार कर सका ? वह तो निपट निरक्षर था।[११] वह तो धुत्त शराबी, स्त्रैण-लम्पट, जड़ी-बूटी पीने वाला और अनवरत युद्धों में व्यस्त रहा व्यक्ति था। उसे तो सदैव एक-न-एक विद्रोही को कुचलने का कार्य लगा ही रहता था। क्या ऐसे व्यक्ति को एक किले का रूपरेखांकन-कार्य करने का हृदय अथवा मस्तिष्क या समय उपलब्ध रहा हो सकता था ? यह वक्तव्य भी सहज ही अति दुर्बोध, अस्पष्ट है कि अकबर ने किले को सन् १५७१ में बनवाया था। क्या इसका अर्थ यह है कि निर्माण-कार्य सन् १५७१ में पूर्ण हो गया था अथवा यह सन् १५७१ में तो केवल प्रारम्भ ही हुआ था ? अथवा इसका अर्थ यह है कि किला सन् १५७१ में ही प्रारम्भ होकर भी सन् १५७१ में ही पूर्ण हो गया था ? जिन लोगों ने अधिक इतिहास का अध्ययन नहीं किया है, वे लोग भी इस प्रकार का सूक्ष्म-विवेचन करने के पश्चात् जान जाएँगे कि सरकारी-प्रेरणा पर तथा निजी प्रकाशनों द्वारा उनको प्रस्तुत किया जाने वाला इतिहास झाँसा और शेखी है। कुल मिलाकर कुछ रूढ़िवादी कल्पनाएँ और धारणाएँ बन गई हैं—मध्यकालीन मुस्लिम दरबारों के स्वार्थी चाटुकारों द्वारा अभिप्रेरित कूटार्थों से प्रारम्भ होकर मात्र किंवदन्ती एक पीढ़ी से भावी पीढ़ियों तक चलती आई है।

---

११. श्री पी० एन० ओक की पुस्तक 'कौन कहता है अकबर महान था' में वर्णित।

हम अब पाठक का ध्यान एक अन्य इतिहासकार की ओर आकृष्ट करते हैं। वह ब्रिटिश इतिहासकार कीन है। उसने लिखा है[१२]—"सन् १४५० से १४८८ तक दीर्घावधि शासन करने वाला बहलोल लोधी दिल्ली का पहला बादशाह था जो आगरा पर सीधा मुहम्मदी शासन स्थापित कर पाया। यह बात पहले ही ध्यान में आ चुकी है कि इस नगर के अति प्राचीन इतिहास में एक किला यहाँ पर विद्यमान था तथा परम्परा के अनुसार बादलसिंह नामक एक राजपूती सरदार था जिसके नाम पर बादलगढ़ किले का नाम रखा गया था। इन किलों का पारस्परिक सम्बन्ध कहीं लिखित मिलता नहीं है। इसमें सन्देह नहीं है कि बादलगढ़ पुराने किले के स्थान पर ही बना था। और यह भी पूर्णतः सिद्ध है कि जब बहलोल लोधी ने आगरे पर कब्जा किया, तब वहाँ पर एक किला बना हुआ था। अतः बादलगढ़ उस समय आगरे का किला था···किन्तु इस किले को यह नाम कब दिया गया था, अब निश्चित नहीं किया जा सकता।"

प्रत्यक्ष रूप में कीन के सम्मुख सभी तथ्य ठीक-ठीक रूप में प्रस्तुत हैं। एक मात्र कठिनाई यह है कि वह मध्यकालीन मुस्लिम तिथि-वृत्तकारों के झाँसे में आकर ठगे जाने से अनभिज्ञ है। कीन को इस बात का ज्ञान नहीं है कि मुस्लिम इतिहासकारों ने या तो इस तथ्य को छुपा लिया कि आगरे में एक प्राचीन हिन्दू किला था अथवा उन्होंने यह भ्रम फैला दिया था कि पुराना हिन्दू किला ध्वस्त कर दिया गया था। इस बारे में भी वे एक मत नहीं हैं। कुछ लोग कहते हैं कि हिन्दू किला अग्निकाण्ड में या विस्फोट में नष्ट हो गया था तथा कुछ कहते हैं कि यह भूकम्प द्वारा अथवा तीनों ही कारणों से ध्वस्त हो गया था। किन्तु कब और कितना नष्ट हुआ था, कोई जानता नहीं। इसी भ्रम को अधिक विस्तार देने वाले कई मुस्लिम चाटुकार हैं जो यह दावा प्रस्तुत करने में एक-दूसरे से चिढ़ते हैं, बढ़-चढ़-कर कहते हैं कि आगरे का लालकिला उनके अपने-अपने स्वामियों, शासकों ने बनवाया था। इस प्रक्रिया में उन्होंने असंख्य भ्रामक और विरोधी दावों से इतिहास को बोझिल कर दिया है। कीन और अन्य इतिहासकारों

१२. कीन्स हैंड बुक, वही, पृष्ठ ५।

ने उन मनगढ़न्त दावों के जाल में असहाय रूप में फँसा हुआ अनुभव किया है। वे समझ नहीं पा रहे कि बात क्या है ! हम जैसा पहले ही स्पष्ट कर चुके हैं, आगरे का लालकिला एक अति प्राचीन हिन्दू किला है जो ईसा-पूर्व काल से सम्बन्ध रखता है। मध्यकालीन युग में वही किला बादलगढ़ नाम से प्रचलित, प्रसिद्ध हो गया। मध्यकालीन भारत में हिन्दू किलों के अनेक शाही भाग अथवा उसके निकट के स्थान भी उन्हीं नामों से जाने जाते थे। अत: बादलसिंह नामक ऐसा कोई राजपूती सरदार नहीं हुआ जिसके नाम पर बादलगढ़ प्रसिद्ध हुआ था। यही बात कीन उस समय स्वीकार करता है जब वह कहता है कि मैं यह पता कर पाने में असमर्थ हूँ कि 'बादलगढ़' नाम कब प्रारम्भ हुआ।

कुछ भी सही, कीन ने किले का अधिक संगत वर्णन प्रस्तुत किया प्रतीत होता है। वह यदि केवल इतना सावधान भर रहा होता कि मध्यकालीन मुस्लिम तिथिवृत्त अविश्वसनीय हैं तो उसे यह जानकर अति प्रसन्नता हुई होती कि उसे तो अपने सम्मुख ही किले का स्पष्ट और सतत, अटूट इतिहास प्राप्त था चूँकि हम पहले ही देख चुके हैं कि कीन ने आगरे के किले का इतिहास ईसा पूर्व तीसरी शताब्दी तक को ढूँढ़ ही लिया है, जिस समय अशोक का शासन था। उसी ने हमको सलमान की साक्षी पर यह भी बताया है कि उसी किले पर हिन्दू राजा जयपाल ने भी शासन किया था जब सन् १०१५ के लगभग महमूद गज़नी ने आगरे पर आक्रमण किया था। उसी किले में सन् १४५० और १४८८ ई० के बीच किसी समय बहलोल लोधी का अधिकार था और सन् १५६५ तक अकबर भी उसी किले पर कब्ज़ा किए रहा। यद्यपि कहा जाता है कि अकबर ने उस किले को सन् १५६५ में ध्वस्त कर दिया था, तथापि वह दावा स्पष्टत: मनघड़न्त ही है क्योंकि उसी किले में सन् १५६६ में आज़म खान नामक दरबारी की हत्या की गई थी और हत्यारे आधम खान को किले की छत के ऊपर से नीचे पटककर मार डाला गया था। यदि किला सन् १५६५ में विनष्ट हो गया था, तो एक ही वर्ष में बनकर आवास-योग्य यह नहीं हो सकता था। इतना ही नहीं, यह तथ्य कि किले के शाही भाग अभी भी बादलगढ़ के नाम से प्रचलित, प्रसिद्ध हैं, सिद्ध करता है कि ईसा-पूर्व काल का हिन्दू किला जो मध्यकालीन युग में बादलगढ़

नाम से जाना जाता था, आज भी हमारे युग में ज्यों-का-त्यों विद्यमान है।

हमें, इस प्रकार, आगरे के किले का २२०० वर्षीय अटूट दीर्घ इतिहास उपलब्ध होता है। यह प्रदर्शित करता है कि सिकन्दर लोधी, सलीम शाह सूर और अकबर की ओर से किए जाने वाले ये दावे कि उन्होंने या उनमें से किसी एक ने पुराने किले को ध्वस्त कर दिया था या अग्निकांड या एक भूकम्प या एक विस्फोट द्वारा वह किला विनष्ट हो गया था तथा उन तीनों मुस्लिम शासकों ने उसी एक स्थान पर ही एक किले को बनवाया और फिर-फिर बनवाया था, ऐतिहासिक झूठी अफवाहें हैं। यह तथ्य कि किले के साथ बादलगढ़ नाम अभी भी प्रयोज्य है तथा इसकी पूरी साज-सजावट हिन्दू कलात्मक है, इस कृति के हिन्दू मूल और स्वामित्व का अकाट्य प्रमाण है।

लालकिले के पत्थर लोहे की पट्टियों द्वारा एक-दूसरे से बँधे हुए हैं। यह शैली स्वयं ही अति प्राचीन है तथा केवल हिन्दुओं को ही ज्ञात थी व उन्होंने ही इसका प्रयोग किया था। अतः, जहाँ कहीं यह शैली प्रयुक्त मिलती है, वह इस बात का निश्चित प्रमाण है कि हिन्दू नगर-रचना का ज्ञान ही प्रस्फुटित हुआ है।

एक पदटीप में कीन ने कहा है[13] : "बादशाह जहाँगीर ने अपने स्मृति-ग्रंथ में लिखा है : अफगान लोधियों के युग से पहले आगरा एक बड़ा शहर था।" अकबर के इतिहासकार अबुलफजल ने अपनी आईने-अकबरी में उल्लेख किया है कि आगरा में एक प्राचीन पठान किला था और चूँकि पठान लोग दिल्ली के बादशाहों के रूप में अफगानों से पूर्व गद्दी पर बैठे थे, इसलिए यह किला बहलोल लोधी के काल में भी विद्यमान रहा होगा तथा निस्सन्देह रूप में यह बादलगढ़ ही था। इस इतिहासकार द्वारा वर्णित किले को सन् १२०६ से १४५० के मध्य दिल्ली पर शासन करने वाले किसी पठान बादशाह ने इस किले को बनवाया था—यह उल्लेख तो नहीं है; महत्त्व की बात यह है कि बादशाह के अनेकों इतिहासकारों में से किसी ने भी इस किले के निर्माण का उल्लेख नहीं किया है। अतः यह निष्कर्ष

१३. कीन्स हैंड बुक, वही, पृष्ठ ५।

निकाला जा सकता है कि अबुलफजल विचाराधीन किले की प्राचीनता को सिद्ध करते समय इसके मूलोद्गम के बारे में अनायास ही गलती में पड़ गया।"

कीन ने यहाँ पूर्णतः, यद्यपि सहज ही, मुस्लिम तिथिवृत्त लेखन के धोखे का भंडाफोड़ कर दिया है। उसने जिस बात को अनायास गलती समझा है, वह गलती न होकर अबुलफज़ल की उग्रवादी मनगढ़न्त कथा है। बादशाह के शाहज़ादे सलीम ने लिखा है कि अबुलफज़ल किस प्रकार गुप्त रूप में कुरान की नकल किया करता था यद्यपि घोषणा करता रहता था कि वह स्वयं इस्लाम की परवाह नहीं किया करता था। अबुलफज़ल की इस दोगली नीति को अत्यन्त क्लेशकारी और खतरनाक पाने पर ही जहाँगीर ने उसे घात लगवाकर मरवा डाला था। उसने और बहुत सारे स्वतन्त्र, निष्पक्ष इतिहासकारों ने अबुलफज़ल को "निर्लज्ज चाटुकार" की संज्ञा दी है। अबुलफज़ल हृदय से तो कट्टर मुस्लिम था, यद्यपि वह अकबर के सम्मुख मुस्लिम-धर्म का अनुयायी न होने की बात जब-तब किया करता था।

अतः भारतीय इतिहास के अध्येता व विद्वानों को अबुलफज़ल की लिखी हुई बातों को स्वीकार करने से पूर्व अत्यन्त सावधान, सतर्क रहना चाहिए। अबुलफज़ल की टिप्पणियाँ अनेक कारणों से अत्यन्त अविश्वसनीय हैं। दम्भी व्यक्ति होने के कारण जीवन में अबुलफज़ल का एक ही ध्येय था कि जिस-तिस प्रकार हो दरबार में प्रगति-पथ पर अग्रसर होता रहूँ। असाधारण पेटू और स्त्रैण, लम्पट होने के कारण भोगों में अत्यन्त लिप्त होते हुए उसे आत्मा, सदाचारिता या नैतिकता की कोई चिन्ता नहीं थी। एक अन्य महत्त्वपूर्ण बात, जो अभी तक इतिहासकारों ने अनुभव की है कि अकबर के शासन का अबुलफज़ल द्वारा लिखा गया तिथिवृत्त मात्र कल्पना और आकांक्षापूर्ण लिखाई ही है। उसने तथ्यों की पुष्टि कर लेने अथवा किसी अभिलेख को भी देख लेने का कष्ट ही नहीं किया। सत्य लेखन तो उसका उद्देश्य कभी था ही नहीं। वह तो अकबर को सिर्फ यह दिखलाना चाहता था कि वह सदैव लेखन-कार्य में व्यस्त रहता था और इसीलिए कभी युद्ध-क्षेत्र में उसे तैनात न कर दिया जाए। दिल्ली से बाहर जाने में कष्टमय जीवन व्यतीत करना पड़ता था, सेनाध्यक्षों के साथ झगड़े और बन्दी अथवा

घायल हो जाने का जोखिम सदैव सिर पर रहता था। दरबार से अनुपस्थित रहने पर बादशाह के ऊपर जो प्रभाव होता था वह भी नष्ट हो जाता था। इन सब कारणों से अबुलफज़ल अधिकांश समय दरबार में ही रहने की चाल-बाज़ी किया करता था। इसके बहाने के लिए वह सदैव जोशीला तिथिवृत्त-लेखन का दिखावा करता रहता था। वह समस्त लेखन-कार्य, निस्सन्देह ही बादशाह की अथक और अनवरत चापलूसी थी अन्यथा वह नाराज़ हो जाता। यदि अबुलफज़ल ने तथ्यों का ज्ञान प्राप्त किया होता तो उसमें उसे अत्यन्त कठोर परिश्रम करना पड़ा होता, जो जीवन में उसके उद्देश्य अथवा उसकी जीवन-पद्धति से मेल नहीं खाता था—और सत्य बात तो सदैव चाटुकारितापूर्ण नहीं रही होती। अतः सर्वोत्तम और सरलतम उपाय जोशीली काल्पनिक सुखद बातें अथवा अर्ध-सत्य लिखते रहना ही था। इन सब दृष्टियों से, अबुलफज़ल की आईने-अकबरी एक सर्वाधिक खतरनाक और भ्रामक तिथिवृत्त है जिसने इतिहास के सबसे सच्चे विवेकशील और परिश्रमी अन्वेषकों को चकरा दिया और हत-बुद्धि कर दिया है। आईने अकबरी को उपयोग में लाने वाले सभी व्यक्तियों को इसके अनेकों फंदों और पूर्णतः काल्पनिक तथा मनमाने आधार के प्रति भली-भाँति सजग, सावधान रहना चाहिए।

अतः जब अबुलफज़ल आगरा के लालकिले को 'एक पठान किला' कहता है, तब उसका जो अर्थ है यह केवल इतना ही है कि विदेशी पठान आक्रमणकारियों के हिन्दू राजाओं पर आक्रमण के पश्चात् वह किला पठानों के आधिपत्य में आ गया था। यदि उसने सुझाव दिया कि किला पठानों द्वारा बनवाया गया था, तो केवल इसलिए कि धर्मान्ध मुस्लिम के नाते वह यह स्वीकार करने में झिझकता है कि मुस्लिम आक्रमणकारीगण हिन्दुओं से जीते गए पुराने राजमहलों और भवनों में ठहरे हुए थे। इस प्रकार का विचार उसके इस्लामी स्वाभिमान को ठेस पहुँचाता था और इसीलिए उसका उल्लेख करने के विचार मात्र से उसे कँपकँपी हो जाती थी। इस प्रकार के भावों ने उसे विवश किया कि वह किले के हिन्दू-मूलोद्गम के स्थान पर पठान किले के रूप में उल्लेख करके अन्यथा अर्थ प्रस्तुत करे। अतः कौन यह निहितार्थ स्पष्ट करने में पूर्णतः सही है कि अबुलफज़ल को

इस किले को 'पठान किला' कहने का कोई अधिकार नहीं था जब पूर्व-कालिक पठान तिथि-वृत्तकारों में से किसी ने भी इस किले को किसी भी पठान-शासक द्वारा निर्मित होने की बात कभी नहीं कही थी। तथापि कीन इसे 'गलती' कहने पर भूल कर रहा है। वह और अन्य इतिहासकार यह अनुभव करने में असफल रहे हैं कि यह तो अबुलफज़ल की जान-बूझकर की गई शरारत थी।

कीन आगे लिखता है[१४] : "अपने पिता बहलोल लोधी की गद्दी पर सन् १४८८ में बैठने वाले सिकन्दर लोधी के पहले-पहल के कामों में अपने विरोधी हैवत खान से सन् १४९२ में आगरे को वापस अपने हाथों में लेना था। तथापि दिल्ली के दक्षिण वाले क्षेत्र में गड़बड़ी मची ही रही, अत: सिकन्दर लोधी आघात केन्द्र के निकट ही पहुँचने की दृष्टि से सन् १५०२ में आगरा अपने दरबार सहित जा पहुँचा, जो फिर उसकी राजधानी बन गया ···कहा जाता है कि सिकन्दर लोधी ने एक नगर बनाया था और आगरा के सामने यमुना नदी के बाएँ तट पर, कुछ ध्वंसावशेष ही उसके बचे-खुचे चिह्न कहे जाते हैं। उसे आगरे में एक किला निर्माण करने का श्रेय भी दिया जाता है, जिसका सम्भवत: अर्थ यह है कि सन् १५०५ के भूकम्प ने, जिसने आगरे के लगभग सभी भवनों को ध्वस्त कर दिया था, बादलगढ़ को भी इतनी बुरी तरह क्षति पहुँचाई थी कि यह कदाचित् उसी के द्वारा पुन: निर्मित हुआ था, कदाचित् सम्बन्धित सुरक्षा-पंक्तियों और हो सकता है चहारदीवारी के भीतर राजमहलों सहित। अकबर के समय तक इतिहास-कारों द्वारा उल्लेख किया एकमेव किला 'बादलगढ़' ही है : और यदि सिकन्दर लोधी ने यमुना के किसी भी तट पर एक किला बनवाया होता तो उसके चिह्न दृष्टिगोचर होते।"

कीन सदैव सत्य के अति निकट पहुँच गया प्रतीत होता है, किन्तु दुर्भाग्यवश, उसने मध्यकालीन मुस्लिम तिथिवृत्त-लेखन की शठता को अनुभव नहीं किया था। वह अति बुद्धिमत्ता से संकेत करता है कि सिकन्दर लोधी द्वारा आगरे में किला बनवाने के दावे की पुष्टि कहीं नहीं होती है

१४. कीन्स हैंड बुक; वही, पृष्ठ ५-६।

और न ही उस किले के चिह्न ही कहीं प्राप्त होते हैं। अकबर के समय तक ज्यों-का-त्यों प्राप्त यह तो 'बादलगढ़' ही था, कीन का प्रबल मत है। किन्तु हम इतना और जोड़ना चाहेंगे कि हम आज जिसे देखते हैं वह भी केवल बादलगढ़ ही है। सलीम शाह सूर या सिकन्दर लोधी के पक्ष में दिये गए दोनों दावों के समान ही अकबर के पक्ष में किया गया यह दावा भी उग्रवादी मुस्लिम असत्य कथा है कि अकबर ने आगरे में एक किले का निर्माण किया था। मध्यकालीन तिथिवृत्त-लेखन की असत्यता को पूरी तरह अनुभव न कर लेने के कारण ही कीन को अति दुर्बोध और असम्भव सम्भावनाओं पर भी विचार करना पड़ता हैं यथा : "सम्भवतः अर्थ यह है कि सन् १५०५ के भूकम्प ने, जिसने आगरे के लगभग सभी भवनों को ध्वस्त किया था, बादलगढ़ को भी इतनी बुरी तरह क्षति पहुँचाई कि वह कदाचित् उसी के द्वारा पुनर्निर्मित हुआ था, कदाचित् सम्बन्धित सुरक्षा-पंक्तियों और हो सकता है चहारदीवारी के भीतर राजमहलों सहित।" और, फिर उतनी बड़ी और छलपूर्ण धारणाओं के बाद कीन को हताश होकर स्वीकार करना पड़ा है कि "अकबर के समय तक इतिहासकारों द्वारा उल्लेख किया गया एकमेव किला 'बादलगढ़' ही है : और सिकन्दर लोधी ने यमुना के किसी भी तट पर एक किला बनवाया होता तो उसके कुछ चिह्न तो दृष्टिगोचर होते।" इस कथन ने आगरा में लालकिला बनवाने के सिकन्दर लोधी के दावे की धज्जियाँ उड़ा दी हैं।

हम यहाँ पाठक को यह स्मरण भी दिलाना चाहते हैं कि यदि इन विदेशी मुस्लिम शासकों में से किसी ने भी इस किले का निर्माण कराया था तो इन बातों का उल्लेख अवश्य मिलता कि भूमि किस व्यक्ति से ली गई थी, कब ली गई थी, उसकी कितनी क्षतिपूर्ति की गई थी, सर्वेक्षण किसने किया था, योजना किसने बनाई थी, भवन-निर्माण कब प्रारम्भ हुआ था, कितने कर्मचारी काम में थे और सारी सामग्री कहाँ से मँगाई गई थी।

इसी प्रकार के हिन्दू-अभिलेख हमसे माँगने वालों के लिए हमारे पास दो उत्तर हैं। पहली बात यह है कि हिन्दुस्थान (भारत) अरेबिया, ईरान, तुर्की, अफगानिस्तान, कज़कस्तान और उज़बेकिस्तान के विदेशी बर्बर लोगों के आधिपत्य में ११०० वर्ष की दीर्घावधि तक रहा है। इस लम्बे अधिकार-

काल में उन लोगों ने सभी हिन्दू अभिलेखों को नष्ट किया और जला दिया था। दूसरी बात यह है कि हम मुस्लिमों के भारत में अभ्युदय से पूर्व ही बादलगढ़ उपनाम लालकिले का उल्लेख पाते हैं तो वह तो हिन्दू स्वामित्व का एक प्रबल प्रमाण है। हिन्दुस्थान में प्राचीन भवन हिन्दुओं के अतिरिक्त किसके हो सकते थे! यदि विदेशी मुस्लिम उन पर अपने दावे करते हैं तो वह इस कार्य को अपने अभिलेख प्रस्तुत करके अथवा युक्तियुक्त तथा दोष-रहित परिस्थिति-साक्ष्य द्वारा ही सम्पन्न कर सकते हैं।

कीन ने पर्यवेक्षण किया है कि :[१५] "सिकन्दर लोधी की राजगद्दी पर बैठने वाला उसका सबसे बड़ा बेटा इब्राहीम अपने दरबार को आगरे में रखता था···।" यह प्रदर्शित करता है कि किस प्रकार एक पर एक मुस्लिम शासक आगरे को राजधानी के रूप में उपयुक्त समझता रहा, उपयुक्त पाता रहा। यह केवल तभी सम्भव था जबकि इसमें वर्तमान लालकिला—विशाल, सुरक्षित, लम्बा-चौड़ा और भव्य—विद्यमान था।

कीन ने आगे लिखा है :[१६] "(भारत में प्रथम मुगल बादशाह) बाबर ने (सन् १५२६ में पानीपत में इब्राहीम लोधी पर) विजयोपरान्त तुरन्त अपने बेटे हुमायूँ के नायकत्व में एक टुकड़ी बादलगढ़ का खजाना कब्ज़े में करने के लिए भेजी थोड़ी देर की मुठभेड़ के बाद किला हुमायूँ को समर्पित हो गया।" इस प्रकार हम देखते हैं कि सन् १५२६ तक आगरे का लालकिला हिन्दू बादलगढ़ के नाम से ही प्रचलित था, निर्बाध-रूप में पुकारा जाता था।

कीन ने आगे भी लिखा है[१७]—"(दिसम्बर १५३० में बाबर की मृत्यु के) तीन दिन बाद, बादलगढ़ के राजमहल में हुमायूँ की ताज-पोशी की गई थी और उसके शासनकाल के प्रथम १० वर्षों में, दिल्ली की अपेक्षा आगरा ही अधिकतर उसकी राजधानी रहा था।" इस कथन से बादलगढ़ की पहचान सन् १५३० से १० वर्ष और आगे अर्थात् सन् १५४० तक उपलब्ध हो जाती है। इस प्रकार सन् १५४० तक हिन्दू बादलगढ़ के अतिरिक्त यह और कुछ नहीं है।

---

१५. कीन्स हैंड बुक, वही, पृष्ठ ६।
१६. कीन्स हैंड बुक, वही, पृष्ठ ७।
१७. कीन्स हैंड बुक, वही, पृष्ठ ८।

[18]"दूसरी बार शेरशाह उसके (हुमायूँ के) पीछे आगरा तक गया, बादलगढ़ पर अधिकार कर लिया, हुमायूँ भाग गया"—कौन कहता है। इसका अर्थ है कि शेरशाह (सन् १५४०-४५) को भी बादलगढ़ पूरी तरह ठीक-ठाक ही मिला था। शेरशाह ने आगरे को अपना स्थाई निवास बना लिया, किन्तु उसकी अनेक सैनिक चढ़ाइयों की व्यस्तता के कारण आगरे को जाज्वल्यमान बनाने का उसे कोई समय नहीं मिला।"

[19]"शेरशाह के दूसरे बेटे जलाल खान अपने पिता की मृत्यु(सन् १५४५ में) सुनने के बाद आगरे की ओर तेजी से बढ़ा और इस्लाम शाह सूर की पदवी धारण कर राजगद्दी पर जा बैठा। इस तथ्य से कि उस किले में एक स्थान सलीमगढ़ नाम का था किन्तु उसके समय के कोई भवन नहीं मिलते। इसी बात से अटकलबाजी लगाई जा सकती है कि उसने बादलगढ़ के अन्दर एक राजमहल बनाया था। उसका अधिक प्रसिद्ध नाम सलीम शाह सूर है।"

उपर्युक्त अवतरण भारतीय इतिहास के विद्वानों की सरलता और मध्यकालीन मुस्लिम तिथि-वृत्ताकारों की जाली-रचनाओं द्वारा उन विद्वानों में मतिविभ्रम का एक विशद उदाहरण है। इतिहासकारों से आशा की जाती है कि वे किसी भी बात में विश्वास या अविश्वास करने से पूर्व प्रबल प्रमाण चाहेंगे। हम अब जानते हैं कि कौन को किन कारणों-वश अटकलबाजियों पर निर्भर करना पड़ता है और यदि कोई अटकलबाजी करनी ही है, तो अनुमान यह करना चाहिए कि सलीम शाह सूर ने कुछ भी निर्माण नहीं किया था। उसका शासनकाल सात वर्ष की अल्पावधि का था। वह सन् १५५२ में मरा था। यही तथ्य कि वह आगरा में नहीं मरा बल्कि ग्वालियर में मरा, प्रदर्शित करता है कि अपनी सात वर्ष की अल्पावधि में भी वह हर समय आगरे में ही नहीं रहा। साथ ही कोई ऐसा अभिलेख नहीं है जो यह प्रदर्शित करे कि उसने कुछ बनवाया था। मुस्लिम दरबारों के चापलूसों और खुशामदियों के मात्र हठधर्मी वर्णनों पर तब तक बिल्कुल भी विश्वास नहीं करना चाहिए जब तक स्वतन्त्र प्रबल अन्य साक्ष्यों से उन्हीं बातों की पुष्टि न होती हो। उस अस्पष्ट और निराधार अटकलबाजी में भी जिस

---

१८. वही, पृष्ठ १०।
१९. वही, पृष्ठ ११।

बात का दावा किया गया है वह यह है कि सलीम शाह सूर ने बादलगढ़ के भीतर एक राजमहल बनवाया था, न कि स्वयं बादलगढ़ ही बनवाया था। स्वयं यह दावा भी अग्राह्य है क्योंकि दरबारी अभिलेखों से उसकी कोई पुष्टि होती नहीं। इसके समर्थन में कोई परिस्थिति-साक्ष्य भी नहीं है सिवाय कुछ अनुत्तरदायी लिखावटों के, जो कुछ कल्पनाशील दरबारी चाटुकारों ने लिखी थीं। इतना ही नहीं, उस राजमहल का कोई नाम-शेष कहीं नहीं है, कीन का कहना है। इसका अर्थ यह हुआ कि किसी तिथिवृत्तकार की कल्पना में ही राजमहल की सृष्टि हुई थी और उसी की बात को बाद की पीढ़ी के पाठकों ने बिना किसी सत्यापन के ही ज्यों-का-त्यों सत्य मान लिया था। इतिहास के विद्यार्थियों और विद्वानों को मुस्लिम तिथिवृत्तों में लिखी हुई बातों को अन्धानुकरण करते हुए तब तक विश्वास नहीं कर लेना चाहिए जब तक कि उनकी पुष्टि में दृढ़ प्रलेखों अथवा परिस्थितियों का साक्ष्य प्रस्तुत न हो। इस विषय में विश्व-भर के मुस्लिम तिथिवृत्तों में घोरतम शैक्षिक संकट समाविष्ट है। इन तिथिवृत्तों ने शैक्षिक विश्व को इतने व्यापक रूप में भ्रमित, पथभ्रष्ट किया है कि इस्लाम के इतिहास, मुस्लिम विजयों के इतिहास और मुस्लिम बादशाहों तथा सुलतानों द्वारा अधिशासित देशों के इतिहास को सही दिशा पर लाने में कई पीढ़ियाँ और अनेक विशाल ग्रंथों की शक्ति लग जाएगी।

कीन ने बादलगढ़ का वर्णन करते हुए लिखा है—[२०]"(सन् १५५५ के) इसी वर्ष में आगरे में एक भयंकर दुर्भिक्ष पड़ा था और बादलगढ़ बारूदखाने के विस्फोट से चूर-चूर हो गया था।"

इससे बादलगढ़ का सतत इतिहास ईसा पूर्व युग से सन् १५५५ तक निर्बाध रूप में प्राप्त हो जाता है। बारूदखाने का विस्फोट अधिक-से-अधिक दीवार का एक भाग ही गिरा सकता था। एक बहुत विशाल क्षेत्र में फैले हुए किले की पूरी दीवार को तो वह विस्फोट फोड़ नहीं सकता। यह निष्कर्ष अकबर द्वारा पुष्ट किया गया है जो तीन वर्ष बाद उसी किले में जाकर रहा था। कीन का पर्यवेक्षण है—[२१]"अकबर पहली बार आगरा सन् १५५८ में

२०. वही, पृष्ठ १२-१७।
२१. वही, पृष्ठ १७-१८।

आया और इस समय उसने अपना आवास उस स्थल पर किया जहाँ अब सुलतानपुर और खवासपुर नामक गाँव हैं, कुछ समय बाद बादलगढ़ के पुराने किले में चला गया; और इस प्रकार उसका आगरे से आजीवन सम्बन्ध प्रारम्भ हो गया।"

कीन का यह पर्यवेक्षण[२२] कि "अकबर ने सन् १५६५ में बादलगढ़ को गिराने और उसी स्थान पर अकबर का किला नाम से पुकारा जाने वाला किला बनवाना प्रारम्भ कर दिया" स्वयं उसी के द्वारा दिए गए पदटीप से निरस्त हो जाता है जिसका उल्लेख हम पहले ही कर चुके हैं। उस पदटीप में वह ठीक ही लिखता है कि यदि अकबर ने बादलगढ़ को धराशायी करने का कार्य सन् १५६५ में प्रारम्भ कर दिया था तो एक ही वर्ष बाद सन् १५६६ में किस प्रकार कोई व्यक्ति राजमहल के भाग में मार डाला जा सकता और उसका हत्यारा ऊपरी छत से नीचे फेंका जा सकता था? उस बात से कीन ने सही निष्कर्ष निकाला है कि बादलगढ़ का अस्तित्व तो सन् १५६६ में भी रहा होगा। यदि यह बात है तो यह वक्तव्य कि अकबर ने सन् १५६५ में बादलगढ़ को गिराने का कार्य प्रारम्भ कर दिया था, अकबर के चाटुकारों द्वारा प्रचारित अभिप्रेरित झूठ है जो उन्होंने इस्लामी उग्रवाद और बादशाह को विश्व-भर की सभी अच्छी वस्तुओं का निर्माण-श्रेय देकर प्रसन्न करने की भावना से किया था।

किले के उत्तरकालीन इतिहास के सम्बन्ध में कीन कहता है कि—[२३]"अकबर की मृत्यु के शीघ्र बाद ही उसका सबसे बड़ा पुत्र तथा एकमेव पुत्र शाहज़ादा सलीम आगरा किले में प्रविष्ट हुआ···और सन् १६०५ में बादशाह के रूप में राजगद्दी पर बैठा···(उसने) सम्भवतः किले में जहाँगीरी-महल नाम से पुकारा जाने वाला राजमहल बनवाया था।"

चूँकि बादलगढ़ अकबर के समय में न तो नष्ट हुआ था और न ही उसके स्थान पर दूसरा किला बनाया गया था, इसलिए स्पष्ट है कि अपने पितामह हुमायूँ के समान ही जहाँगीर की ताजपोशी भी स्वयं बादलगढ़ में ही की गई थी। मुस्लिम विजेताओं की एक लम्बी पंक्ति को ही आगरे के

२२. वही, पृष्ठ १८।
२३. वही, पृष्ठ २२-२३।

प्राचीन हिन्दू किले में ताज पहनाया जाता रहा था। कीन का दूसरा वक्तव्य कि चूँकि किले के भीतर का भवन जहाँगीरी महल के नाम से पुकारा जाता है, इसलिए वह जहाँगीर द्वारा ही बनवाया गया था, ऐतिहासिक निष्कर्षों पर पहुँचने का अत्यन्त दोषपूर्ण और खतरनाक रास्ता है। पहली बात यह है कि यदि जहाँगीर ने राजमहल बनवाया होता तो क्या उस सम्बन्ध का कोई शिलालेख उसने न लगवाया होता और मुगल दरबार के अभिलेखों में से कागज़-पत्र और मानचित्रादि उनके उत्तराधिकारी भारत में ब्रिटिश शासन के पास सुरक्षित न रखे होते? दूसरी बात यह है कि जहाँगीरी महल को जहाँगीर द्वारा बनवाया कहा जाना इसी प्रकार है कि 'आइंस्टीन संस्थान' को आइंस्टीन द्वारा स्थापित किया गया कहा जाए अथवा न्यूटन-भवन को न्यूटन द्वारा बनवाया गया कहा जाय। तथ्य रूप में अनुमान इसके विपरीत ही होना चाहिए था कि उसने इसको बनवाया नहीं। सुशिक्षित महान् विभूतियों का स्मरण रखने के लिए जनता उनकी मृत्यु के बाद सामान्यत: संस्थानों और भवनों की प्रतिष्ठा करती है। इसी प्रकार इतिहास में भी विजित भवनों में बहुत लम्बी अवधि तक आवास रखने वाले अपहरणकर्ता उस भवन पर अपना नाम मात्र इसीलिए अंकित कर देते हैं कि वे उस भवन में वर्षों आधिपत्य करते रहे हैं। इस निष्कर्ष की पुष्टि निर्माण अभिलेखों के अभाव तथा संरचना के प्रत्यक्ष अथवा संगत वर्णनों की कमी से भी होती है।

इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाना चाहिए कि जहाँगीर आगरे के लालकिले अर्थात् बादलगढ़ के राजमहलों में निवास करता रहा था और उसने किसी भी भवन का निर्माण स्वयं बिल्कुल भी नहीं करवाया था।

एक अन्य मुस्लिम धोखे की बात करते हुए कीन लिखता है—[२४]"परम्परा का कहना है कि यह महाकक्ष (दीवाने-आम) औरंगज़ेब द्वारा अपने शासनकाल के २७वें वर्ष में अर्थात् सन् १६८५ में बनवाया गया था; किन्तु फिर वह बीजापुर की विजय में व्यस्त था और बाद की चढ़ाइयों में वह दक्खन में ही रहा जब तक कि सन् १७०७ में मृत्यु को प्राप्त नहीं हो

---

२४. वही, पृष्ठ ११२।

गया।" इस प्रकार स्पष्ट देखा जा सकता है कि प्रत्येक इस्लामी दावे में 'किन्तु','परन्तु' लगा है जो थोड़ी-सी भी जाँच-पड़ताल से निराधार सिद्ध हो जाता है।

कीन खेद प्रगट करता है—[५२]"एक आधुनिक मार्गदर्शिका में शाह-जहाँनी महल को गलत ही अकबर का राजमहल कहा गया है।" कीन ने मार्गदर्शिका को दोष देने में गलती की है। दूसरी ओर वह पुस्तक ही सही है। प्राचीन हिन्दू किला अकबर के समय में अकबर का किला, जहाँगीर के शासनकाल में जहाँगीर का किला और शाहजहाँ के राज्य-शासन में शाह-जहाँ के राजमहल के रूप में जाना जाता था। इसलिए मार्गदर्शिका बिल्कुल सही है। तथ्य रूप में तो अब हमारा यह नवीनतम अन्वेषण भी सम्मिलित कर लिया जाना चाहिए कि आगरे के लालकिले के भीतर बने हुए सभी राजमहल प्राचीन हिन्दू राजमहल हैं जिन पर अनुवर्ती मुस्लिम अपहरण-कर्ताओं का आधिपत्य रहा। ऐसे ही आधिपत्य के कारण इन भवनों के साथ मुस्लिम विजेताओं के नाम जुड़ गए।

औरंगज़ेब के शासनोपरान्त मुगल साम्राज्य समूल नष्ट हो गया और किसी उत्तरवर्ती मुस्लिम बादशाह पर हिन्दू लालकिले अर्थात् आगरे के बादलगढ़ में किसी भी प्रकार के हेर-फेर करने का कोई आरोप नहीं है। हमने इस प्रकार आगरे के प्राचीन हिन्दू बादलगढ़ का वर्तमान लालकिले तक का पूर्ण परिचय ढूँढ़ निकाला है जिनमें उत्तरोत्तर अपहरण करने वाले विदेशी मुस्लिम शासनकालों का वर्णन समाविष्ट है। हमने साथ-साथ यह भी सिद्ध कर दिया है कि सिकन्दर लोधी, सलीम शाह सूर और अकबर की ओर से सम्भवतः पुराने किले को नष्ट करके उसी के स्थान पर दूसरा किला बनवाने के अस्पष्ट और संदिग्ध दावे शैक्षिक शब्दों का घोलमेल है।

ऐतिहासिक साक्ष्य की उपेक्षा भी करें और यदि इस विषय पर मात्र सांसारिक बुद्धिमत्ता की दृष्टि से ही विचार किया जाए तो क्या यह कभी सम्भव है कि क्या तीन मुस्लिम बादशाह एक के बाद एक किसी प्राचीन हिन्दू किले को विनष्ट करें अथवा पूर्ववर्ती मुस्लिम बादशाह के किले को

---

५२. वही, पृष्ठ १३३-३६।

नष्ट करें तथा उसी नींव व क्षेत्र पर अपना-अपना किला बारी-बारी से बनवाएँ ?

यदि उन्होंने विभिन्न नींवों पर अपने किले बनवाए होते तो भिन्न-भिन्न किलों की नींवें आड़ी-तिरछी अवश्य ही उपलब्ध हुई होतीं।

सिकन्दर लोधी, सलीम शाह सूर और अकबर के शासन एक-दूसरे के बाद थोड़े-थोड़े से अन्तर से हुए थे। क्या उनमें से प्रत्येक ने ऐसा ढिलमिल, कमजोर किला बनवाया था कि कुछ ही समय बाद दूसरे मुस्लिम बादशाह ने उसे गिराना और दूसरा किला बनवाना आवश्यक समझा था ?

क्या किला-निर्माण कोई हँसी-मजाक का खेल है कि मुस्लिम बादशाहों में से कोई भी ऐसा ऐरा-गैरा, नत्थू-खैरा खड़ा हो जाए और किला बनवाने का आदेश दे दे ? उसे बनवाना प्रारम्भ कर दे ?

उन सभी तीनों बादशाहों के शासनकाल अनवरत विद्रोहों और युद्धों से भरे पड़े थे जिनमें भाई-भाई लड़ता था, दरबारी दूसरे दरबारी का हत्यारा था और प्रत्येक बादशाह गद्दी छिन जाने अथवा कत्ल कर दिए जाने की सतत आशंका से ग्रसित, त्रस्त रहता था। क्या ऐसे शासनों में आगरे के लालकिले जैसा विशाल और ऐश्वर्यशाली किला बनवाना किसी भी प्रकार सम्भव है ?

आक्रमणकारी तुर्क, अरब, ईरानी और मुगल लोग निपट निरक्षर, बर्बर मनुष्य थे। उनको तो केवल आग लगाने, लूटने, हठ-सम्भोग करने, हत्या करने और नर-संहार की कला की जानकारी ही थी। आगरे के लाल-किले जैसे किसी किले की संरचना के लिए विशिष्ट सुरुचि का उच्च-स्तर शान्ति के दीर्घ-युग की अवधि और सभी प्रकार के ज्ञान की गहन जानकारी पूर्व-अपेक्षित है। यह सब जानकारी तो केवल हिन्दुओं को ही थी जो वैदिक-पूर्व युग से प्रथम मुस्लिम आक्रमण तक ज्यों-का-त्यों अक्षुण्ण चली आई थी। मुस्लिम आक्रमणों ने हिन्दुओं को भव्य विकास के चरमोत्कर्ष से सर्व दिशाओं में व्याप्त विध्वंस, विनाश और निर्जन के रसातल में पहुँचा दिया जिसका परिणाम यह हुआ कि दूध-दही, मधु, स्वर्ण और उत्तुंग भवनों का देश भारत दुःख, गन्दी-बस्तियों, झोंपड़ी-झुग्गियों, खाई-खण्डहरों, दल-दल भरी झोंपड़ी, खुली गन्दी नालियों-नालों, मक्खियों और मच्छरों का प्रदेश बन गया।

एक किले के स्थान पर दूसरा किला बनाना आर्थिक और इंजीनियरी बेहूदगी भी तो है। आगरे के लालकिले जैसे विस्तृत किले को गिराने और उसके मलबे को दूर फिंकवाने में ही पूरी एक पीढ़ी का कठोर श्रम लग जाएगा। इसके स्थान पर एक दूसरा किला खड़ा करने में तो कदाचित् तीन पीढ़ियाँ लग जाएँगी। किसी भी मुस्लिम बादशाह को यह विश्वास नहीं था कि वह अगले चौबीस घंटे सुरक्षित भी रह पाएगा अथवा नहीं। प्रत्येक मुस्लिम शासक गद्दी छिन जाने या कत्ल हो जाने, अंधा कर दिए जाने या अपंग हो जाने, बन्दी या देश-निकाला किए जाने के निरन्तर त्रास में दिन बिताता था। उसे लूटने-खसोटने के बाद उस धन-सम्पत्ति को अतिव्यय द्वारा नष्ट-भ्रष्ट भी तो करना पड़ता था क्योंकि उसे उस पैशाचिक जुनता (परिषद) की असमाधेय तृष्णा को शान्त करने के लिए सदैव संतुष्ट करना पड़ता था जिसने हत्या और नर-संहार के माध्यम से उसे गद्दी तक पहुँचाया होता था। यदि वह कभी किले को विनष्ट करता तो अर्थ यही होता कि वह स्वयं अपने ही सम्बन्धियों और चापलूसों द्वारा प्रेरित आक्रमणों का सहज लक्ष्य, शिकार हो जाता। इतना ही नहीं, किसी भी मुस्लिम बादशाह को किसके लिए, किसके साथ कुछ बनाने की आवश्यकता थी– किला ही क्या, मकबरे या मस्जिद की भी कोई ज़रूरत नहीं थी।

एक और महत्त्वपूर्ण बात यह है कि 'लाल' रंग तो मुस्लिमों को अति अप्रिय है, जबकि यही रंग हिन्दुओं को अति प्रिय और पवित्र है। अतः भारत में प्रत्येक मध्यकालीन लाल पत्थर का भवन हिन्दू भवन ही है। यह असत्य बात तो इस्लामी उग्रवाद और विचारहीन व्यक्तियों द्वारा अन्धाधुन्ध दोहराई गई झूठ ही है कि पत्थर का भवन-निर्माण कला का भारत में प्रारम्भ तो आक्रमणकारी अन्य देशीय मुस्लिमों द्वारा ही किया गया था। हम पहले ही इस बात के असंख्य उदाहरण प्रस्तुत कर चुके हैं कि किस प्रकार सभी मुस्लिम दावे-अटकलें प्रचारित अनुमानों पर आधारित हैं।

आगरे में वर्तमान लालकिले को मुस्लिम-मूल रचना मानने पर व्यक्ति के सम्मुख अनेक बेहूदगियाँ उपस्थित हो जाती हैं जिनका उल्लेख हम ऊपर कर आए हैं। अतः अब इस बात में कोई सन्देह नहीं करना चाहिए कि हम जिसे आज आगरे का लालकिला कहकर पुकारते हैं, वह मध्यकालीन

बादलगढ़ और प्राचीन युग के अशोक और कनिष्क जैसे यशस्वी हिन्दू-सम्राटों के अधिकार में रहा किला ही है।

यदि किले के हिन्दू-निर्माता के बारे में संस्कृत शिलालेख और अन्य अभिलेख लुप्त हो गए हैं अथवा अभी तक मिले नहीं हैं तो उसका कारण यह है कि भारत देश लगभग ७०० वर्षों की दीर्घावधि तक विदेशियों की दासता में रहा है। यदि अब भी आगरे के लालकिले के मैदान में ठीक प्रकार से उत्खनन-कार्य किया जाए और इसकी अँधेरी कोठरियों और तलघरों की भली-भाँति सफाई की जाए तो पर्याप्त महत्त्वपूर्ण साक्ष्य प्रकाश में आने की सम्भावना है। किन्तु हमें इस बात को भूलना नहीं चाहिए कि आज आगरे का लालकिला प्राचीनकाल के हिन्दुओं का बनवाया हुआ है। यदि कुछ हुआ भी है तो मात्र यही कि इसे अन्य देशीय मुस्लिम आक्रमणकारियों ने अपवित्र और विद्रूप किया, किसी भी प्रकार अणुमात्र भी उज्ज्वल अथवा संवर्धित नहीं किया।

अध्याय ५

किले का हिन्दू साहचर्य

हमने पिछले अध्याय में अनेक शताब्दियों का अटूट इतिहास साक्षी के रूप में खोज करने के बाद यह प्रमाणित कर दिया है कि आगरा-स्थित ईसा-पूर्व युग का हिन्दू किला ही इस २०वीं शताब्दी में उस नगर में लालकिले के रूप में प्रत्येक दर्शक को दिखाई देता है।

हम इस अध्याय में अपने उसी निष्कर्ष की पुष्टि यह प्रदर्शित करके करेंगे कि आगरे का लालकिला हिन्दू अंगीभावों से परिपूर्ण है।

हम इस प्रसंग में सर्वप्रथम किले की हिन्दू साज-सजावट का ही उल्लेख करेंगे। दर्शक स्वयं ही इस बात की जाँच-पड़ताल कर सकता है कि किले में कोई बात भी इस्लामी नहीं है। किले की सम्पूर्ण साज-सजावट अर्थात् इसकी चित्रकारी, दीवारदरी, नक्काशी, पर्णावली, पुष्पावली, पत्थर पर उभरे हुए वृत्ताकार और रेखागणितीय नमूने और किले के अन्दर बने हुए भवनों के भीतर और बाहर पक्षियों व पशुओं की आकृतियाँ पूर्णतः हिन्दू परम्परा की ही हैं। इस प्रकार का अलंकरण और रूपरेखांकन इस्लाम में न केवल ज्ञात ही नहीं है अपितु विशेष रूप में निषिद्ध है तथा इस्लामी परम्परा में उस पर अप्रसन्नता प्रकट की जाती है। अतः यह सुझाव प्रस्तुत करना बेहूदा बात है कि किले की संरचना का आदेश देने वाले व्यक्ति मुस्लिम बादशाह ही थे।

प्रसंगवश, शिल्पकला के विद्यार्थी भी अपने हित में यह बात हृदयंगम कर लें कि किलों और राजकीय राजमहलों के रूप-रेखांकन तथा निर्माण-कला का प्राचीन भारत में अभ्यास इतना अधिक मानवीकृत हो चुका था कि सभी पक्षी, पशु तथा अन्य साज-सजावट एवं महाकक्षों, दीर्घाओं,

बरामदों, सीढ़ियों, मेहराबों व गुम्बदों के आकार-प्रकार सभी हिन्दू किलों में समान, समरूप हैं, चाहे वे सुदूर उत्तर में काबुल और कांधार, बुखारा और समरकंद, पेशावर और रावलपिण्डी, स्यालकोट और मुल्तान, दिल्ली और आगरा अथवा दक्षिण में नीचे गुलबर्ग और वारांगल अथवा बीदर और देवगिरि में बने हों। हम बुखारा और वारांगल तथा काबुल और कांधार का विशेष उल्लेख करते हैं क्योंकि वे आजकल चाहे हिन्दुस्तान की वर्तमान राजनीतिक सीमाओं से बाहर ही हों, तथापि किसी समय वे सुदूर-विस्तृत प्राचीन भारतीय साम्राज्य के महत्त्वपूर्ण नगर थे। एक सुस्पष्ट, सजीव प्रमाण उन सबका नाम संस्कृत में होना है। 'बुखारा' शब्दनाम संस्कृत 'वुद्ध विहार' शब्द का अपभ्रंश है। समरकंद समरखंड था, कांधार गांधार था और काबुल शब्द कुभ से व्युत्पन्न है। उन नगरों में बने प्राचीन एवं मध्यकालीन भवन आज यद्यपि इस्लामी मस्जिदों और मकबरों के रूप में प्रयोग में आ रहे हैं, तथापि वे तथ्यतः हिन्दू मन्दिर, राजमहल और किले ही हैं।

आइए, हम अब इसके नाम को ही लें। 'बादलगढ़' नाम अभी भी प्रचलित है। बादलगढ़ संज्ञा किले के भीतर के बादशाही भागों से संयोज्य है, प्रयोज्य है। वह एक हिन्दू नाम है।

दर्शकगण जिस द्वार से किले में प्रवेश करते हैं, वह 'अमरसिंह द्वार' कहलाता है। यदि अकबर या सलीम शाह सूर अथवा सिकन्दर लोधी ने किले को बनवाया होता तो इसके द्वार का नाम एक राजपूत, हिन्दू नायक के नाम पर कभी न रहा होता।

इस द्वार के बारे में सरकारी पुस्तक में लिखा है[1] : "यह एक उत्तम प्रवेश द्वार है जो चमकदार पत्थरों से बना हुआ है और सामान्यतः जोधपुर के उस राव अमरसिंह राठौड़ की स्मृति में कुछ समय बाद शाहजहाँ द्वारा बनवाया गया विश्वास किया जाता है जिसने मुख्य खजांची सलाबत खाँ को बादशाह के सामने ही टुकड़े-टुकड़े करके दरबार की पवित्रता को नष्ट कर दिया था और उसे भी उसी समय मार डाला गया था। किन्तु स्थापत्य-

---

१. आगरे का किला—लेखक मु० अ० हुसैन, वही, पृष्ठ ५।

कला की दृष्टि से ऐसी कोई बात नहीं है जो इसे दिल्ली-द्वार से भिन्न घोषित करे और इसमें सन्देह की कोई गुंजाइश नहीं है कि इन दोनों प्रवेश द्वारों का अकबर द्वारा ही निर्माण किया गया था।"

जिन लोगों ने इतिहास का अधिक अध्ययन नहीं किया है, वे भी उपर्युक्त अवतरण में बहुत सारे दोष ढूंढ़ सकते हैं। सर्वप्रथम तो यह भारतीय इतिहास की उस शोचनीय स्थिति पर प्रकाश डालता है जबकि वास्तुकला विभाग का प्रशासन और किले की देखभाल करने वाली सरकार भी यह नहीं जानती कि द्वार किसने बनवाया और यदि किला शाहजहाँ अथवा अकबर जैसे विदेशियों द्वारा बनवाया गया था, तो भी इसका द्वार हिन्दू अमरसिंह के नाम पर विख्यात क्यों है? यही तथ्य कि इस द्वार-निर्माण का श्रेय कुछ लोगों द्वारा अकबर को और अन्य लोगों द्वारा शाहजहाँ को दिया जाता है, स्वयं इस बात का प्रमाण है कि वे सब जनता को धोखे में रख रहे हैं। यदि मुगलों ने किले का निर्माण किया था तो यह सुझाव देना तो बिल्कुल बचकाना बात है कि उन लोगों ने उस द्वार का नाम उस राजपूत हिन्दू नायक के नाम पर रखा था जिसको उन्होंने कटु साम्प्रदायिक शत्रुता एवं पाशविकता-वश अपने बादशाह शाहजहाँ की मौजूदगी में टुकड़े-टुकड़े कर दिया था। अतः द्वार का यह अमरसिंह नाम उस व्यक्ति के नाम से व्युत्पन्न नहीं है जिसको शाहजहाँ के सम्मुख ही मुगल हत्यारों ने मार डाला था, अपितु उस अमरसिंह से व्युत्पन्न है जिसका मुगलों के हाथ में किला जाने से पहले किले पर प्रभुत्व था।

लगभग पाँच शताब्दियों तक किले पर मुस्लिम नियन्त्रण होने के बाद भी उस हिन्दू नाम का सतत प्रचलन इस बात का स्पष्ट-सुदृढ़ परिचायक है कि किले से हिन्दुओं का पूर्वकालिक सान्निध्य, साहचर्य अति संपृक्त रहा है।

हम इतिहासकारों और किले के दर्शनार्थियों को सचेत, सावधान करना चाहेंगे कि वे पर्यटक अथवा स्थापत्यकलात्मक साहित्य में तथा विदेशी मुस्लिम और अंग्रेजी परम्पराओं के अन्तर्गत प्रशिक्षित व्यक्तियों द्वारा लिखित लेखों और पुस्तकों में अन्धाधुंध और निर्विवाद विश्वास न रखें। ये परम्पराएँ कितनी जोखिम वाली और निराधार हैं—इस बात का दिग्दर्शन हम अमरसिंह द्वार के बारे में वर्णन प्रस्तुत करके करा चुके हैं। सरकार को

पता नहीं है कि द्वार किसने बनवाया और इसका नाम अमरसिंह के नाम पर क्यों पड़ा था। यद्यपि पुस्तक ने पूर्ण आडम्बर से इस द्वार का श्रेय अकबर को दे दिया है, तथापि अशुद्धि पूर्णतः सम्मुख है, प्रत्यक्ष हो गई है क्योंकि जैसा हम पिछले अध्याय में देख चुके हैं, आगरे का लालकिला उर्फ बादलगढ़ हिन्दुओं द्वारा शताब्दियों पूर्व उस समय बनाया गया था जब सिकन्दर लोधी, सलीम शाह सूर अथवा अकबर की तो बात ही क्या, स्वयं इस्लाम का भी जन्म नहीं हुआ था।

हम हिन्दुस्तान की सरकार को भी इस बारे में सचेत, सावधान करना चाहते है कि इतिहास के मामले में उसे ठगा और भ्रमित किया जा रहा है। सरकार जिन लोगों पर विषय के पंडितों के रूप में अपना विश्वास जमाए हुए है, वे लोग विशाल इतिहास के रूप में परम्परागत धोखों को ही बिना जाँच-पड़ताल और सत्यापित किए ही लोगों तक पहुँचाए जा रहे हैं।

'सलीमगढ़' नाम से पुकारे जाने वाले भवन के सम्बन्ध में सरकारी ग्रंथ उल्लेख करता है कि :[२] "परम्परागत रूप में यह सलीम शाह सूर (सन् १५४५-१५५२) द्वारा निर्मित एक राजमहल के स्थल का द्योतक है किन्तु सम्भवतः यह शाहजादा सलीम द्वारा, जो बाद में शाहजहाँ बादशाह कहलाया (सन् १६०५-१६२७ ई०) बनवाया गया था, जैसा कि फतहपुर-सीकरी स्थित स्मारकों से इसकी तद्रूपता प्रदर्शित करती है।"

उपर्युक्त कथन कई दृष्टियों से अस्पष्ट और दोषपूर्ण है। प्रथमतः, इसमें किसी आधिकारिक बात का उल्लेख न होकर मात्र अफवाहों को स्थान दिया गया है। चूँकि एक अफवाह का मूल्य दूसरी किसी भी अफवाहों के समान ही होता है इसलिए सलीमगढ़ को शाहजादा सलीम द्वारा ही निर्मित क्यों माना जाए, पूर्वकालिक सलीम शाह सूर द्वारा निर्मित क्यों नहीं? तथ्य तो यह है कि दोनों अफवाहें ही एक-दूसरे को निरस्त कर देती हैं। हम पूर्व अध्याय में पहले ही विवेचन कर आए हैं कि सलीम शाह सूर अत्यन्त नगण्य शासक था और उसका शासन काल इतना अत्यल्प तथा कष्ट-साध्य रहा है कि वह कुछ भी निर्माण करने की सोच ही नहीं सकता था। साथ ही वह

२. आगरे का किला—लेखक मु० अ० हुसैन, वही, पृष्ठ ५-६।

और शाहजादा सलीम (जहाँगीर) भी उसी प्राचीन हिन्दू बादलगढ़ में निवास करते रहे थे जो विजयी होने पर मुस्लिमों के आधिपत्य में आ गया था। इसके अतिरिक्त हम यह भी प्रदर्शित कर चुके हैं कि जब किसी भवन का नामकरण किसी व्यक्ति के कारण किया जाता है तो वह प्रायः उस व्यक्ति के अतिरिक्त ही किसी अन्य व्यक्ति द्वारा बनवाया गया होता है। सामान्य व्यक्ति भी जब कोई मकान बनवाता है तो वह उसका नाम अपने पिता अथवा गुरु या किसी श्रद्धेय व्यक्ति के नाम के पीछे ही रखता है। मध्यकालीन मुस्लिम अपहरणकर्ताओं के मामले में उनके नाम पूर्वकालिक हिन्दू शासकों के समय से ही चले आ रहे हैं।

यह तर्क अत्यन्त विचित्र है कि चूँकि सलीमगढ़ फतहपुर-सीकरी स्थित राजमहलों से मिलता-जुलता है इसलिए इसे जहाँगीर द्वारा निर्मित अवश्य ही माना जाना चाहिए क्योंकि मनगढ़न्त मध्यकालीन मुस्लिम वर्णनों में भी फतहपुर-सीकरी का निर्माण-यश जहाँगीर को न देकर उसके पिता अकबर को दिया जाता है। किन्तु दूसरी दृष्टि से यही तर्क हमारी बात को बल प्रदान करने एवं महत्ता सिद्ध करने में महत्त्वपूर्ण है। हम वास्तव में इस बात से पूर्णतः एकमत हैं कि सलीमगढ़ वास्तुकला की दृष्टि से फतहपुर-सीकरी के राजमहलों से मिलता-जुलता है। किन्तु फतहपुर-सीकरी तो पहले ही सीकरवाल राजपूतों की प्राचीन हिन्दू राजधानी सिद्ध की जा चुकी है।[3] इसे (प्रथम मुगल बादशाह) अकबर के दादा बाबर ने सन् १५२७ में राणा सांगा से जीतकर अपने अधिकार में कर लिया था। चूँकि फतहपुर-सीकरी एक प्राचीन हिन्दू राजधानी है इसलिए आगरे के लालकिले के अन्दर बने सलीमगढ़ से इसके तद्रूप होने से पूर्णतः सिद्ध होता है कि सलीमगढ़ (तथा इसी के परिणामस्वरूप आगरे का लालकिला) प्राचीन हिन्दू भवन है। अतः ये परम्परागत वर्णन कि अकबर ने फतहपुर-सीकरी का निर्माण किया और उसके बेटे जहाँगीर ने सम्भवतः सलीमगढ़ बनवाया, ऐतिहासिक काल्पनिकताएँ हैं। उसी नाम के एक पूर्वकालिक हिन्दू भवन पर 'सलीम' इस्लामी उपसर्ग थोपकर सलीमगढ़ ही भवन का नाम प्रचलित कर दिया गया है।

पी० एन० ओक विरचित "फतेहपुर सीकरी एक हिन्दू नगर" पुस्तक।

इसकी शैली भी स्वतः हिन्दू ही स्वीकृत कर ली जाती है, जब यह माना जाता है कि फतहपुर सीकरी के शाही भवनों से इसकी शैली पूर्णतः मिलती-जुलती है।

तथाकथित अकबरी-महल, जो अब खंडहर पड़ा है, उत्तर दिशा में जहाँगीरी महल और दक्षिण में बंगाली बुर्ज के बीच स्थित है। द लएत[४] वर्णन करता है "कि इसके तीन भाग हैं जहाँ बादशाह की रखैलें पर्दे में रहती हैं। पहला भाग 'लतिवार' (अर्थात् सूर्यवार का द्योतक संस्कृत आदित्यवार), दूसरा भाग 'मंगल' (संस्कृत में भौमवार) और तीसरा भाग 'जेनिश्शर' (अर्थात् संस्कृत का शनिश्चर) कहलाता है जिन दिनों बादशाह उनके पास क्रमशः जाया करता था।"

भवन का 'बंगाली महल' नाम स्वयं ही भारतीय, हिन्दू नाम है क्योंकि बंगाल भारत का एक भाग है। यह नाम इस बात का द्योतक है कि भवन की वास्तुकला अथवा साज-सामान बंगाली शैली के थे। इतना ही नहीं, इसके भागों के नाम शनि, मंगल और सूर्य जैसे विभिन्न ग्रहों के नामों पर रखे गए थे। चूँकि भवन ध्वंसावशेषों में है और इसके तीन भागों के नाम संस्कृत में ग्रहों के नाम से रखे गए विख्यात हैं, इसलिए सम्भव यह है कि इस भवन के कम-से-कम सात महाकक्ष—पृथक्-पृथक् भाग—रहे हों जो सौर मंडल के विभिन्न ग्रहों अथवा सप्ताह के दिनों के नाम से पुकारे जाते रहे हों। यदि मुस्लिम बादशाहों ने इस राजमहल को बनवाया होता तो इसका नाम बंगाल के नाम पर न रखा गया होता और इसके अन्तर्भागों का नाम भी हिन्दू राशि-ग्रहों के संस्कृत नाम का पर्यायवाची कभी न रहा होता।

बंगाली बुर्ज के निकट ही एक कुआँ है जो कई मंजिलों और कमरों वाला है। हिन्दू शासकों का ऐसे कुओं के प्रति सदैव विशेष रुझान रहा है। यह समीप ही प्रवाहित होती हुई यमुना नदी से एक सुरंग-मार्ग से जुड़ा हुआ था। वह सुरंग-मार्ग अब मलवे से अवरुद्ध पड़ा है। हिन्दू नरेशों के सभी प्राचीन राजकीय भवनों और किलों में ऐसे कूप थे। राजपूतों का मूल

४. आगरे का किला, वही, पृष्ठ ७।

निवास-स्थान राजस्थान ऐसे कूपों से भरा पड़ा है। आगरे का ताजमहल[५], दिल्ली का तथाकथित फीरोजशाह कोटला, लखनऊ के तथाकथित इमाम-बाड़े, जिनमें ऐसे कुएँ हैं, सभी अपहृत हिन्दू भवन हैं जिनके निर्माण का श्रेय असत्य ही विदेशी मुस्लिम आक्रमणकारियों और शासकों को दिया जाता है।

तथाकथित 'जहाँगीरी-महल' के सम्बन्ध में कहा गया है[६] कि "प्रवेश महाकक्ष के दाईं ओर एक मार्ग है जो एक छोटे पृथक् दरबार में जाता है जिसमें 'संगीतज्ञ दीर्घा' वाला खम्भों-युक्त महाकक्ष है। इसी प्रकार की 'संगीतज्ञ दीर्घा' एक हिन्दू मन्दिर, राजमहल और भवन का अविभाज्य आवश्यक अंग था क्योंकि हिन्दू प्रथा में संगीत को शुभ माना जाता है, विशेषकर भोर और गोधूलि बेला में। यदि लालकिला मुस्लिम संरचना होता तो इसमें कभी भी 'संगीतज्ञ दीर्घा' न रही होती क्योंकि अपनी मस्जिदों में नमाज़ पढ़ने के लिए दिन में पाँच बार एकत्र होने वाले मुस्लिम लोग संगीत से बहुत रुष्ट होते हैं, नाक-भौं चढ़ाते हैं।

"चतुष्कोण[७] की उत्तर दिशा में 'जोधाबाई की निजी-बैठक' (शृंगार-कक्ष) के नाम से प्रसिद्ध स्तम्भ-युक्त महाकक्ष है जो अपनी सपाट छत के लिए उल्लेख-योग्य है जिसका आधार घुमावदार खम्भों के चार जोड़े हैं जिन पर लम्बाई में सर्पाकृति पत्थरों में गढ़ी हुई हैं।"

यद्यपि भवन का नाम जोधाबाई पर रखा हुआ है जो एक राजपूत राज-कन्या थी जिसको बलात् मुस्लिम हरम में जीवन बिताना पड़ा था, तथापि वह तो इसमें निवासी उत्तरवर्ती व्यक्ति ही थी। यह भवन तो ईसा-पूर्व के हिन्दू रजवाड़े के लिए बनाया गया था। यही कारण है कि इस पर सर्पाकृतियाँ उत्कीर्ण हैं। सर्पों का साहचर्य हिन्दू देवताओं से है और हिन्दू लोग सर्पों की पूजा भी करते हैं। हिन्दू-देवता विष्णु विशालाकृति शेष नाग की शय्या पर विश्राम करते हैं। हिन्दू लोग ही यह विश्वास भी करते हैं कि पृथ्वी शेषनाग पर टिकी हुई है।

---

५. श्री पी० एन० ओक की पुस्तक 'ताजमहल हिन्दू राजमहल है'।
६. श्री मु० अ० हुसैन की पुस्तक, वही, पृ० १।
७. वही, पृ० १०।

"चतुष्कोण[८] की पश्चिम दिशा में एक कमरा है जिसमें कई आयताकार आले हैं। परम्परा के अनुसार विश्वास किया जाता है कि इस कमरे को जहाँगीर की पत्नी और माता द्वारा मन्दिर के रूप में उपयोग में लाया जाता था। वे इसमें हिन्दू देवताओं की मूर्तियाँ रखती थीं। दोनों ही राजपूती राजकुमारियाँ थीं।"

यह बात ठीक है कि जहाँगीर का जन्म एक हिन्दू राजकन्या के गर्भ से हुआ था। किन्तु हिन्दू माता के गर्भ से जन्मे एक मध्यकालीन मुस्लिम होने से ही वह अपने रक्त सम्बन्धी सहधर्मियों की अपेक्षा अधिक धर्मान्ध हो गया क्योंकि वह दरबार में होने वाली उस सभी बातचीत से प्रभावित जो इस्लामी धर्म से परिपूर्ण होती थी और जिसमें उसका अपना शाही पिता, शाही चापलूस और खुशामदी व्यक्ति हिन्दुओं को भद्दी गालियाँ देते थे और उनको रात-दिन डराते-धमकाते रहते थे। तथ्य तो यह है कि मध्यकालीन भारत में हिन्दू एक ऐसा पात्र हो गया था जिस पर प्रत्येक हताश-निराश मुस्लिम अपनी झुँझलाहट निकाला करता था। जहाँगीर एक अत्यन्त क्रूर और परपीड़न-रत सम्राट् था जो अत्यधिक मद्यप, धतूरा-सेवी और रति-आसक्त होने के कारण कुख्यात था।[९] उसकी कोई राजपूत पत्नी थी, इसका कोई अर्थ नहीं है। वह राजपूत पत्नी तो उसके भरपूर हरम की ५००० बेगमों में से एक थी। इसके साथ ही उसकी अकाल मृत्यु ऐसी परिस्थितियों में हुई जिनसे सन्देह होता है कि वह जहाँगीर द्वारा मार डाली गई थी, उसकी हत्या कर दी गई थी। क्या ऐसा आदमी अपनी हिन्दू पत्नी और माता को अनुमति देगा कि वे कभी भी मूर्ति-भंजन से सम्बन्धित दरबार में अपना मन्दिर स्थापित कर सकें! ऐसी परिस्थितियों में क्या यह कभी सम्भव हो सकता था कि उसके अपने राजमहलों में ही, उसी की नाक के नीचे, चारों ओर से पेषण करने वाली धर्मान्ध मुस्लिम जनता की भीड़ होने पर भी, दो असहाय और अपहृत उन हिन्दू राजकन्याओं द्वारा दो हिन्दू प्रतिमाओं की पूजा करने की अनुमति दी जा सके जिनको इस्लामी बुर्का उढ़ाकर सुदूर हरम में ठूँस दिया था और उनकी हिन्दू स्वरावली सदैव के

८. वही, पृष्ठ १०।

९. श्री पी०एन० ओक कृत 'कौन कहता है कि अकबर महान था ?', पृष्ठ ३१-३५।

लिए मूक कर दी गई थी। क्या नित्य-प्रति मुस्लिम दरबार में उपस्थित होकर सम्पूर्ण हिन्दुस्तान की सीमा में हिन्दू-मूर्तियों और हिंदू व्यक्तियों का नाश करने की प्रेरणा देने वाली यही भीड़ वही मुस्लिम जनता नहीं थी। अतः यह तथ्य कि तथाकथित 'जहाँगीरी महल' संकुल में हिन्दू देव मूर्तियों को स्थापित करने के आले हैं और यह कथा कि वहाँ देवताओं की पूजा हुआ करती थी—जो आज भी प्रचलित है, चाहे लालकिले पर मुस्लिम आधिपत्य की पाँच शताब्दियाँ बीत चुकी हैं, सिद्ध करता है कि प्राचीन हिन्दू किला कभी भी ध्वस्त नहीं किया गया था और वह राजमहल, जिसमें बाद में जहाँगीर रहता था, मुस्लिम आक्रमणों और शासन से पूर्व युगों तक हिन्दू राजवंशों का निवास-स्थान था।

'जहाँगीरी महल'[10] की छत पर दो सुन्दर दर्शक मण्डप हैं; साथ ही कुछ जल-भंडार भी हैं जिनसे राजमहल को जल प्रदान किया जाता था। उन्हीं में के एक के पास ही तीन आड़ी पंक्तियाँ हैं जिनमें ताँबे की नालियों के अन्तिम छोर अभी भी दृश्यमान हैं।" मध्यकालीन भवनों में ऐसे जल-भंडारों और जल-प्रवाहिकाओं की व्यवस्था उनका हिन्दू मूलक होने का सुनिश्चित प्रमाण है क्योंकि रेगिस्तानी प्रदेशों से आए हुए मुस्लिमों के लिए जल का कोई लाभ नहीं था, अतः उन्होंने प्रवहमान जल-व्यवस्था का कभी कोई प्रबन्ध नहीं किया था और निरक्षर होने के कारण जल को ऊपर के स्थानों पर पहुँचाने की विधि का उनको कोई ज्ञान नहीं था।

लालकिले में एक 'शीश-महल' है। यह शीशमहल इस कारण कहलाता है कि इसकी भीतरी-छत पर छोटे-छोटे असंख्य शीशे जड़े हुए हैं। यह एक राजपूती प्रथा है। प्रत्येक राजपूत-भवन में एक बड़ा कमरा होता था जिसे शीशमहल कहते थे। कड़ी पर्दा-प्रथा और बुर्के में रहने वाली मुस्लिम जाति उस शीशमहल का कभी विचार भी नहीं कर सकती जिसमें किसी महिला का आकर्षक रूप हज़ारों की संख्या में प्रतिबिम्बित हो। इस प्रकार के काँच के छोटे-छोटे टुकड़े जड़ने की प्रथा केवल भवनों तक ही न थी, अपितु उसकी विशिष्टता उनकी महिलाओं की वेश-भूषा में भी लगाने में थी। राजपूत

१०. श्री मु० श्रा० हुसैन की पुस्तक, पृ० ११।

महिलाएँ जिन घाघरों और पोलकों को पहनती हैं, उनके झालरों-किनारों पर बहुत सारे छोटे-छोटे काँच लगे होते हैं।

[11]"(शीशमहल के) दर्शक-मण्डपों से उत्तर और दक्षिण में लगे हुए प्रत्येक प्रांगण में इसके किनारे पर संगमरमर की एक जाली तथा इसके और केन्द्रीय टंकी के बीच एक पत्थर की जाली बनी है।" उत्कीर्ण प्रस्तर यवनिकाओं से भवनों और राजमहलों को सुसज्जित करना इतनी प्राचीन हिन्दू राजवंशी प्रथा है कि उनके प्राचीन हिन्दू महाकाव्य—रामायण में भी इसका उल्लेख मिल जाता है। उस महाकाव्य के अनुसार भगवान् राम और रावण के राजमहलों में ऐसी ही जालियाँ थीं। चूंकि हिन्दू राजवंशों ने रामायण की परम्पराओं का अनुसरण करने में सदैव स्वाभिमान माना है, इसलिए हिन्दू राजवंशों के भवनों में छिद्रित पत्थरों वाली जालियाँ होती थीं। प्राचीन और मध्यकालीन भवनों में सभी जालियाँ उनके हिन्दूमूलक होने का वास्तुकलात्मक प्रमाण हैं। किसी भी मुस्लिम-भवन में ऐसी पारदर्शक जालियाँ नहीं हो सकतीं। किसी मुस्लिम व्यक्ति के घर जाने वाले व्यक्ति को जो कुछ देखने को मिलता है वह सर्वप्रथम यही होता है कि केन्द्रीय प्रवेश-द्वार पर टाट का एक ऐसा मजबूत पर्दा पड़ा होता है कि कोई भी व्यक्ति किसी भी प्रकार भीतर की लेशमात्र झलक भी नहीं देख सकता। मुस्लिम बादशाह लोग तो इससे भी दृढ़तर पर्दा-प्रथा निभाते थे क्योंकि उनके महलों पर तो सभी समय अनियन्त्रित और अनैतिक व्यक्तियों की असीम भीड़ लगी रहती थी। उन लम्पट, हत्यारे नर-राक्षसों के झुंडों की खूँखार, अतृप्त आँखों से पाँच हज़ार सौन्दर्य-बालाओं के शाही हरम के रहने वालों की सुरक्षा करना भी रक्षकों के लिए दुष्कर कार्य ही था। जहाँ तक सम्भव हो, कामान्ध घुसपैठियों से उन महिलाओं को योगियों की भाँति सार्वजनिक दृष्टि से ओझल रखने के प्रति सुदृढ़तम उपायों में से एक उपाय उस हरम को सबों से अलग रखना ही था। इस उद्देश्य की उपलब्धि उत्कीर्ण प्रस्तर जालियों से कभी नहीं हो सकती थी। यदि आगरा स्थित लालकिले में महिला-कक्षों में ऐसी छिद्रित प्रस्तर-जालियाँ हैं, तो वे तो मुस्लिम-पूर्व

११. श्री मु० अ० हुसैन की पुस्तक, पृष्ठ १४।

प्रबुद्ध राजवंशी हिन्दू महिला वर्ग की उपस्थिति के सुनिश्चित लक्षण हैं। अपना आधिपत्य स्थापित करने के बाद तो मुस्लिम शासक लोग उन छिद्रित हिन्दू प्रस्तर-जालियों को मोटे अपारदर्शी कपड़ों से ढँक दिया करते थे।

[१२]"कमरे की दीवार के लकड़ी से रंगे हुए निचले चित्रित भाग के ऊपर गहरे नक्काशी और फूलबूटों वाले हैं…दीर्घा और महाकक्ष की भीतरी छतें सपाट संगमरमर की हैं किन्तु बादशाहनामा के अनुसार वे बहुत अधिक सजावट वाले और स्वर्ण तथा विभिन्न रंगों वाले थे, महाकक्ष में उनकी विद्यमानता ऐतिहासिक कथन का समर्थन करती है।"

प्राचीन हिन्दू भवन अत्यधिक मात्रा में बहुविध चित्रित तथा सज्जाकार नमूने और बिम्बों से उभरे हुए होते थे। इस्लामी प्रथा ऐसी सज्जाकारी से नाक-भौं चढ़ाती है। अतः यदि आगरे के लालकिले के शाही भागों में इस प्रकार का चित्रीकरण और सज्जाकरण विद्यमान है तो स्वतः स्पष्ट है कि हिन्दू राजवंश ने किले को मुस्लिम-पूर्व युगों में बनवाया था। उस सजावट का स्वयं विरूपण ही इस बात का प्रमाण है कि पूर्वकालिक हिन्दू कान्ति असहनशील मुस्लिम आधिपत्यकर्त्ताओं द्वारा विनष्ट कर दी गई थी।

[१३]"इस (दक्षिण दर्शक-मंडप) भवन का परिचय अत्यन्त विवादास्पद है, किंतु 'बादशाहनामा' इसे स्पष्ट रूप में 'बंगला-ए-दर्शन-ए-मुबारक' पुकारता है जहाँ से शाहजहाँ प्रतिदिन अपनी प्रजा को अपने दर्शन करवाया करता था।"

उपर्युक्त अवतरण में 'दर्शन' शब्द एक संस्कृत शब्द है तथा उस हिन्दू-काल की अतीत प्रथा का द्योतक है जब सामान्य अकिंचन लोग राजा के अथवा मन्दिर में किसी देवता के दर्शन निन्य-नियम से करने जाया करते थे। मुगल शासकों ने जब विजित हिन्दू भवनों पर अपना आधिपत्य जमा लिया तब उन्होंने भी इसी प्रथा को चालू रखा। इस प्रकार आगरे के लालकिले में 'दर्शन महाकक्ष' का होना भी किले के हिन्दू-मूलक होने को ही सिद्ध करता है।

खास महल के निकट ही "दुमंजिला मुत्थम्मन बुर्ज है(पददीप : मुत्थम्मन

१२. वही, पृष्ठ १५।
१३. वही, पृष्ठ १७।

बुर्ज का अशुद्ध रूपान्तर चमेली-बुर्ज या कुंज किया गया है। इसका वास्तविक अर्थ 'अष्टकोणीय बुर्ज है)।"

हिन्दू परम्परा में अष्टकोण का एक विशिष्ट महत्त्व है। केवल संस्कृत भाषा में ही आठ दिशाओं के विशेष नाम मिलते हैं। आठ (धरातलीय) दिशाओं तथा स्वर्ग व पाताल (कुल दस) पर राजा और ईश्वर का सम्पूर्ण प्रभुत्व ही स्वीकार किया जाता है। इस प्रकार देवत्व अथवा राजवंश से सम्बन्धित सभी हिन्दू भवनों को आकार में अधिकांशतः अष्टकोणात्मक ही होना पड़ता था। इसके नाम, उद्देश्य और महत्त्व में व्याप्त मुस्लिम-भ्रान्ति स्वयं ही दर्शाती है कि यह इस्लामी-मूलक नहीं है। कुछ लोग इसे मुत्थम्मन बुर्ज कहते हैं, अन्य लोग मुसमन कहते हैं और इसका अर्थद्योतन चमेली करते हैं, जबकि कुछ अन्य व्यक्ति इसे सम्मन बुर्ज ही कहते हैं। जैसा हुसैन ने बताया है, वह भयंकर भूल कराने वाला इस्लामी शब्द 'मुत्थम्मन' संस्कृत शब्द 'अष्टकोण' का अपभ्रंश रूप है। इस प्रकार, उस बुर्ज के नाम के सम्बन्ध में इस्लामी भ्रम को स्पष्ट रूप में प्रस्तुत करके हुसैन ने ठीक कार्य ही किया है। अपहरणकर्ता को तो स्वाभाविक रूप में ही स्व-विजित भवन के विभिन्न अंशों के मूल उद्देश्यों के सम्बन्ध में भ्रम उत्पन्न हो ही जाता है। मात्र हिन्दू परम्परा में ही इनकी मान्य आठ दिशाओं के आठ दिव्य रक्षकों के नाम उपलब्ध हैं।

[१४]"मुत्थम्मन बुर्ज की निचली मंजिल में ४४ × ३३ फुट का एक प्रांगण है जिसमें संगमरमर के अष्टकोणीय टुकड़े जड़े हुए हैं जो पच्चीसी अथवा भारतीय चौसर-चौपड़ के खेल के पासे के नमूने पर हैं।"

पच्चीसी मात्र हिन्दुओं का खेल है। कोई मुस्लिम इस खेल को कभी नहीं खेलता। यह नाम संस्कृत के 'पच्चीस' शब्द से व्युत्पन्न है जिसका अर्थ बीस तथा पाँच है। उस खेल के नाम का फलक लालकिले के फर्श पर बने होना इस बात का प्रबल प्रमाण है कि लालकिला हिन्दू मूलक है। उसी नाम का एक अन्य विशाल प्रांगण आगरा से लगभग ३५ मील की दूरी पर एक अन्य राजपूती नगरी अर्थात् फतहपुर-सीकरी में भी विद्यमान है। उस

१४. वही, पृष्ठ २०।

फतहपुर-सीकरी नामक नगर को पहले ही 'फतहपुर-सीकरी एक हिन्दू नगर' नामक पुस्तक में प्राचीन हिन्दू मूलक सिद्ध किया जा चुका है, जिसे बाद में मुगल बादशाह अकबर ने अपने आधिपत्य में ले लिया था। अतः यदि पच्चीसी प्रांगण वाला फतहपुर-सीकरी नगर हिन्दू नगर है तो आगरे का लालकिला भी, जिसमें उसी प्रकार पच्चीसी प्रांगण बना हुआ है, हिन्दू महल ही है।

जहाँगीरी शासनकाल के एक तिथिवृत्त के फारसी रूपान्तर में उल्लेख है कि उसने स्वर्ण की एक न्याय-शृंखला लगा रखी थी। इसके एक छोर पर घण्टी लटकी थी जो लालकिले के भीतर राजमहल में बजती थी। दूसरा छोर किले के बाहर दूर यमुना के तट पर लटकता था। हम पहले ही प्रदर्शित कर चुके हैं कि जहाँगीर किस प्रकार अत्यन्त क्रूर, अशिष्ट एवं दुराचारी बादशाह था। यही तो वह व्यक्ति था जिसने शेर अफगन नामक अपने कर्मचारी को कत्ल कर दिया था और उसकी सुन्दर पत्नी (नूरजहाँ) को अपने हरम में जबरदस्ती प्रविष्ट कर दिया था। ऐसे बादशाह से यह आशा करना परले दर्जे की अयुक्तियुक्तता है कि वह एक न्याय-शृंखला स्थापित करता जिससे कोई भी नागरिक उस जंजीर को खींचकर उस बादशाह को बुलवा लेता और अपने प्रति न्याय करवा लेता। स्पष्ट है, जैसाकि स्वर्गीय सर एच० एम० इलियट ने कहा है, यह सम्राट् अनंगपाल था, अति प्राचीन हिन्दू सम्राट्, जिसके राजमहल में ऐसी न्याय-शृंखला लगी हुई थी। मुस्लिम बादशाह अपने क्रूर और अपहारक शासकों को यशस्वी हिन्दू वर्णनों से छद्म-रूप प्रदान करके उन पर ऐंठते फिरते थे। मुस्लिम-शासन की पाँच शताब्दियों के बाद भी 'न्याय-शृंखला' की कथा का आगरे के किले से सम्बन्धित रहना इस बात का अन्य प्रमाण है कि पूर्वकालिक हिन्दू परम्परा कितनी गहरी और पुष्ट रही होगी जिस समय किला मुस्लिम आधिपत्य के अन्तर्गत आ गया।

इस लालकिले में एक 'मच्छी भवन' अर्थात् 'मछली राजभवन' है। इसकी छत पर दो सिंहासन-पीठिकाएँ हैं—एक सफेद संगमरमर की और दूसरी काले संगमरमर की। 'मच्छी भवन' शब्दावली संस्कृत की है क्योंकि 'मत्स्य' शब्द मछली शब्द का अर्थद्योतक होता हुआ संस्कृत भाषा का ही है।

मछली अति प्राचीन हिन्दू राजचिह्न है क्योंकि हिन्दू सम्राट् का सभी पवित्र नदियों और सातों सागरों के पुण्य जलों से राज्याभिषेक किया जाता है। राज-चिह्न के रूप में मछली का अर्थ राज्य-शासन की समृद्धि हेतु निरन्तर जल पूर्ति बनाए रखना भी होता है। तीसरी बात यह है कि हिन्दू पौराणिकता की दृष्टि से मत्स्य ही ईश्वर का सर्वप्रथम अवतार था। महान् हिन्दू सम्राट् शिवाजी के राज्यारोहण (जून, १६७४ ईस्वी) के वर्णनों में उल्लेख है[१५] कि अभिषेक समारोहों में एक कीली पर एक मछली को विशिष्ट रूप में प्रदर्शित किया गया था। आगरे के लालकिले में मत्स्य-भवन की विद्यमानता उस किले के हिन्दूमूलक होने का सुनिश्चित प्रमाण है। मुस्लिम लोग तो अरेबिया, ईराक और ईरान के रेगिस्तानी प्रदेशों से आए थे, किसी भी मछली के सम्बन्ध में कभी कल्पना ही नहीं कर सकते थे।

इसी प्रकार एक तीक्ष्ण शंकु पर रखी हुई एक मछली का विशाल स्वर्णरोपित आकार लखनऊ के छोटे इमामबाड़े पर देखा जा सकता है। लखनऊ के बड़े इमामबाड़े के महराबदार प्रवेशद्वार पर एक मछली पत्थर पर उभरी हुई उत्कीर्ण है। इस प्रकार की मत्स्याकृतियाँ लखनऊ, ग्वालियर और अनेक नगरों के हिन्दू भवनों के प्रवेशद्वारों की महरावों पर देखी जा सकती हैं। गुलबर्ग में तथाकथित दरगाह बंदा नवाज़ के प्रवेशद्वारों पर शेरों, हाथियों और मोरी के साथ ही मछली की आकृति भी ऊपर को विशेष रूप से उभरी हुई है। वे सब हिन्दू-चिह्न हैं। हम इस अवसर पर भावी अनुसन्धान विद्वानों को इस बात के लिए सचेत करना चाहते हैं कि इस बात को सिद्ध करने के लिए पर्याप्त प्रमाण उपलब्ध हैं कि लखनऊ स्थित तथाकथित इमामबाड़े और गुलबर्ग में तथाकथित दरगाह बंदानवाज़ (बंदानवाज़ नामक एक मुस्लिम फकीर के नाम पर बना हुआ मकबरा) प्राचीन हिन्दू भवन हैं जो बाद में मुस्लिम आधिपत्य में आ गए और भूल से अथवा जान-बूझकर मुस्लिम-मूलक कहे जाने लगे। इसी प्रकार लखनऊ में शीशमहल और छत्तरमंज़िल जैसे संस्कृत भाषी नामों वाले मध्यकालीन भवन

---

१५. श्री बी० एम० पुरन्दरे कृत मराठी पुस्तक 'राजा शिवा छत्रपति' के दस खण्डीय जीवनी के भाग ९, पृष्ठ १०६ से।

हिन्दू-मूलक हैं जिनका निर्माण-श्रेय गलती से मुस्लिम विजेताओं को दिया जाता है।

लालकिले में बादशाह-कुंड स्पष्टतः हिन्दू मूलक है क्योंकि नित्य प्रति स्नान करना हिन्दू राजा के लिए अनिवार्य था। मुस्लिम बादशाह तो यदा-कदा ही स्नान करते थे। [१६]"पश्चिम की ओर लम्बी दीर्घा में भट्टियों के चिह्न हैं और कुछ समय पहले ही खुदाई करने पर, गरम करने के लिए कुछ जलमार्ग मिले हैं।" हमारा उपर्युक्त पर्यवेक्षण कि आगरा के लालकिले के आधिपत्यकर्ता मुस्लिमों के लिए उन स्नान-कुंडों का कोई उपयोग नहीं था, उपर्युक्त अवतरण की इन बातों से पूर्ण रूप में पुष्ट होता है कि वे भट्टियाँ मुस्लिम आधिपत्य की पाँच शताब्दियों में भूमि में दब गई थीं और उनकी जानकारी केवल खुदाई करने के बाद ही हो सकी।

[१७]"आगरे के किले के कुछ पुराने रेखाचित्र प्रदर्शित करते हैं कि हमाम (राजा का स्नान-कुंड) के दाईं ओर संगमरमर की एक दीर्घा थी जिसकी तीनों ओर आच्छादित मार्ग था, किन्तु अब इसका कोई नाम-निशान अस्तित्व में नहीं है क्योंकि तत्कालीन गवर्नर जनरल लार्ड विलियम बेन्टिक के आदेशों पर इसे गिरा दिया गया था और इसके खण्ड-विखण्डों को नीलामी द्वारा बेच दिया गया था।"

इस बात से हमारे पहले पर्यवेक्षण की ही पुष्टि होती है कि यदि कुछ किया ही गया है तो वह यह है कि प्राचीन हिन्दू किले (लाल) को इसके अन्य देशीय आधिपत्यकर्ताओं ने विध्वंस और अपवित्र ही किया है। आज जैसा यह दिखाई पड़ता है, उससे कहीं अधिक लम्बा-चौड़ा, अधिक राज्योचित् और अधिक भव्य था। विदेशी मुस्लिम और अंग्रेजों के छः शताब्दी-पर्यन्त आधिपत्य ने प्राचीन और मध्यकालीन हिन्दू स्मारकों को अकल्प्य और अपार क्षति पहुँचाई है। किन्तु उनमें आज भी जो लक्षण शेष बचे हैं; वे सभी पूर्णतः हिन्दू हैं। यदि कुछ हुआ है तो यही कि विदेशी आक्रमणकारियों और शासकों ने इसके अनेक भागों और साज-सजावट के अलंकरणों को क्षति पहुँचाई और विनष्ट किया है। इस प्रसंग में हम चाहते हैं कि

१६. मु० अ० हुसैन कृत वही, पृष्ठ २६।

१७. वही, पृष्ठ २७।

मध्यकालीन स्मारकों की यात्रा करते समय प्रत्येक दर्शनार्थी, इतिहास का विद्यार्थी व विद्वान् एक सूत्र स्मरण रखे कि "संरचना हिन्दू की है, विध्वंस सब मुस्लिम (या अंग्रेजों द्वारा) है।"

[१८]"सफेद संगमरमर की बनी नगीना मस्जिद में दक्षिण दिशा में बने द्वार की ओर से मच्छी भवन में प्रवेश किया जाता है…इसको किसने बनवाया…प्रश्न विवादास्पद है।"

चूँकि हम पहले ही ऊपर सिद्ध कर चुके हैं कि मच्छी भवन एक हिन्दू राजमहल है, इसलिए स्वतः सिद्ध है कि इसके साथ संलग्न तथाकथित नगीना मस्जिद एक हिन्दू मन्दिर है क्योंकि यह मध्यकालीन मुस्लिम प्रथा रही है कि प्रत्येक विजित हिन्दू मन्दिर की मूर्ति को दीवार में अथवा फर्श के नीचे दबाकर, पददलित करने के लिए, प्रत्येक मन्दिर को मस्जिद (या मकबरे) के रूप में उपयोग में लाते रहे थे। यदि यह मुस्लिम प्रेरित कला-कृति रही होती तो इसके मूल के सम्बन्ध में कोई विवाद नहीं हुआ होता क्योंकि यदि वास्तव में निर्माण-कार्य हुआ होता, तो उसको लेखनीबद्ध करने के लिए तो अनेक अभ्यस्त लेखक-व्यक्ति दरबार में उपस्थित रहते ही थे। किन्तु मुहम्मद-बिन-कासिम से लेकर बहादुर शाह ज़फ़र तक कोई निर्माण नहीं हुआ था। यह तो सभी अच्छी वस्तुओं की सर्वव्यापी विनष्टि की लम्बी कहानी है।

[१९]"मन्दिर राजा रतन…सम्भवतः महाराजा पृथी इन्द्र के फौजदार राजा रतन का निवास-स्थान था और सन् १७६८ ई० में उस समय बना था जब किला जाटों के आधिपत्य में था। रूपरेखांकन में जिहादी यह भवन राजा रतन द्वारा अपनी आवश्यकताओं के अनुरूप बना लिया गया प्रतीत होता है जिसका नाम दक्षिणी आच्छादित मार्ग के ऊपर लगे हुए शिलालेखों में मिलता है।"

उपर्युक्त अवतरण प्रचलित भारतीय इतिहास की पुस्तकों की अति विशिष्ट भ्रान्त-विचार प्रणाली का एक सुन्दर उदाहरण है। यह अवतरण स्पष्ट प्रदर्शित करता है कि तथाकथित इतिहासकार किसी भी शिलालेख से

१८. वही, पृष्ठ २७-२८।
१९. वही, पृष्ठ ३०-३१।

कैसे अन्धाधुंध निष्कर्ष निकाल बैठते हैं। लेखक प्रारम्भ में ही स्वीकार करता है कि यह मन्दिर 'सम्भवतः' एक हिन्दू राजा के एक फौजदार का भवन था। फिर वह कहता है कि भवन अभी कुछ समय पूर्व का ही है, तथापि उसका रूपरेखांकन जिहादी है। तब फिर एक कलाबाजी ली जाती है और लेखक कहता है कि रूपरेखांकन में जिहादी यह भवन राजा रतन द्वारा अपनी आवश्यकताओं के अनुरूप बना लिया गया प्रतीत होता है।

भ्रम-निवारण हेतु हम इसमें निहित कई बातों को प्रकट करना चाहते हैं। पहली बात यह है कि आगरे के किले में आज भी इतना अधिक स्थान है कि १८वीं शताब्दी के किसी हिन्दू राजा को अपने फौजदार के महल के लिए स्थान देने की कोई आवश्यकता न होती। सन्देह की बात तो यह भी है कि किसी किले के अन्दर अपना निवास-स्थान बनाए रखने वाला राजा अपने ही किसी फौजदार को किले के भीतर ही निवासी बनने दे। तीसरी बात यह है कि 'मन्दिर राजा रत्न' शब्दावली से किसी ऐसे प्राचीन संस्कृत नाम की ध्वनि आती है जो हिन्दू लालकिले के साथ जुड़ा चला आया है यद्यपि उस पर पाँच शताब्दियों तक मुस्लिम आधिपत्य रहा है। चौथी बात यह है कि किसी मध्यकालीन भवन के सम्बन्ध में कोई भी बात जिहादी (इस्लामी) नहीं है। वे सभी मुस्लिम-पूर्व हिन्दू संरचनाएँ हैं किन्तु दीर्घकाल से चली आई भ्रांति के कारण जनता की आँखों में उनकी शैली को इस्लामी स्थापत्यकला समझ लिया गया है क्योंकि जनता ने भूल से अभी तक सभी अपहृत हिन्दू भवनों को मूलतः मकबरे और मस्जिद ही मान रखा था।

[२०]"सिंहासन-कक्ष जड़ाऊ काम वाले संगमरमर का आला है जिसमें अत्युच्च अलंकृत अग्रभाग है। इस आले का पक्षि-चित्रण कार्य सुन्दर है किन्तु उतना श्रेष्ठ नहीं जितना कि दिल्ली के किले की सिंहासनदीर्घा का है।"

'अत्युच्च अलंकृत अग्रभाग' और 'पक्षि-चित्रण' कार्य स्पष्ट ही प्राचीन हिन्दू मूल के हैं क्योंकि इस्लाम में सभी मूर्तिकरण प्रतिबन्धित हैं।

[२१]"(मोती मस्जिद के) ऊँचे स्तम्भाकार चबूतरे पर दक्षिण-पूर्व

२०. वही, पृष्ठ ३२।
२१. वही, पृष्ठ ३७।

किनारे के पास संगमरमर की एक सूर्य घड़ी है।"

संगमरमर की सूर्य घड़ी प्राचीन हिन्दू भवनों का एक अति सामान्य लक्षण रहा है। इसी प्रकार की एक सूर्य घड़ी तथाकथित कुतुबमीनार के प्रांगणों में अब भी देखी जा सकती है, जिसे हिन्दू-स्तम्भ पहले ही सिद्ध किया जा चुका है। इसी प्रकार आगरे में लालकिले की सूर्य घड़ी सिद्ध करती है कि किला हिन्दू मूलक है। चकाचौंध करने वाले संगमरमरी फर्श वाली मस्जिद किले का मुख्य राजकीय मन्दिर थी। मध्यकालीन इस्लामी रुझान के कारण ही यह मन्दिर मुस्लिम मस्जिद के रूप में उपयोग में आने लगा था।

[२२]"मोती मस्जिद के निकट वाले मार्ग के साथ-साथ घुमावदार छत वाला एक भवन है जिसे 'ठेकेदार का मकान' कहते हैं।"

किसी ठेकेदार का मकान किले के भीतर कैसे हो सकता है? साथ ही 'ठेकेदार' शब्द तो तुलनात्मक दृष्टि से अभी आधुनिक काल का ही है। घुमावदार छत तो पुरातन रूढ़िवादी हिन्दू भवनों, प्रायः मन्दिर अथवा अन्य देवालयों की अटूट, अमिट निशानी है। यह तथ्य कि इसका एक निरर्थक नाम है, प्रदर्शित करता है कि किले के आधिपत्यकर्ताओं को जो मुस्लिम थे, किले का उपयोग प्रतीत नहीं हुआ। इसका प्राचीन हिन्दू नाम अवश्य ही भिन्न रहा होगा। अन्यथा यह भवन किले के मुस्लिम आधिपत्य-कर्ताओं द्वारा विनष्ट किये गए मन्दिर का अविशिष्ट भाग ही रहा होगा।

किले का दिल्ली-द्वार 'हाथी पोल' (गज-द्वार) के नाम से भी पुकारा जाता है। दो अलंकृत हाथी, जिनके ऊपर दो हिन्दू वंशधर राजकीय वेशभूषा में आरूढ़ थे, उस द्वार की शोभा थे। हम उनका विस्तार से वर्णन एक पृथक् अध्याय में आगे चलकर करेंगे क्योंकि उनके साथ इतिहासकारों द्वारा किये गए घोटाले की एक लम्बी कहानी जुड़ी हुई है। यहाँ तो हम मात्र इतना ही कहेंगे कि हिन्दू किलों, राजमहलों और भवनों के मुख्य प्रवेशद्वारों पर, अधिकांशतः हाथियों की मूर्तियाँ प्रस्थापित होती थीं। फतेहपुर-सीकरी नगर, जिसको पहले ही प्राचीन हिन्दू नरेशों की राजधानी

२२, वही, पृष्ठ ३९।

सिद्ध किया जा चुका है, के मुख्य प्रवेशद्वार पर भी दो गजराजों की विशाल प्रतिमाएँ सुशोभित हैं। इसके मुस्लिम आधिपत्यकर्ताओं ने उन हाथियों के मस्तकों को चूर-चूर कर दिया था जिसके फलस्वरूप अब वहाँ द्वार पर केवल उनके विशाल बेकार ढाँचे ही खड़े रह गए हैं। एक हिन्दू रजवाड़े कोटा के नगर-राजमहल के मुख्य द्वार पर हाथी विराजमान हैं। एक अन्य हिन्दू रजवाड़े भरतपुर में भी किले के मुख्य द्वार पर दो विशाल हाथियों को चित्रित किया गया है। ग्वालियर के बाहर भी जो एक अन्य प्राचीन हिन्दू किला है, ग्वालियर द्वार पर हाथियों की मूर्तियाँ बनी हुई हैं। अब 'सहेलियों की वाड़ी' के नाम से प्रसिद्ध उदयपुर के राजमहल में भी अनेक गज-प्रतिमाएँ हैं। साथ ही, 'पोल' शब्द संस्कृत 'पाल' शब्द का अपभ्रंश रूप है जिसका अर्थ 'द्वारा सुरक्षित' है। द्वारों के नाम सूर्य के पीछे 'सूर्य पोल' और हाथी पर 'हाथी-पोल' आदि रखना सामान्य हिन्दू प्रथा थी। उसी परम्परा में हम जब आगरा-दुर्ग के प्राचीन मुख्यद्वार को देखते हैं, तो यह किले के हिन्दू मूलक होने के निर्णायक प्रमाण के रूप में हमें प्राप्त हो जाता है। किले के निर्दयी मुस्लिम आधिपत्यकर्ताओं द्वारा वे प्रतिमाएँ हटा दी गई हैं। यह परिस्थिति स्वयं प्रदर्शित करती है कि किला मुस्लिम संरचना की कृति नहीं है। यदि किसी मुस्लिम ने किला बनवाया होता तो उसने हिन्दू परम्परा में द्वार पर हाथियों की प्रतिमाएँ न बनवाई होतीं और न ही 'हाथी पोल' के रूप में द्वार का नाम ही रखा होता। यदि किसी मुस्लिम ने उन प्रतिमाओं का निर्माण करवाया होता तो कोई कारण नहीं कि किसी अनुवर्ती मुस्लिम ने उन प्रतिमाओं को वहाँ से हटवा दिया होता। हम इस पर पूर्ण विचार आगे चलकर करेंगे किन्तु यहाँ पर इतना अवश्य कहा जाएगा कि हाथी और हाथी-पोल किले के मूल रूप में ही हिन्दू निर्माण होने के अमिट लक्षण हैं। हिन्दू परम्परा में हाथियों को राज्य-शक्ति और ऐश्वर्य-यश का प्रतीक मानते हैं। चित्रों में, धन-सम्पत्ति की हिन्दू देवी लक्ष्मीजी को सदैव दो हाथियों से घिरा हुआ दिखाते हैं जो श्रद्धायुक्त भाव से अपनी सूँडों को उठाकर उनकी वन्दना करते प्रतीत होते हैं। देवाधिदेव इन्द्र महाराज का वाहन गजराज ही है। चूँकि हिन्दू राजा दैवी परम्पराओं का अनुसरण करता था, अतः हाथी ही उसकी शक्ति का प्रतीक हो गया। दिल्ली के लालकिले

में भी, जिसे हिन्दू मूलक सिद्ध किया जा चुका है, इसके शाही दरवाज़े के पार्श्व में हाथी-प्रतिमाएँ हैं। उस भाग में आजकल हिन्दुस्तान की सरकार की सेना स्थित है, वह द्वार उन्हीं के प्रयोग में आता है।

[२३]"हाथी-पोल एक विशाल संरचना है जिसके पार्श्व में सफेद संगमरमर से उत्तम रूप में जटित दो विशाल अष्टकोणीय स्तम्भ हैं और वह दो गुम्बद-युक्त कलशों से घिरा हुआ है।"

हम पहले ही हिन्दू राजवंशों और दैवी परम्पराओं में अष्टकोणीय आकारों के महत्त्व का विवेचन कर चुके हैं। सभी मध्यकालीन भवनों पर स्थित कलश हिन्दू राजपूती नमूने के हैं। स्थापत्य कला और इतिहास के विद्यार्थी तथा ऐतिहासिक भवनों के दर्शनार्थी इस बात का विशेष ध्यान रखें। दिल्ली, आगरा या फतहपुर-सीकरी के किसी भी कलश में कोई इस्लामी आकार-प्रकार नहीं है। वे सब उस शैली के हैं जो सम्पूर्ण राजस्थान में असंदिग्ध रूप से दिखाई देती है।

[२४]"दिल्ली-दरवाज़े के बाहर एक अष्टकोणीय बाड़ा था जिसे इतिहास में त्रिपोलिया के नाम से पुकारा जाता था। परम्परा का कहना है कि इसमें एक बारादरी थी जिसमें राजकीय संगीत बजा करता था किन्तु उस भवन का अब कोई नामोनिशान भी नहीं मिलता है; क्षेत्र के उत्तरी भाग पर अब रेलवे अधिकारियों का आधिपत्य है।"

उपर्युक्त सारांश-उद्धरण बहुत महत्त्वपूर्ण है। त्रिपोलिया शब्द संस्कृत का है और तीन तोरणद्वार का अर्थद्योतक है। हिन्दू राजवंशी और दैवी परम्परा में तीन के अंक का महत्त्व अत्यधिक है। हिन्दुओं के दो देवता हैं जो तीन-युग्म हैं। एक को दत्तात्रेय कहते हैं जबकि दूसरे देव की आकृति ब्रह्मा (सृजन-देवता), विष्णु (संरक्षक) एवं महेश (संहारक-देव) की एक संयुक्त मूर्ति है। हिन्दू भवनों और नगरों में तीन-तीन तोरणद्वार हुआ करते थे। फतहपुर-सीकरी का तथाकथित बुलन्द दरवाजा, जिसे अब हिन्दू-मूलक सिद्ध कर दिया गया है, तीन मेहराबों वाला द्वार है। अहमदाबाद

२३. वही, पृष्ठ ३६।
२४. वही, पृष्ठ ४१।

शहर का प्राचीन हिन्दू द्वार (जिसे बनवाने के लिए अन्य देशी अहमदशाह को झूठे ही निर्माण-श्रेय दिया जाता है) भी तीन मेहराब-युक्त त्रिपोलिया वाला है। साथ ही, संगीत दीर्घा का सन्दर्भ भी महत्त्वपूर्ण है। मंगलध्वनि युक्त हिन्दू संगीत सभी हिन्दू भवनों, राजमहलों और किलों में प्रतिदिन प्रात: और सायंकाल बजा करता था। यदि लालकिला मुस्लिम-मूलक होता, तो इसमें कभी भी संगीत-दीर्घाएँ न होतीं, क्योंकि दिन में पाँच बार नमाज पढ़ने वाले मुस्लिम लोग संगीत की मधुर स्वर-लहरी से आग-बबूला होते हैं। यही तथ्य कि किले में संगीत दीर्घा थी जो अब नहीं है, स्पष्ट दर्शाता है कि किला मूल रूप में हिन्दुओं की सम्पत्ति ही थी किन्तु इसके अनुवर्ती मुस्लिम आधिपत्यकर्ताओं ने इसकी संगीत दीर्घा को नष्ट कर दिया था।

[२५]"अमरसिंह दरवाजे के उत्तर में एक पत्थर का घोड़ा है, जिसका सिर और गर्दन मात्र ही किले से नीचे की ओर ढालू किनारे पर दिखाई देता है। इसका इतिहास अस्पष्ट है। सामान्यत: विश्वास किया जाता है कि दरबार की शुचिता का अपहनन करने के अपराध में जब सन् १६४४ में शाहजहाँ की उपस्थिति में ही जोधपुर के राव अमरसिंह राठौर को मार डाला गया था, तब उसका घोड़ा इधर से उधर बेतहाशा भागा था और उसने दुर्ग-प्राचीर से किले की खाई के पार छलाँग लगाते समय प्रार्थना की थी कि अपने स्वामी की हत्या के दु:ख में सन्तप्त हृदय के स्मारक के रूप में उसको पत्थर का रूप दे दिया जाए।"

किले के हिन्दू मूलक होने के असुविधाजनक साक्ष्य को स्पष्ट करने के लिए मध्यकालीन मुस्लिम लोग जिस प्रकार की नई-नई बातों का आविष्कार करते और उनको इतिहास पर थोपते थे, उसी प्रकार की अयुक्तियुक्त कथाओं का एक प्रकार ऊपर दिया हुआ है। हिन्दू राजवंश और दरबारियों में यह प्रथा, परम्परा थी कि वे अपने उन अश्वों की स्मृति को अक्षुण्ण रखने के लिए उसके स्मारक बनाते थे जो या तो युद्धभूमि में अथवा विशिष्ट सेवा के उपरान्त दीर्घजीवी होकर अपने प्राण त्याग करते थे। यह एक ऐसा ही

---

२५. वही, पृष्ठ ४१।

प्राचीन हिन्दू अश्व है जो प्राचीन हिन्दू लालकिले के भीतर भव्य मंच पर भव्य भाव-भंगिमा में खड़ा था। चूँकि ऐसी प्रतिमाएँ, मूर्तियाँ आदि मुस्लिम मानस के लिए विरोध-उद्दीप्त करने वाली वस्तुएँ हैं, इसलिए किले के उत्तरवर्ती इस्लामी आधिपत्यकर्ताओं ने पत्थर की उस प्रतिमा को गिरवाया और तुड़वा दिया था। यही वह प्रतिमा है जो वहाँ उपेक्षित पड़ी है।

जिस लेखक का अवतरण हमने ऊपर उद्धृत किया है वह आगे लिखता है—[२६]"इसकी कारीगरी सिकन्दरा स्थित अकबर के अरबी साँड घोड़े की पूरी प्रतिमा की तुलना में काफी घटिया किस्म की है।" यह एक अन्य झूठी कथा है। अकबर का सिकन्दरा स्थित तथाकथित मकबरा लेषमात्र भी न होकर सात मंजिला हिन्दू राजमहल है। राजकीय अश्व-प्रतिमा का वहाँ अस्तित्व भी उस हिन्दू राजमहल के पूर्वकालिक हिन्दू स्वामित्व का अतिरिक्त प्रमाण है जिसमें अकबर अपनी मृत्यु-शय्या पर बीमार पड़ा हुआ था। अकबर को तो उसी हिन्दू राजमहल में दफना दिया गया था जिसमें वह अपनी मृत्यु के समय शिविरावास किए हुए था। जो लोग यह विश्वास करते हैं कि अकबर आगरे के लालकिले में मरा था और उसके शव को छः मील दूर सिकन्दरा में दफनाने के लिए ले गए थे, जहाँ विशाल सातमंजिला मकबरा उसी के लिए बनाया गया था, उनको ठीक जानकारी नहीं है तथा वे भ्रम में हैं। मध्यकालीन युग में यह तो सामान्य अभ्यास रहा है कि मुस्लिमों को वहीं दफना दिया जाए, जहाँ वे मरे थे। इस प्रकार तैमूर लंग, महमूद गज़नी, हुमायूँ और सफदरगंज सब-के-सब अपने उन्हीं पूर्वकालिक राजमहलों में दफनाए पड़े हैं जिनको उन्होंने उनके पूर्वकालिक हिन्दू शासकों से छीन लिया था।

हम अब पाठकों का ध्यान एक अन्य इतिहासकार की पर्यवेक्षणों की ओर आकृष्ट करेंगे जिसकी पुस्तक भी आगरे स्थित लालकिले के हिन्दू मूलक होने के साक्ष्यों से भरी पड़ी है। एकमेव विडम्बना यह है कि उस साक्ष्य-भण्डार के होते हुए भी वह इतिहासकार उसका मूल्यांकन कर सकने में असफल रहा क्योंकि भ्रामक मध्यकालीन मुस्लिमों ने भारतीय इतिहास

२६. वही, पृष्ठ ४१।

के साथ पर्याप्त मात्रा में हेर-फेर की थी।

लेखक लिखता है—[२७] "(हाथी पोल) द्वार में नगाड़खाना (संगीत दीर्घा) है। यह रक्षक-गृह भी था और सम्भवतः एक उच्च सैनिक अधिकारी का निवास-स्थान भी था, किन्तु यह निश्चित है कि वह, जैसा कि मार्ग-दर्शक लोग कहते हैं, 'दर्शन दरवाजा' नहीं है (वह द्वार जिसके ऊपर बादशाह के दर्शन सामान्य लोग कर सकते थे) जैसा विलयन फिन्च ने वर्णन किया है कि जहाँगीर बादशाह सूर्योदय के समय अपने दर्शन दिया करता था।"

हाथी पोल और नगाड़खाना, दोनों शब्द ही हिन्दू राजवंशों से सम्बन्धित प्राचीन पवित्र परम्पराओं के द्योतक हैं। इस प्रकार वे किले के हिन्दू मूलक होने के प्रमाण हैं। लेखक ने मार्गदर्शकों को गलत माना है किन्तु वे गलती पर नहीं हैं। दर्शनी दरवाजा कहलाता ही इसी कारण है कि प्राचीन हिन्दू राजा लोग अपनी प्रजा को इसी पर चढ़कर दर्शन दिया करते थे। मुस्लिम शासन में इस भवन को किसी समय रक्षक-गृह के रूप में और सम्भवतः किसी अन्य समय पर एक उच्च सैनिक अधिकारी के निवास-स्थान के रूप में भी प्रयोग में लाया गया हो—किले के बहुविध जीवन में यह सम्भव है। इस प्रकार एक ही भवन के इतिहास के विभिन्न कालखण्डों में विभिन्न उपयोग के कारणों में कोई असंगति नहीं है, कोई विरोध नहीं है। एक ही भवन पृथक्-पृथक् काल में भिन्न-भिन्न रूप में काम में लाया जा सकता है। किन्तु 'सूर्योदय' शब्द महत्त्वपूर्ण है। रखैलों के साथ रात-रात भर रँग-रेलियाँ मनाने और तीव्र मादकों तथा असामान्य ओषधियों के प्रभाव से निद्रा लेने वाले मुस्लिम बादशाह सूर्योदय के समय कभी जगते नहीं थे। इसके विपरीत, प्राचीन परम्परा के कारण एक हिन्दू सम्राट् और सामान्य हिन्दू व्यक्ति को अधिकारितापूर्वक नियोजित कर रखा था कि वह सूर्योदय से पर्याप्त पहले जग जाए और भोर होते ही अपना कार्य प्रारम्भ कर दे। यह चली आई, दीर्घकालीन परम्परा कि बादशाह हाथी पोल से, सूर्योदय के समय, प्रजा को अपने दर्शन देता था, निश्चित ही आगरे के लालकिले में मुस्लिम-पूर्व दिनों के अभ्यास की ओर इंगित करती है।

---

२७. ई० बी० हेवेला रचित 'आगरा निर्देशिका', पृष्ठ ४२।

[२८]"(मोती) मस्जिद के चारों कोनों पर अष्टकोणात्मक दर्शक-मंडप विशालतर संरचनात्मक पूरे विवरणों से सम-स्वर हैं।" जैसा पहले ही स्पष्ट किया जा चुका है, अष्टकोणात्मक आकृति के हिन्दू महत्त्व को दृष्टि में रखने के कारण स्वतः स्पष्ट है कि तथाकथित मोती मस्जिद पूर्वकालिक 'मोती मन्दिर' है। यदि उसके फर्श और दीवारों को खोदा जाए तो सम्भव है कि दबी हुई प्रतिमाएँ मिल जाएँ।

[२९]"चित्तौड़-दरवाजे से आगे आप आच्छादित मार्ग से घिरे हुए चतुष्कोण में प्रवेश करते हैं, जो राजमहल के बहुविध जीवन के एक भिन्न काल का स्मरण कराता है। यहाँ पर भरतपुर के एक राजा का बनवाया हुआ हिन्दू मन्दिर है, जिसने १८वीं शताब्दी के लगभग मध्यकाल में आगरा जीता था और वहाँ लगभग १० वर्ष तक रहा था।" हम सब जानते ही हैं कि मन्दिर मुस्लिम पूर्व युग का रहा होगा और उस मन्दिर के देवालय में से एक वह स्थान भी रहा होगा। भरतपुर के हिन्दू शासक ने तो उसका जीर्णोद्धार मात्र किया होगा अथवा इसमें देव-प्रतिमा की स्थापना की होगी। किले की प्राचीनता की असुविधाजनक साक्षी को स्पष्ट करने के लिए उसका निर्माण-श्रेय किसी आधुनिक हिन्दू शासक को दे देने का अति सुलभ प्रकार ही भ्रमित इतिहासकारों ने अंगीकार कर लिया है।

[३०]"मच्छी भवन में पहले संगमरमर की क्यारियाँ, जल-प्रवाहिकाएँ, फव्वारे और मछली के कुंड बने हुए थे। राजमहल के इस तथा अन्य भागों से पच्चीकारी तथा अत्युत्तम संगमरमरी फूल-बूटे की नक्काशी की बहुत बड़ी संख्या भारत के तत्कालीन गवर्नर जनरल लार्ड विलियम बैंटिंक द्वारा नीलाम कर दी गई थी।" स्मरणातीत युग से हिन्दुस्तान के समस्त प्रदेशों में विद्यमान अति समृद्ध एवं राजकीय भव्य भवनों को विशाल क्षति पहुँचाने का जो विदेशी तुर्कों, अरबों, ईरानियों, अफगानों और अंग्रेजों ने यत्न किया, उपर्युक्त उदाहरण तो उसका एक नमूना मात्र है। मानो जले पर जैसे नमक छिड़कने की बात हो, उन टूटे हुए खण्डहरों का उन विदेशियों को ही

२८. वही, पृष्ठ ४१।
२९. वही, पृष्ठ ४७, ५२।
३०. वही, पृष्ठ ५२।

निर्माण-श्रेय दिया जा रहा है जिन्होंने उन सुन्दर भवनों को लूटा और चकनाचूर किया था।

[31]"काले सिंहासन के चारों तरफ लिखे हुए फारसी शिलालेख से हमें जानकारी मिलती है कि इसे सन् १६०३ में जहाँगीर के लिए बनवाया गया था। यह कार्य उसके पिता अकबर की मृत्यु से दो वर्ष पूर्व किया गया था, जब वह उस समय केवल शाहज़ादा ही था। अतः यह सिंहासन, संभवतः अकबर द्वारा अपने पुत्र के गद्दी पर बैठने के अधिकार को मानने की स्मृति-स्वरूप ही बनाया गया था।" हेवेल का अनुमान गलत है। हम शिलालेखों का विवेचन पहले ही कर चुके हैं और भली-भाँति प्रदर्शित कर चुके हैं कि उनमें किसी मुस्लिम संरचना का उल्लेख नहीं है।

उपर्युक्त अवतरण हमारी इस धारणा को पूरी तरह पुष्ट करता है कि मध्यकालीन मुस्लिम दरबार के अंधानुविश्वासी लोग किस सीमा तक झूठ बोलने और लिखने के अभ्यस्त थे। हेवेल जैसा निष्पक्ष इतिहासकार तथ्यों और मुस्लिम लिखावटों में अनुपयुक्तताओं में अन्तर खोज निकालने में विफल नहीं हुआ है, चाहे वे पत्रों में हो अथवा पत्थरों में। हेवेल द्वारा भ्रामक शिलालेख की कृपालु और उदारतावादी व्याख्या अनुचित है। अकबर को एक बार उसके पुत्र जहाँगीर द्वारा विष दिया गया था। साथ ही, अकबर की मृत्यु से पूर्व ही जहाँगीर ने खुली बगावत कर दी थी। इन परिस्थितियों में किस प्रकार अकबर उस सिंहासन पर अपने बगावती और हत्या पर उतारू बेटे का नाम खुदवा सकता था! उसका अर्थ तो राजगद्दी का त्याग होता। इतना ही नहीं, यदि यह बात ही सच होती तो तथ्य को अनेक शब्दों में उस शिलालेख पर उद्धृत किया गया होता। सम्पूर्ण प्रयोजन को स्पष्ट शब्दों में प्रस्तुत करने से बादशाह को रोकता कौन था? कोई भी व्यक्ति शब्दों को अस्पष्ट रूप में क्यों कहे? परिस्थितियों के निरीक्षणोपरान्त हेवेल का अनुमान इतिहासकार के अनुरूप शोभनीय प्रतीत नहीं होता। हिन्दू सिंहासन-पीठिका पर यह शिलालेख असंगत मुस्लिम लिखावट ही स्पष्ट रूप में है।

"नदी-मुख के ऊपर सर्वाधिक घुमावदार दुर्ग-प्राचीर पर बना सुन्दर

---

३१. वही, पृष्ठ ५६।

दुमंजिला दर्शक-मंडप सम्मन बुर्ज है।"

हम पहले ही स्पष्टीकरण दे चुके हैं कि आगरे के लालकिले की अन्य प्रत्येक वस्तु जिस प्रकार मूल में हिन्दू है, उसी प्रकार यह अष्टकोणात्मक स्तम्भ भी हिन्दू-मूलक है। कुछ लोगों के अनुसार, शाहजहाँ को उसकी मृत्यु (सन् १६६६ ई०) से पूर्व आठ वर्ष तक उसी के पुत्र औरंगजेब ने यहीं पर कैद कर रखा था। किले का यही सर्वोत्तम भाग होने के कारण औरंग-जेब ने अपने बन्दी पिता को वहाँ कभी भी नहीं रखा होगा। इसलिए, एक अन्य स्थान अर्थात् तथाकथित जहाँगीरी-महल का दर्शक-मंडप ही वह स्थान रहा होगा जहाँ शाहजहाँ को कारावास दिया गया होगा। अतः दूसरे वर्णन पर अविश्वास करने में हेवेल ने गलती की है। किन्तु उपर्युक्त अवतरण प्रस्तुत करने में हमारा मन्तव्य भिन्न है। दुर्ग-प्राचीर के ऊपर वाले बुर्ज को हेवेल ने 'सम्मन बुर्ज' नाम दिया है। हम इससे पूर्ण रूप में सहमत हैं। मुस्लिम वर्णनों ने इसके हिन्दू मूल को रूप-परिवर्तित करने के लिए 'मुत्थम्मन' या मुसम्मन बुर्ज का अपभ्रंश रूप प्रस्तुत कर दिया था। सम्मान बुर्ज पूर्ण रूप में स्वीकार्य, ग्राह्य है क्योंकि संस्कृत में "सम्मान' शब्द का अर्थ 'इज्जत' है। चूँकि वही सर्वोत्तम स्थान था, इसलिए सम्मानित शाही अतिथियों को किले के मुस्लिम-पूर्व हिन्दू राजवंशियों द्वारा उसी स्थान पर ठहराया जाता था। यही कारण था कि उस स्थान का नाम 'सम्मान बुर्ज' पड़ा था। इसलिए किसी भी व्यक्ति को इस बुर्ज का अशुद्ध नामोच्चारण 'मुत्थम्मन' या 'मुसम्मन' बुर्ज करके नहीं करना चाहिए और न ही इसे चमेली-बुर्ज कहना चाहिए जैसा कि आजकल कुछ लोगों का नित्य अभ्यास है। ऐसे सभी अभिप्रेरित रूप-परिवर्तन को मध्यकालीन इतिहास के पृष्ठों से बाहर निकाल फेंकना चाहिए।

[32]"खास महल की दीवारों में अनेकों आले हैं जिनमें पहले मुगल बाद-शाहों के चित्र रखे जाते थे।" हेवेल स्पष्टतः यह विश्वास करने में गलती पर है कि आलों में मुस्लिम चित्र रखे जाते थे। मुस्लिम परम्परा चित्रों से नाक-भौं सिकोड़ती है। मुस्लिम लोग तो पैगम्बर मोहम्मद तक का चित्र

३२. वही, पृष्ठ ६०।

देखने में संकोच करते हैं। मुस्लिम चित्रों का धोखा इस तथ्य से उत्पन्न होता है कि मुगलों के हाथों में किला पड़ने से पूर्व उन आलों में हिन्दू देवताओं और हिन्दू राजाओं के चित्र थे। वही तथ्य कि निर्दयी मुस्लिम शासन के ५०० वर्ष व्यतीत हो जाने पर भी उन आलों में राजकीय चित्रों के जड़े जाने की कथा आज भी प्रचलित है, दर्शाता है कि आगरे के लालकिले पर पूर्वकालिक हिन्दू शासन की परम्परा कितनी गहन, दृढ़ और दीर्घावधि की थी।

[३४]"खास महल की दीवारों पर उत्कीर्ण एक फारसी कविता इसका निर्माणकाल सन् १६३६ घोषित करती है" — हेवेल का कहना है। यह गलत है। हम पहले ही शिलालेखों की विवेचना कर चुके हैं और भली-भाँति प्रदर्शित कर चुके हैं कि उन शिलालेखों में अपहरणकर्ता द्वारा तात्कालिक लिखावट की तारीख तो भले ही हो सकती है किन्तु किसी में भी किले अथवा किले के भवन-निर्माण की कोई भी तारीख नहीं है। तथ्य तो यह है कि इस प्रकार के अनधिकृत, निरुद्देश्य और शौकिया निष्कर्षों द्वारा भारतीय ऐतिहासिक अनुसंधान का मूल नाश हुआ है और भारतीय इतिहास से सम्बन्धित तथ्यों तथा निष्कर्षों के बारे में विश्व की विद्वत्ता को जड़ीभूत करने के मूल कारण भी ऐसे ही निष्कर्ष हैं। इसके विपरीत, ऐसी ऊल-जलूल, अनुत्तरदायी और असंगत लिखावटें इसी के विपरीत निष्कर्षों के असंदिग्ध संकेतक हैं अर्थात् कि इनका लेखक या तो स्वयं अपहरणकर्ता था अथवा उसका ही भाड़े का टट्टू था।

[३५]"(जहाँगीरी महल) के चतुष्कोण की उत्तर दिशा में एक स्तम्भयुक्त महाकक्ष है जो विशिष्ट रूप में हिन्दू शैली, रूपरेखांकन है।" यहाँ महत्त्वपूर्ण बात यह है कि भ्रामक इस्लामी दावों के होते हुए भी हेवेल जैसे निष्पक्ष इतिहासकारों की दृष्टि से यह बात ओझल नहीं होती कि स्तम्भयुक्त महाकक्ष अचूक रूप में हिन्दू ही है। यदि उनकी आँखों पर घोर भ्रामक मुस्लिम लिखावटों का पर्दा न पड़ा होता, तो वे यह बात दृष्टि में लाने से न चूक पाते कि न केवल स्तम्भयुक्त महाकक्ष अपितु सम्पूर्ण किला ही हिन्दू नमूने का है।

३४ वही, पृष्ठ ६०।
३५. वही, पृष्ठ ६६।

फिर भी यह कोई कम अनुग्रह नहीं है कि कम-से-कम कुछ नेत्रोन्मेषकारी उदाहरणों ने कम-से-कम कुछ इतिहासकारों का ध्यान व उनकी लेखनियों को झूठी मुस्लिम रचनाओं और ढोंगों के घोर रूप-परिवर्तनों में से अपनी ओर आकृष्ट कर लिया।

[३६]"(तथाकथित जहाँगीरी महल के) चतुष्कोण की पश्चिमी ओर वाल कमरा, जो अनेकों गहरे आलों से घिरा हुआ है, पूर्वकाल में मन्दिर था-कहा जाता है, जिसमें हनुमान और अन्य हिन्दू देवताओं की प्रतिमाएँ रखी हुई थीं।"

इस्लामी आधिपत्य की पाँच शताब्दियाँ बीत जाने पर भी किसी हिन्दू मन्दिर के अस्तित्व की कथा का रहस्योद्घाटन कभी न होता यदि यह कथा इससे कम-से-कम १५०० वर्ष पहले तक हिन्दू शासन के अन्तर्गत सम्वर्धित, परिवर्धित न हुई होती। हेवेन ने मध्यकालीन मुस्लिमी झूठी बातों को सत्य सिद्ध करने में अपनी कल्पना शक्ति को पूरी स्वतन्त्रता प्रदान करते हुए लिख दिया है कि चूँकि जहाँगीर की एक पत्नी हिन्दू थी और माँ भी हिन्दू ही थी, इसलिए उसने उनको अनुमति दे दी थी कि वे वहाँ हिन्दू देवी-देवताओं की पूजा कर सकती हैं। हम इससे पूर्व ही बता चुके हैं कि जहाँगीर किस प्रकार एक निर्दयी धर्मान्ध मुस्लिम व्यक्ति था जिसको मन्दिर भ्रष्ट करने एवं समूल नष्ट करने में अत्यधिक रुचि थी। साथ ही, इस बीसवीं शताब्दी में भी, किसी भी हिन्दू महिला को जो मुस्लिम घराने में चली गई हो, वहाँ जाकर किसी भी हिन्दू रीति-रिवाज को मानने की अनुमति नहीं दी जाती है। वह तो अपने व्यक्तियों, धर्म और संस्कृति के लिए अग्राह्य होकर सदैव के लिए खो जाती है। अतः मुस्लिम स्वच्छन्दतावादियों और नर-राक्षसों के हरमों में सदैव के लिए प्रविष्ट की गई हिन्दू महिलाओं का अपनी जन्मकालीन संस्कृति से पूर्णतः पृथक् होने की कितनी दुःखावस्था होती होगी, यह तो केवल कल्पना ही की जा सकती है।

हम किले के अन्तर्गत हिन्दू लक्षणों की ओर संकेत करने के लिए अब एक और ऐतिहासिक पुस्तक की ओर संदर्भ-निर्देश करेंगे। लेखक कहता है:

---

३६. वही, पृष्ठ ६७।

[३७]"सर टामस रो के पादरी एडवर्ड टेरी द्वारा वर्णित सिंहासन पर चढ़ने के लिए लगे हुए पत्थर पर चाँदी की पर्त थी, वह चार रजत-दर्शनीय वस्तुओं से अलंकृत था, जवाहरात जड़े हुए थे जो शुद्ध सोने की छतरी को सहारा दिए हुए थे। (यह दीवाने-आम में था)।"

यह सर्वविदित है कि हिन्दू, संस्कृत परम्परा में राजगद्दी को 'सिंहासन' कहते हैं जिसका अर्थ सिंह का आसन है। राजगद्दी का यह नाम प्रचलित होने का कारण यह भी है कि हिन्दू राजकीय गद्दियाँ सिंहों के चित्रों के सहारे रहा करती थीं। यह हिन्दुओं की समान पद्धति थी। इसके विपरीत इस्लामी परम्परा सभी प्रकार के आकारात्मक प्रतीक से नाक-भौं सिकोड़ उठती है। अतः इस बात की कल्पना भी नहीं की जा सकती है कि विश्व का कोई भी मुस्लिम बादशाह, जो दकियानूसी मुल्लाओं और काज़ियों से घिरा रहता हो, एक 'काफिराना' नमूने के सिंहासन को बनाने का आदेश देने की अनुमति प्राप्त कर सके। किन्तु मध्यकालीन मुस्लिम परम्परा में 'काफिरों' की किसी भी वस्तु को हथियाकर अंगीकार कर लेने के कार्य को विशिष्ट पुण्य कर्म समझा जाने लगा था। घृणित 'काफिरों' से लूट में प्राप्त महिला, सिंहासन या चल-सम्पत्ति विजेता इस्लामी व्यक्ति के लिए तुरन्त अति पवित्र वस्तुएँ हो जाती थीं। किसी भी मुस्लिम बादशाह द्वारा स्वयं कोई सिंहासन निर्माण न कराने पर भी 'काफिरों' के निशान वाले सिंहासन पर प्रभुत्व दिखाने का स्पष्टीकरण यही है, यदि वह वस्तु लूट की सामग्री में प्राप्त हो गई। इस चर्चा से यह स्पष्ट हो जाना चाहिए कि ब्रिटिश एजेंट ने आगरे के लालकिले के राजमहल में जिस सिंहासन पर जहाँगीर को बैठे हुए देखा था, वह विजित हथियाई गई हिन्दू सम्पत्ति ही थी। इस प्रकार, मुस्लिमों के हाथ पड़ने वाला आगरे का लालकिला कोई रिक्त स्थान न होकर, विपुल हिन्दू धन-सम्पत्ति का भण्डार था। (बाबर के पुत्र तथा अन्य लोगों सहित) हुमायूँ के हाथों में जो विशाल सामग्री लूट में मिली थी, उसी में यह एक वस्तु सिंहासन भी था।

वह सिंहासन अकेला ही सिंहासन नहीं था। लालकिले की प्रत्येक

---

३७. श्री एस० एम० लतीफ कृत 'आगरा ऐतिहासिक और विवरणात्मक', पृष्ठ ७७।

मंज़िल में राजमहलों में से हर एक में हिन्दू सिंहासन के भिन्न प्रकार का एक-एक सिंहासन था। एक तो सफेद संगमरमर के पादों पर रखा था, दूसरा काले संगमरमर के पादों पर था, तीसरा तथाकथित दीवाने-आम में था जिसका अभी-अभी उल्लेख किया था और इसी प्रकार अन्य भी था। भिन्न-भिन्न सिंहासनों के आधार में वे पशु आकृतियाँ थीं जो हिन्दू राजवंशी परम्परा में पवित्र माने जाते हैं। सिंहों की आकृति वाला सिंहासन सामान्य श्रोता-कक्ष में रखा था क्योंकि हिन्दू राजा जनता की उपस्थिति में स्वयं को सदैव सिंहासन पर आसीन करता था।

काले संगमरमर के पादों वाला सिंहासन उस समय काम में आता था जब राजा किसी व्यक्ति पर राजद्रोह अथवा हत्या जैसे गम्भीर अपराध पर विचार कर निर्णय सुनाने के लिए बैठता था।

सफेद पादाधार वाला संगमरमरी सिंहासन उस समय काम में लाया जाता था जब किसी विशिष्ट अभ्यागत अथवा अतिथि से हिन्दू राजा भेंट करता था।

इतिहास में यह खोज निकाला जाना चाहिए कि उन सभी सिंहासनों का क्या हुआ जो सन् १५२६ ई० में आक्रमणकारी पिता बाबर के कारण हुमायूँ को, हिन्दुओं से विजयोपरान्त मुस्लिमों के हाथों में जा पड़े थे। लूटे गए अनेक सिंहासनों में से एक सिंहासन सुप्रसिद्ध मयूर-सिंहासन था जिसका निर्माण-श्रेय कुछ तिथिवृत्तकार गलती से शाहजहाँ को देते हैं।

उसी पुस्तक के एक अन्य अवतरण में लिखा है, झन-झन कटोरा नाम से पुकारे जाने वाले स्तम्भ से १०० कदमों की दूरी पर चार मकबरे पाये गए थे। स्तम्भ की पदनाम द्योतक 'झन-झन कटोरा' शब्दावली स्पष्टत: (कुछ अस्पष्ट मध्यकालीन साहचर्य सहित) एक हिन्दू नाम है जो विभिन्न काल-खण्डों में मुस्लिम आधिपत्य के ५०० वर्षों की अवधि रहने पर भी आगरे के लालकिले से सम्बन्धित प्रचलित चली आई है क्योंकि हिन्दुओं का उस किले से पूर्वकाल में अति सुदृढ़, निकट का सम्बन्ध रहा है। उस स्तम्भ का अस्तित्व भी किले के हिन्दू-मूलक होने का एक अन्य सबल प्रमाण है।

आगरे के लालकिले के भीतर सँजोकर रखी गई उस अपार धन-संपत्ति का अनुमान जिसे भारत में मुस्लिम शासन के अन्तर्गत बारम्बार की लूट

द्वारा नष्ट किया गया था, निम्नलिखित पदटीप से लगाया जा सकता है—[३८]"सन् १७०० में बहादुरशाह ने और सन् १७१९ में सैयद भाइयों ने आगरे के किले में विपुल कोष भण्डारों को दुर्लक्षित किया था।"

शाहजहाँ के दरबार में वीर अमरसिंह राठौड़ की हत्या की ओर इंगित करते हुए अन्य पदटीप में कहा गया है—[३९]"मारवाड़ (जोधपुर) के राजा गजसिंह राठौड़ के सबसे बड़े पुत्र राव अमरसिंह ने (५ अगस्त, १६४४ को) दरबार में ही सलाबतखाँ रोशन ज़मीर बक्शी को मार डाला था क्योंकि उसे दरबार से हफ्तों अनुपस्थित रहने के लिए अत्यधिक बुरा-भला कहा गया था'''शाहजहाँ ने मक्कारी की और अपने हरम के निजी कक्ष में विश्राम हेतु चला गया, किन्तु उसने अन्य लोगों को इशारा कर दिया कि अमरसिंह को मार डाला जाए। इसलिए वह (अमरसिंह) स्वयं ही मारा गया था। (किले के बाहर अमरसिंह के पैदल और घुड़सवार सैनिकों ने अपने स्वामी की मृत्यु का समाचार सुनकर अपने शस्त्रास्त्रों का पूर्णरूप से उपयोग किया और जो भी सम्मुख आया उसे जान से मार डाला अथवा गर्दन काट डाली तथा सुरक्षित दूर चले गए)।"

पाठक को उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट हो जाना चाहिए कि हम आज आगरे में जिस लालकिले को देखते हैं, वह प्राचीन हिन्दू किला ही है। यदि कुछ और बात भी थी तो यही कि वह अति विस्तृत और शानदार था। यदि इसके मुस्लिम आधिपत्यकर्त्ताओं और विजेताओं ने कुछ भी किया है तो मात्र इतना कि उन्होंने इसको क्षतिग्रस्त किया, विद्रूप किया और लूटा, किन्तु इसकी दीवारों अथवा भवनों में रंचमात्र भी वृद्धि नहीं की। इसके पूर्वकालिक द्वारों के भी प्राचीन हिन्दू नाम—अमरसिंह द्वार और हाथी पोल—(द्वार) चले आ रहे हैं।

एक और सुनिश्चित प्रमाण (हिन्दू चिह्न) जो दर्शक अभी भी किले के अनेक भवनों पर देख सकता है, वह त्रिशूल है जो कई कलशों पर विद्यमान है। त्रिशूल हिन्दू देवता महाप्रभु शिव भगवान् का ही एकमात्र शस्त्र है। इसी प्रकार के त्रिशूल आगरे के सुप्रसिद्ध ताजमहल पर भी देखे जा सकते

३८. निकोलाव मानुषी कृत 'स्टोरिया द मोगोर', पृष्ठ १९९।
३९. वही, पृष्ठ २००।

हैं (जिसे हिन्दू राजभवन सिद्ध किया जा चुका है)[४०]—यही स्थिति सिकन्दरा में तथाकथित अकबर के मकबरे की है, वह भी पूर्वकालिक हिन्दू राजमहल है।

त्रिशूल-कलश को किले के कुछ प्राचीन हिन्दू राजवंशी भागों की भीतरी छतों पर लगी स्वर्णिम चादरों पर भी देखा जा सकता है।

अत: दर्शकों और इतिहास के विद्यार्थियों को दिग्भ्रमित करने वाले उन परम्परागत वर्णनों पर विश्वास नहीं करना चाहिए जिनमें कहा जाता है कि प्राचीन हिन्दू किला नष्ट कर दिया गया था। वही प्राचीन हिन्दू किला अपनी हिन्दू छटा और भव्य रूप में आज भी विद्यमान है यद्यपि विदेशी मुस्लिम आधिपत्य की शताब्दियों के कारण कुछ मात्रा में उसको विद्रूप और विनष्ट किया गया है। किले के वर्तमान ढाँचे का निर्माण-यश सिकन्दर लोधी अथवा सलीम शाह सूर या अकबर को देने वाले वर्णनों को उन दरबारी चाटुकारों द्वारा प्रचारित-अभिप्रेरित कपट जालों की संज्ञा से पुकारा जाकर दुत्कार दिया जाना चाहिए जो या तो अपने इस्लामी संरक्षकों की झूठी चापलूसी करना चाहते थे अथवा अपने इस्लामी गुमान की तुष्टि के लिए अथवा दोनों ही प्रयोजनों से एक हथियाये गए हिन्दू किले के निर्माताओं के रूप में झूठे यश के दावे प्रस्तुत किया करते थे।

४०. कृपया पढ़ें : पी० एन० ओक कृत 'ताजमहल हिन्दू राजभवन है'।

अध्याय ६

मध्यकालीन लेखकों की साक्षी

अकबर के तीन दरबारियों ने उसके राज्य-शासन के वर्णन लिखे हैं। वे थे : निज़ामुद्दीन, जिसने 'तबाकाते-अकबरी' नामक तिथिवृत्त लिखा है, बदायूँनी जिसने 'मन्तखाबूत' तवारीख लिखी है और अबुलफज़ल जिसने आईने-अकबरी लिखी है।

किन्तु पाठक को यह धारणा नहीं बना लेनी चाहिए कि वे सत्य, विश्वास योग्य वर्णन हैं। तथाकथित प्रबुद्ध लोकतन्त्र के इस युग में भी हम भली-भाँति जानते हैं कि इस प्रकार सरकारी कर्मचारियों और सरकारी इतिहासकारों को केवल वही सामग्री लिखनी पड़ती है जो सरकार द्वारा स्वीकार्य होती है। यदि वे सरकारी पक्ष का पालन नहीं करते तो उनको सरकारी सेवा में नहीं रखा जाएगा। तब उस समय के उन लेखकों की दुर्दशा, असहायावस्था की मात्र कल्पना ही की जा सकती है जो मध्यकालीन मुस्लिम तानाशाह की एकमात्र दया पर ही आश्रित थे। मुस्लिम बादशाह लेखक का शिरच्छेदन करने, उस लेखक की पत्नी का सरेआम अपमान—शीलभंग करने, उसके बच्चों को विदेशी बाज़ारों में दासों के रूप में बिकवाने, उसकी सारी धन-दौलत को हड़प लेने तथा असहाय लेखक के विघटित अंग को सार्वजनिक प्रदर्शन के आदेश दे सकता था। मध्यकालीन मुस्लिम शासन के अन्तर्गत न केवल लेखकों अपितु इस्लामी शहंशाह की प्रजा के सभी वर्गों के लिए ही उपर्युक्त बातें नित्य-प्रति की सामान्य घटनाएँ थीं। इतिहास लगभग प्रत्येक मुस्लिम शासन-काल में घटित ऐसी बातों से भरा पड़ा है।

इतना ही नहीं, उन लेखकों में से ही एक के द्वारा दिया गया यह प्रबल

प्रमाण हमारे पास उपलब्ध है कि वह लेखक केवल वही बात लिख सकता था जिसके लिखने के लिए उसे सर्वशक्ति सम्पन्न बादशाह से सब आदेश दिए जाते थे अथवा केवल ऐसी काल्पनिक सामग्री ही प्रस्तुत कर सकता था जिसको उस शक्ति-सम्पन्न बादशाह द्वारा अनुमोदन प्राप्त हो सकता था। इस सम्बन्ध में किसी दूसरे ने नहीं, स्वयं अकबर के अपने दरबारी-लेखक बदायूँनी ने ही हमें बताया है कि[1] "(हिज़री सन् ९७२) इस वर्ष नगरचैन नामक नगर का निर्माण-कार्य हुआ। अकबरनामा के संकलन के समय इस विषय पर, एक सरदार ने कुछ पंक्तियाँ लिखने को कहा, जिनको मैं यहाँ बिना किसी फेर-बदल के ही लिख रहा हूँ। यह विश्व के परम्परागत आश्चर्यों में से है कि उस नगर और भवन का कोई नामोनिशान शेष नहीं है, इसलिए उसके स्थान पर अब एक सपाट मैदान ही रह गया है।"

इस कथन की सूक्ष्म-समीक्षा अत्यावश्यक है। पहली बात यह है कि इसमें बिल्कुल स्पष्ट रूप में कहा गया है कि लेखकों को आदेश दिए गए थे कि वे केवल वही बातें लिखें जो शहंशाह चाहता था कि लिखी जाएँ। दूसरी बात, आश्चर्य यह है कि क्या कोई नगर एक वर्ष में निर्मित हो सकता है? तीसरी बात, यह तथ्य कि यद्यपि बदायूँनी को कहा गया था कि वह अकबर द्वारा नगरचैन नामक नगर की स्थापना को लिखे, वह आप स्वीकार करता है कि उसने ऐसे किसी नगर का नामोनिशान भी नहीं देखा, जिसका अर्थ है कि अकबर ने नगरचैन नामक एक नगर को विध्वंस किया था किन्तु उस नाम के किसी भी नगर की स्थापना कभी भी नहीं की थी। इस प्रकार मध्यकालीन मुस्लिम लिखावटों से जो बात प्रकट में दिखाई पड़ती है, असली रहस्य उसका उल्टा ही निष्कर्ष प्रस्तुत करता है। उनकी इच्छानुसार रचनाओं से विभिन्न व्याख्याएँ की जा सकती थीं क्योंकि वे रचनाएँ तो कपट-कार्य का ही एक अंग थीं। मध्यकालीन मुस्लिम लिखावटों को पढ़ते समय चाहे वे कागज पर हों अथवा पत्थर पर, इस तथ्य को सदैव सम्मुख रखने की आवश्यकता है। चूँकि अधिकांश आधुनिक इतिहासकारों ने उन लिखी बातों को ज्यों-का-त्यों मान लिया था, इसीलिए वे भ्रमकारी

१. मंतखाबूत तवारीख, खण्ड-II, पृष्ठ ६६८-७८।

अनुमानों में खो गए और उनको किसी भी प्रस्तुत समस्या का समाधानकारी हल प्राप्त नहीं हो पाया।

अधिकांश मध्यकालीन मुस्लिम लेखकों की अन्य विफलता यह रही है कि उन्होंने अपने-अपने प्रिय शहंशाह अथवा द्वितीय श्रेणी के संरक्षक को एक-दूसरे से प्रतिस्पर्धा में न्यायप्रिय, बुद्धिमान्, दयालु, दानवीर, महान् निर्माता, अति उदार और समझदार संरक्षक, महान् आविष्कारक तथा महान् विद्वान् के रूप में चित्रित किया है। इन सब विशिष्टतावाचक शब्दों का सामान्य अर्थ यह था कि प्रशंसित व्यक्ति घोर क्रूरकर्मा, अन्यायी, अनैतिक, अशिक्षित निर्दयी था। जब वे वर्णन करते हैं कि एक विशेष बादशाह या दरबारी ने किसी शहर या किले का निर्माण किया तो उसका सही अर्थ यही निकाला जाएगा कि उसने तो इसको विनष्ट ही किया होगा, किसी भी प्रकार उसका निर्माण नहीं।

मध्यकालीन मुस्लिम इतिहासकारों की एक अन्य प्रिय शब्दावली भी थी। वे सदैव एक हिन्दू नगर का उल्लेख करते और कहते थे कि उनके सुल्तान या बादशाह के वहाँ पदार्पण करने से पूर्व यह स्थान मात्र एक गाँव ही था, और क्योंकि बादशाह वहाँ चला गया तथा उसने विशाल निर्माण-कार्यक्रमों को पूर्ण किया, इसलिए वह स्थान फुव्वारों, बागों, चौड़ी सड़कों, शानदार भवनों, समृद्ध बाजारों तथा धनिक जनसंख्या वाला नगर हो गया। ऐसा ही आविष्कारपूर्ण ऐतिहासिक जादू भरा चमत्कार है उन जीहुजूरिया चाटुकारों की लेखनी का जिनके पूर्वजों ने 'अरेबियन नाइट्स' काल्पनिक पुस्तक की रचना की थी। अपने उद्धत घमंडी स्वामियों के सम्मुख अपने जीहुजूरियाई तीरों को नतमस्तक करके अपनी निपुण लेखनी के कुछ प्रहारों मात्र से ही उन्होंने सबसे विशाल भवनों को बनाने, गौरव-शाली राजमहलों का निर्माण करने और सर्वाधिक चमत्कारिक नगरों की स्थापना करने की विधि हृदयंगम कर ली थी।

इस प्रकार हमें एक मुस्लिम मुंशी के बाद दूसरे मुस्लिम मुंशी (दरबारी लेखक) द्वारा बताया जाता है कि सिकन्दर लोधी के आगमन से पूर्व आगरा मात्र एक गाँव ही था, सलीम शाह सूर द्वारा अपनी राजधानी बनाए जाने से पूर्व भी यह एक गाँव ही था, फिर जब अकबर ने आगरा

अपनी राजधानी बनाने का विचार किया तब भी यह गाँव मात्र ही था, अहमदशाह द्वारा अहमदाबाद को अपनी राजधानी बनाने का निर्णय करने से पूर्व अहमदाबाद भी एक नगण्य ग्राम मात्र ही था, और इसी प्रकार टीपू सुल्तान द्वारा आज सभी दर्शनीय भवनों की निर्मिती-पूर्व श्रीरंगपटनम् भी ऐसा ही ग्राम था—इसी प्रकार तुगलकाबाद, फिरोजाबाद, इलाहाबाद आदि की कहानी थी। तथ्यत: सम्पूर्ण भारत गाँवों से भरा पड़ा था, पंकिल-कुटियों और झुग्गी-झोंपड़ियों से भरपूर था जब तक कि अरब, तुर्किस्तान, ईरान और अफगानिस्तान के निरक्षर बर्बरों के झुंड-के-झुंड अपनी जादू की गति और चमत्कारिक दक्षता से भारत में एक के बाद एक मकबरे और एक के बाद एक मस्जिद दर्जनों की संख्या में बनाने के लिए भारत में न आए। वास्तव में तो इन विदेशियों की शक्ति और उत्साह इतना अधिक था कि उन लोगों ने अपनी मृत्यु से काफी समय पूर्व ही अपने-अपने मकबरे बनवा लिए थे—ऐसा हमें अत्यन्त गम्भीरतापूर्वक बताया जाता है।

इसमें तरस और लज्जा की बात तो यह है कि अनुवर्ती दिनों के अपने प्रवंच्य इतिहासकारों ने ऐसे सभी शैक्षिक कूड़े-कचरे में निर्दोष बालकों जैसा सरल, सहज विश्वास कर लिया। इसका परिणाम इतिहास के लिए इतना विनाशकारी हुआ है कि समस्त संसार ने गलत धारणाओं को गहन अध्ययनोपरांत रट लिया और कु-इतिहास को हृदयंगम कर लिया है, यद्यपि ऐसा करते समय सदैव यही विश्वास किया कि यह पवित्र, आधिकारिक इतिहास है।

सभी व्यक्तियों को मध्यकालीन मुस्लिम तिथिवृत्तों और शिलालेखों से निपटने से पूर्व इस घोर विश्वसनीयता के अभाव के स्पष्ट विचार अपने सम्मुख रखने चाहिए। अपने हाथ में यह कुंजी होने पर प्रतीत होने वाली सभी असम्भव और जटिल परिस्थितियाँ तुरन्त ही स्पष्ट हो जाती हैं।

मध्यकालीन मुस्लिम रचनाओं की वास्तविक प्रकृति के प्रति पाठक को सावधान, सचेत कर देने के बाद हम इस अध्याय में आगरे के लालकिले के संदर्भ में उनमें से कुछ का विवेचन करेंगे।

[2]"अबुलफजल के अनुसार आगरे के किले में बंगाल और गुजरात शैली के लगभग ५०० रमणीय भवन थे किन्तु अब वे दिखायी नहीं दे सकते।"

अपनी पुस्तक में उपर्युक्त उद्धरण प्रस्तुत करने वाले लेखक श्री एम०ए० हुसैन एक सेवानिवृत्त सरकारी पुरातत्वीय कर्मचारी हैं। उनकी इस शिकायत से कि अबुलफजल द्वारा उल्लेख किए गए लगभग ५०० भवनों का आगरे के किले में अब कहीं दर्शन भी नहीं होता, केवल दो सम्भावनाएँ स्पष्ट होती हैं। या तो अबुलफज़ल झूठ बात कह रहा होगा अथवा अबुलफज़ल के स्वामी अकबर के अनुवर्ती जहाँगीर अथवा शाहजहाँ जैसे मुगल बादशाहों ने उन भवनों को नष्ट कर दिया होगा।

इन दोनों विकल्पों में से कोई भी विकल्प मुगल शासक के लिए अति प्रशंसात्मक प्रतीत नहीं होता। किन्तु विद्वान् पुरातत्वीय कर्मचारी उपर्युक्त बेतुकेपन से कोई भी निष्कर्ष निकाल पाने में विफल रहा है। उसे कोई प्रेरणा हुई हो, ऐसा प्रतीत नहीं होता। यही तो भारतीय ऐतिहासिक विद्वत्ता की विडम्बना है। वे अपने आपको किसी के भी प्रति—स्वयं अपने ही प्रति भी—उत्तरदायी नहीं समझते।

अबुलफ़ज़ल के प्रयोजनों और उसकी रचनाओं का हमें जो अनुभव है, हम उसके आधार पर कह सकते हैं कि ५०० की संख्या का अर्थ पृथक्-पृथक् भवन न लगाकर महाकक्ष या कमरे या कोष्ठावली या भाग लगाना चाहिए, चाहे वे छोटे हों अथवा बड़े। तब उसकी टिप्पणी का कुछ अर्थ ग्राह्य हो सकेगा। यह सम्भव है कि उसके समय में जो कुछ भाग विद्यमान रहे हों उनको जहाँगीर या शाहजहाँ जैसे अनुवर्ती मुगलों ने भवनों की हिन्दू साज-सज्जा के प्रति असहनशील, अनुदारतावश नष्ट कर दिया हो अथवा वे अग्निकांड, भूकम्प या विस्फोटों जैसी दुर्घटनाओं से ध्वस्त हो गए हों।

परन्तु यह तथ्य कि स्वयं अबुलफजल अपराध स्वीकार करता है वे सभी ५०० भवन बगदाद अथवा बुखारा शैली में न होकर गुजरात और बंगाल शैलियों में थे, स्वयं अपराधी द्वारा अपना अपराध मान लेना और हमारे इस निष्कर्ष का प्रबल समर्थन करना है कि आगरे का लालकिला मूल

२. आगरा किला—लेखक श्री एम० ए० हुसैन, पृष्ठ २।

रूप में हिन्दू कलाकृति ही है।

वे सभी ५०० या उन ५०० में से अधिकांश भाग अभी भी कहीं हैं, यदि विभिन्न कमरों, महाकक्षों व आच्छादित मार्गों को गिना जाय। साथ ही ५०० की संख्या मोटी संख्या या अतिशयोक्ति भी हो सकती है जिसका मंतव्य लालकिले की अनेक मंजिलों में विद्यमान अनेकों बड़े-बड़े कमरे भी हो सकता है। मध्यकालीन मुस्लिम तिथिवृत्तकार अनिश्चित अतिशयोक्ति-पूर्ण मोटी संख्याओं या विषम आँकड़ों का उपयोग करने के कुख्यात हैं।

इस प्रकार मध्यकालीन तिथिवृत्तों की व्याख्या उन तिथिवृत्तों के लेखकों के चरित्र, पूर्व स्नेह, रुझानों और विश्वासों तथा सामान्य मानव-शब्दावली, दुर्बलताओं, अभिप्रेरणाओं व मुस्लिम तिथिवृत्तकारों की प्रवृत्तियों तथा विशिष्टताओं को सदैव ध्यान में रखते हुए ही करना उचित है। उनकी बातों पर शब्दशः विश्वास नहीं किया जा सकता। जिन इतिहासकारों ने उन पर शब्दशः विश्वास किया है वे स्वयं गोरख-धन्धे में फँस गए हैं।

मुगलों को 'बंगाली' शब्द का क्या अर्थ था, यह बताते हुए कीन ने लिखा है[3] "मुगलों को 'बंगाली' शब्द का प्रत्यक्ष अर्थ यही था जो आज के भारतीय को 'फिरंगी' (विदेशी) शब्द से अनुभव होता है।" इससे स्पष्ट हो जाता है कि जब अबुलफज़ल आगरे के लालकिले के सभी ५०० भवनों को बंगाली और गुजराती शैली का कहता है, तब उसका अर्थ यही होता है कि वे (इस्लाम के लिए फिरंगी) अर्थात् हिन्दू मूलोद्गम के हैं।

बदायूँनी ने, जो अकबर के समय में दरबारी तिथिवृत्तकार था, लिखा है[4] "इस (हिज़री सन् ९७१) वर्ष में आगरे के किले की निर्माण-परियोजना का विचार किया गया था और जो दुर्ग अभी तक ईंट का बना हुआ था, उसको उसने कँटे-छँटे पत्थरों का बनाया तथा जिले-भर की प्रत्येक जरीब भूमि पर तीन सेर गल्ले का कर लगाने का आदेश दिया। यह काम पाँच वर्ष में पूरा हो गया···एक गहरी खाई भी बनी थी जो दोनों ओर पत्थर और चूने की थी···इसे यमुना नदी के पानी से भर दिया गया था···किले

३. कीन्स हैंड बुक, वही, पृष्ठ ९२।

४. मंतखाबूत तवारीख़, खण्ड २, पृष्ठ ७४।

को बनवाने की लागत लगभग तीन करोड़ थी।"

उपर्युक्त टिप्पणी में समाविष्ट झूठ को हम तुरन्त बता सकते हैं क्योंकि हमें यह भी बताया जाता है कि हिज़री सन् ९७२ में ही अकबर ने 'नगर चैन' नाम का एक अन्य नगर भी बनाया था। क्या अकबर कोई व्यावसायिक शिल्पकार तथा नगर-रचना शास्त्रज्ञ था जो वर्षानुवर्ष नगर पर नगर बनाए जा रहा था ? क्या वह कोई जादूगर भी था जो एक या दो या पाँच वर्षों में ही सम्पूर्ण नगरों की पूर्ण योजना, उनका निर्माण और जन-आवास करा सकता था, जैसा उसकी ओर से फतहपुर-सीकरी, नगरचैन और आगरे के लालकिले के बारे में दावा किया जाता है ! प्रश्न यह भी है कि इन सभी तीनों स्थानों का निर्माण-काल प्रायः एक ही था तो अकबर बादशाह उस अन्तरिम अवधि में ठहरा कहाँ था ? साथ ही, 'पाँच वर्ष' तो बदायूँनी की वह प्रिय शब्दावली है जिसे उसने उन सभी विभिन्न परियोजनाओं की पूर्ति के लिए प्रयुक्त किया है जिनका निर्माण-श्रेय उसने अपने वरिष्ठों को झूठ-मूठ ही दे दिया है। उदाहरणार्थ, एक अन्य स्थान पर बदायूँनी लिखता है[५] "बादशाह ने सीकरी पहाड़ी की चोटी पर शेख के मठ और प्राचीन प्रार्थनालय के निकट अत्युच्च राजमहल बनवाया। उसने एक नये प्रार्थनालय और एक ऊँची तथा विशाल मस्जिद की नींव रखी। लगभग पाँच वर्ष की अवधि में भवन पूर्ण हो गया था और उसने वह स्थान फतहपुर घोषित कर दिया···।"

अन्य मुस्लिम तिथिवृत्तकारों का रुझान अन्य प्रिय अंकों पर है। उदाहरणार्थ, विदेशी आक्रमणकारी तैमूरलंग, जिसने आत्मचरित लिखा है, उन लोगों की संख्या १,००,००० दोहराता है जिसे उसने भिन्न-भिन्न स्थानों पर कत्ल किया था। अन्य मुस्लिम तिथिवृत्तकार को १०१ का अंक अच्छा लगता है। चूँकि उनको झूठ ही लिखना होता था, इसलिए उनकी वह प्रिय संख्या बार-बार उसके तिथिवृत्त में दिखाई देने लगती है चाहे वह उस समय किसी नगर अथवा राजमहल अथवा किले के निर्माण का उल्लेख कर रहा हो, या किसी राजा की यशोगाथा का गान कर रहा हो अथवा किसी

५. वही, पृष्ठ ११२।

अधीनस्थ कर्मचारी को दान में दी गई धन-राशि का वर्णन हो।

अतः एक सच्चे इतिहासकार को गुप्तचर जैसी अचूक दृष्टि से झूठ के ऐसे लक्षणों को खोज निकालना चाहिए, विशेष रूप में जब मध्यकालीन मुस्लिम तिथिवृत्तों की बात हो।

बदायूँनी के उपर्युक्त अवतरण में एक और फंदा आगरे के 'दुर्ग' शब्द में है। 'आगरे के दुर्ग' शब्द-समूह से उसका अर्थ नगर प्राचीर है, आगरे की गढ़ी नहीं। यह बात उसके एक अन्य अवतरण से स्पष्ट है जिसमें वह कहता है [१]"सैयद मूसा बादशाह के प्रति सम्मान प्रदर्शित करने आया था किन्तु संयोगवश एक स्वर्णकार की हिन्दू पत्नी पर मुग्ध हो गया। उसका नाम मोहिनी था। जब सैन्य-दल रणथम्भौर की ओर चला तब उसने पीछे ही रह जाने का उपाय निकाल लिया। उसने आगरे के दुर्ग के भीतर ही मकान ले लिया।" एक सामान्य मुस्लिम व्यक्ति का एक सामान्य हिन्दू की पत्नी पर मोहित हो जाना और उसी के मकान के पास ही मकान ले लेने का मात्र इस बात का द्योतक है कि बदायूँनी का 'आगरा दुर्ग' शब्दावली से अर्थ केवल आगरा का चहारदीवारी शहर है।

बदायूँनी द्वारा प्रयुक्त इस शब्दावली के अर्थ को ध्यान में रखकर आइए हम एक बार पुनः पूर्वोक्त अवतरण का अध्ययन करें। वह कहता है—"इस हिज़री सन् ९७१ वर्ष में आगरे के किले की निर्माण-परियोजना का विचार किया गया था और जो दुर्ग अभी तक ईंट का बना हुआ था, उसको उस अकबर ने कँटे-छँटे पत्थरों का बनवाया···।"

यह बात ध्यान में रखते हुए कि हम एक धोखे-पूर्ण, धर्मान्ध-उग्रवादी और खुशामदी टिप्पणी का विचार कर रहे हैं, हम अब इसकी जरा और सूक्ष्म समीक्षा करें। पहली बात यह है कि क्या यह स्वयं आश्चर्य की बात नहीं है कि आगरे के सम्पूर्ण नगर (या कम-से-कम इसकी विशाल दीवार) और उसके दुर्ग के निर्माण की सम्पूर्ण कथा दरबारी-इतिहास लेखक मात्र आधी दर्जन पंक्तियों में समाप्त कर दे। क्या उसे हमें और अधिक विवरण नहीं देना चाहिए! किन्तु बदायूँनी हमें और अधिक विवरण दे भी नहीं

१. वही, खण्ड II, पृष्ठ ११४।

सकता था क्योंकि आगरा नगर की दीवार और उसका किला पहले ही विद्यमान थे। एक दूसरा संकेतक भी। वह जिस बात को कहने के लिए इतने हाथ-पैर मारता है, वह केवल यह है कि आगरे की दीवार (नगर-प्राचीर), किले और उसके भीतर की दीवारें ईंटों की थीं, जिनके स्थान पर अकबर ने पत्थरों को लगवा दिया था। किन्तु हम पाठक को यह भी बताए देते हैं कि वह अध्यारोप और निहित-आशय भी सच से बहुत दूर है। अकबर ने यहाँ-वहाँ कुछ मरम्मत का काम करवाया था, जो हर किसी व्यक्ति को समय-समय पर कराना ही पड़ता है।

हम इसी निर्णय पर पहुँच पाए हैं क्योंकि प्राचीन हिन्दू किले और नगर-प्राचीरें बिना भूल-चूक से प्रस्तरीय-रचना के माध्यम से पूरी तरह तैयार हो चुके थे। यह बात समस्त भारत में देखी जा सकती है। यह कहना कि अकबर से पूर्व भारतीय नगरों और किलों की विशाल दीवारें ईंटों से बनी हुई थीं, परले दर्जे की बेहूदगी है। स्पष्ट है कि जैसा नगरचैन नामक नगर के मामले में है, बदायूँनी ने आगरा नगर-प्राचीर और किले का निर्माण-श्रेय अकबर को केवल इसीलिए दिया है क्योंकि उसे आदेश दिया हुआ था कि वह ऐसी कपटपूर्ण टिप्पणी करे। इस सम्पूर्ण कपटपूर्ण टिप्पणी में एकमात्र आधिकारिक विवरण यह है कि अकबर किले को अप-व्ययी रूप में सुसज्जित करने और सजाने को अपनी निर्धन प्रजा की मानो खाल ही उतार लिया करता था।

अकबर के 'अपने मुँह मियाँ मिट्ठू' तिथिवृत्तकार अबुलफजल ने एक तिथिवृत्त लिखा है जो तीन बड़े-बड़े खण्डों में है। फिर भी आगरे के लालकिले के काल्पनिक निर्माण के सम्बन्ध में उसे जो कुछ कहना है वह यह है—[७]"बादशाह सलामत ने लाल पत्थर का एक किला बनवाया है जिसके समान किसी दूसरे किले का उल्लेख किसी भी प्रवासी ने नहीं किया है। इसमें बंगाल और गुजरात के सुन्दर नमूनों की चिनाई वाले ५०० से अधिक भवन हैं...पूर्वी फाटक (द्वार) पर पत्थर के दो हाथी हैं जिन पर उनके सवार बैठे हैं... सुलतान सिकन्दर लोधी ने आगरा को अपनी राजधानी

७. कर्नल एच० एच० जर्टट द्वारा अनूदित, आईने-अकबरी, खंड II, पृष्ठ १९१।

बनाया था किन्तु वर्तमान बादशाह ने इसको सजाया-सँवारा है···।"

लालकिले के बारे में अबुलफजल ने ऐसी असंगत टिप्पणी की है। जिस किले में ५०० भवन हों, उसका वर्णन मात्र कुछ पंक्तियों में कर देने वाले दरबारी इतिहासकार के लेखन-कार्य का मूल्यांकन प्रत्येक पाठक भली प्रकार कर सकता है। उन दोनों हाथियों के सम्बन्ध में आधुनिक इतिहासकारों द्वारा किए गए कपट-कार्य का रहस्योद्घाटन हम आगे पृथक् अध्याय में करेंगे। यहाँ हम पाठक का ध्यान केवल दो बातों की ओर ही आकृष्ट करना चाहेंगे। पहली बात यह है कि आगरे के किले का मुख्य प्रवेशद्वार, जिस दिशा से सूर्योदय होता है उस ओर अर्थात् पूर्वाभिमुख होने के कारण ही यह सिद्ध है कि किला हिन्दू-मूलक है क्योंकि पूर्व-दिशा हिन्दुओं को पवित्र है। किसी मुस्लिम किले के द्वार पर कभी भी हाथियों की प्रतिमाएँ नहीं होंगी तथा मुस्लिम द्वार का मुख पूर्व की ओर कभी नहीं होगा।

ध्यान देने की दूसरी बात यह है कि अबुलफजल अत्यंत सतर्कता-पूर्वक इस बारे में चुप है कि उन हाथियों पर सवार व्यक्ति कौन हैं। किन्तु हम आगे चलकर स्पष्ट करेंगे कि किस प्रकार एक-के-बाद एक पश्चिमी लेखक ने ऊल-जलूल कल्पना कर ली है कि वे दोनों गजारोही चित्तौड़ के राजपूती वंशज थे, जिनको अकबर ने मार डाला था और फिर भी जिनकी गजारोही प्रतिमाएँ पूर्ण वैभवसहित अकबर ने ही बनवा दी थीं। जिनको अति विवेकी इतिहास-अध्येता और परिश्रमी विद्वान् समझा जाता है वही पश्चिमी विद्वान् इस प्रकार की कूड़ा-करकट भरी ढेरियाँ एकत्र कर दें—यही तथ्य उस सर्वनाश का द्योतक है जो विदेशी मुस्लिमों और पश्चिमी विद्वानों ने पृथक्-पृथक् भारतीय इतिहास का कर दिया है। हम इतनी बड़ी भारी भूल का आद्योपांत विवेचन आगे एक पृथक् अध्याय में करेंगे।

अकबर के दरबारियों में से दो—बदायूंनी और अबुलफज़ल—की टिप्पणियों की सूक्ष्म-विवेचना इस प्रकार सिद्ध करती है कि यद्यपि अकबर ने आगरे उर्फ बादलगढ़ के हिन्दू किले को पहले ही अपने आधिपत्य में ले लिया तथा जब तक आगरे में रहा तब तक उसी में रहता आया, फिर भी मुस्लिम तिथिवृत्त-लेखन की उग्रवादी परम्पराओं ने दरबारी चाटुकारों को सभी भवनों का निर्माण-श्रेय अपने इस्लामी प्रभुओं की निर्माण-वृत्ति को देने

के लिए विवश कर दिया। झूठी बातों को लिखने का यह दुःखद आदेशानुसार कार्य अकबर के दरबारी इतिहासकारों ने अप्रगट, अस्पष्ट और निगूढ़ इंगितों द्वारा किया है जिनमें आगरे में अकबर द्वारा किले को किसी समय, किसी प्रकार बनवाने की बात कही गई है जिसके बारे में किसी को भी, कहीं भी, कोई प्रश्न पूछने की आवश्यकता नहीं है।

ऊपर दिए गए अवतरण में अबुलफज़ल ने स्वीकार किया है कि आगरा इससे पूर्व भी राजधानी रह चुका है। जब वह दावा करता है कि अकबर ने इसे सजाया-सँवारा है तब उसका भाव यह है कि अकबर ने अपनी उपस्थिति से उस स्थान की शोभा बढ़ाई थी।

अतिव्ययी भवनों, नगरों और किलों के निर्माण के यश को मुस्लिमों (बादशाहों) को देने के असम्भव किन्तु अपरिहार्य कार्य सम्मुख उपस्थित होने पर मुस्लिम तिथिवृत्तकारों के पास इसके अतिरिक्त और कोई उपाय शेष नहीं था कि वे अस्पष्ट, अटिकाऊ, निरर्थक और द्वयर्थक टिप्पणियों के मुलम्मे चढ़ा पाते। यही वह बात है जो बदायूँनी तथा प्रत्येक अन्य मुस्लिम तिथिवृत्तकार ने की है। यही कारण है कि अति विशाल नगरों और किलों के वर्णन मात्र कुछ पंक्तियों तक ही सीमित रहते हैं और लेखक भूमि-अधिग्रहण, रचना के प्रयोजन, रूप-रेखांकनकार और निर्माणावधि के बारे में विभिन्न महत्त्वपूर्ण प्रश्नों के बारे में पाठक को स्वयं सोचने के लिए मँझदार में छोड़ देता है। वे जब कुछ विवरण देने का यत्न करते हैं तब उनके विवरण अन्य वर्णनों अथवा परिस्थिति-साक्ष्य के बिलकुल विपरीत बैठते हैं। अतः हम इतिहास के विद्यार्थियों और विद्वानों तथा स्मारकों के दर्शनार्थियों को इस बारे में सावधान करना चाहते हैं कि वे मध्यकालीन मुस्लिम दावों पर तब तक कोई विश्वास न करें जब तक कम-से-कम अति-सावधान, स्वतन्त्र सत्यापन से संरचना सम्बन्धी वे दावे प्रमाणित न हों।

अबुलफज़ल और बदायूँनी की टिप्पणियों तथा ऊपर दिए गए अन्य साक्ष्यों की सूक्ष्म परीक्षा से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि विशाल प्राचीर और लालकिले से युक्त आगरा नगर पहले ही विद्यमान था। अकबर (५०० बड़े-बड़े भवनों—भागों वाले) किले में ही निरन्तर रहता था और इस प्रकार उसके द्वारा इसके निर्माण का प्रश्न ही कभी प्रस्तुत नहीं हुआ।

अन्य मुस्लिम तिथिवृत्तकार फरिश्ता ने लिखा है—"सन् १५६४ ई० में आगरे की पुरानी दीवार जो ईंटों की बनी हुई थी, गिरा दी गई थी और लाल पत्थर की दीवार नई की नींव रखी गई थी जो चार वर्षों की समाप्ति पर पूर्ण हो गई थी।" इस कथन की छल वृत्ति भी स्पष्ट है। बदायूँनी के समान ही उसका सम्पूर्ण निहित भाव यह है कि अकबर ने हिन्दू ईंटों की दीवार के स्थान पर पत्थर नींव में भरवा दिए। किसी पुरानी दीवार को क्यों गिराया जाए और नई दीवार की नींव-मात्र रखी जाय? इतना ही नहीं, पाठक को यह भी ध्यान रखना चाहिए कि मोटी नगर-प्राचीर पूरी तरह पत्थर की ही नहीं होती है, पत्थर तो मात्र बाह्य भाग पर ही लगाया होता है। दीवारों का सारांश तो सदैव ईंटों का ही होता है। हम जब इन बातों पर विचार करते हैं तब फरिश्ता की टिप्पणी बहुत बेहूदा प्रतीत होती है। यदि करता ही तो अकबर एक पूर्वकालिक ईंटों की दीवारों में पत्थरों की चिनाई करवाते परन्तु पहले ही ईंटों की बनी हुई दीवार को गिराकर पुनः उसी जगह ईंटों की दीवार में पत्थरों की चिनाई कराने में क्या तुक है? तथ्यतः तो वह उसे गिराता ही क्यों? और यदि एक नई दीवार बनाई ही जाती है तो फरिश्ता यह क्यों कहता है कि एक नई दीवार की नींव रखी गई थी? उसे सीधे शब्दों में यह क्यों नहीं कहना चाहिए कि एक ध्वस्त दीवार के स्थान पर एक नई दीवार बनाई गई थी? इस प्रकार के विश्लेषण से स्पष्ट हो जाता है कि विद्यमान हिन्दू संरचनाओं का निर्माण-श्रेय किसी भी मुस्लिम बादशाह को दे देने की उग्रवादी मुस्लिम तिथिवृत्त लेखन की परम्परा का अंधाधुंध परिपालन ही फरिश्ता भी कर रहा था। उसके द्वारा उल्लेख किए गए सन् १५६४ वर्ष तथा चार वर्ष की अवधि भी अन्य ग्रंथों में दिए गए उसी विषय के वर्णनों से भिन्न है। बदायूँनी का दावा है कि दीवार उठाने में ही पाँच वर्ष लग गए थे। मध्यकालीन मुस्लिम तिथिवृत्त में ऐसी साग्रह बातों से विद्यार्थी को इतना ही समझना चाहिए कि (जज़िया जैसे अन्य करों के अतिरिक्त भी[८]) अकबर ने आगरा स्थित किले की

८. इतिहासकारों के मन में यह भ्रांत धारणा है कि अकबर ने जज़िया-कर माफ कर दिया था। यह काल्पनिक कर-मुक्ति भी मध्यकालीन इतिहास का एक और झूठ है। "अकबर ने जजिया-कर कभी भी समाप्त नहीं किया"—इस तथ्य को पी० एन० ओक ने 'कौन कहता है अकबर महान था' शीर्षक अपनी पुस्तक में कर-सम्बन्धी विशेष अध्याय में प्रमाणित किया है।

मरम्मत कराने के लिए ही कम-से-कम चार या पाँच वर्ष तक अपनी गरीब प्रजा से विशेष कर वसूल किए। किन्तु सभी वर्णन इस तथ्य की ओर इंगित करते हैं कि किला अत्युत्तम अवस्था में था। चूँकि अकबर अपने समस्त संगी-साथियों, विशाल रक्षक सेना, बड़े जन्तु-संग्रह और अरेबियन-नाइट्स की शैली वाली ५००० महिलाओं के हरम के साथ वहाँ पर निवास करता था। इसलिए हम निष्कर्ष निकालते हैं कि अकबर ने अपने ऐशो-आराम के लिए निर्धन जनता को विवश करके उनसे धन-राशि लेकर किले को पुनः रंग-रोगन करवाया और अत्यधिक सजाया-सँवारा था। प्रत्येक मुस्लिम शासक की मृत्यु पर राजगद्दी के लिए होने वाले रक्त-पिपासु संघर्षों का परिणाम यह हुआ कि लालकिले का एक-एक पत्थर हिल जाता था तथा समस्त मुस्लिम शासन-काल में इसका धन-वैभव, उपकरण और जड़ाऊ-जटाऊ सामान भी लूट लिया जाता था। यही एक अत्यावश्यक बात थी जिसके कारण अकबर ने अपने दरबारी चाटुकारों, खुशामदियों के माध्यम से अपने अभिलेखों में यह बात प्रविष्ट करा दी कि उसी ने किला बनवाया था जबकि तथ्य यह है कि उसने जनता के खर्च पर इसमें बहुमूल्य वस्तुओं का भण्डार अनाप-शनाप बना दिया।

अध्याय ७

आधुनिक इतिहासकारों की साक्षी

आगरे के किले को सिकन्दर लोधी, सलीम शाह सूर अथवा अकबर द्वारा बनवाने के बारे में मध्यकालीन मुस्लिम तिथिवृत्तकारों के झूठे दावे की परीक्षा कर लेने के बाद हम अब यह जानने का यत्न करेंगे कि क्या किसी आधुनिक लेखक को भी किले के निर्माण के सम्बन्ध में स्पष्ट, सत्य जानकारी है अथवा नहीं !

विन्सेंट स्मिथ ने अत्यन्त सतर्कतापूर्वक, स्वयं को अलिप्त रखते हुए तथा शंकित हृदय से पर्यवेक्षण किया है—[1] 'यदि बदायूंनी द्वारा लिखित तिथि-पत्रों पर विश्वास किया जा सकता हो तो अकबर ने (बादलगढ़ के सीमा प्रदेश में) सन् १५६१-१५६३ में ही निर्माण प्रारम्भ कर दिया था जब उसने बंगाली (या अकबरी) महल बनवाया। सन् १५६५ में (बादलगढ़ के स्थान पर) गढ़े हुए पत्थरों का एक नया किला बनवाने का आदेश दिया गया था। (अकबर के बेटे और मुगल शासन के उत्तराधिकारी) जहाँगीर के अनुसार निर्माण-कार्य १५-१६ वर्ष तक चलता रहा और इसकी लागत ३५ लाख रुपये आई···अकबर द्वारा बंगाल और गुजरात के सुन्दर नमूनों पर, किले के भीतर ५०० भवनों का निर्माण किया गया कहा जाता है···उनमें से अधिकांश तब विनष्ट हो गए थे जब शाहजहाँ ने अपनी रुचि के अनुसार बनवाने के लिए उन भवनों को नष्ट करा दिया··· अकबर के समय का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण स्मारक जो अब भी विद्यमान है, तथाकथित जहाँगीरी-महल है···किन्तु इसकी निश्चित तिथि का पता नहीं लगाया जा सकता।

---

१. विन्सेंट स्मिथ की पुस्तक—'अकबर, महान मुगल', पृष्ठ ५५।

ऐसा प्रतीत होता है कि इसका निर्माण राज्य के उत्तराधिकारी जहाँगीर के आवास हेतु किया गया था…(पदटीप : जहाँगीर, खण्ड I, पृष्ठ ३ : अबुल-फज़ल कहता है कि कार्य आठ वर्षों में पूरा हो गया था…बदायूँनी के ग्रन्थ में इसी को पाँच वर्ष कहा है)।

उपर्युक्त अवतरण में विन्सेंट स्मिथ स्पष्ट ही बदायूँनी की सत्यता को प्रत्यक्ष रूप में और अबुलफज़ल की सचाई को परोक्ष रूप में सन्देह की दृष्टि से देखता है। स्पष्ट है कि अन्य कोई स्वतन्त्र स्रोत न होने के कारण वह भी बदायूँनी और अबुलफज़ल तथा जहाँगीर द्वारा कही हुई बातों को ही नए संभ्रमित एवं पेचीदा रूप में प्रस्तुत कर देता है। तथ्य तो यह है कि उसने स्वयं को इस निर्णय करने के अयोग्य पाया है कि वास्तव में किला पाँच वर्षों में बना था अथवा १५ वर्षों में। इससे सिद्ध होता है उन सभी लेखकों ने मनगढ़न्त बातें लिखी हैं। एक अन्य जटिलता यह है कि बादलगढ़ के सीमा प्रदेश में सन् १५६१-६३ के मध्य अकबर द्वारा केवल एक ही भवन बंगाली महल—उपनाम अकबरी महल—बनवाया गया कहा जाता है। इसका अर्थ यह है कि बादलगढ़ की बाहरी दीवार को कम-से-कम पूर्वकालिक हिन्दू संरचना स्वीकार किया जाता है किन्तु भ्रमित करने के उद्देश्य से हमें पुनः बताया जाता है कि इसके दो वर्ष बाद ही एक नया किला बनाने के आदेश दिए गए थे। क्या इसका अर्थ यह है कि अकबरी महल के पूर्ण होने से पहले ही बादलगढ़ की दीवार और इसके भीतर की सभी इमारतें तथा स्वयं तथाकथित अकबरी महल भी नष्ट कर दिए गए थे! जाली बातों-टिप्पणियों से ऐसे ही बेहूदे निष्कर्ष निकलते हैं। किन्तु बदायूँनी के साथ न्याय करते हुए हम श्री स्मिथ का भ्रम कुछ सीमा तक दूर करना चाहते हैं। हम पहले ही इस बात का विवेचन कर चुके हैं कि बदायूँनी आगरे की नगर-प्राचीर को किला कहकर सम्बोधित करता है। बादलगढ़ को वह आगरे की गढ़ी के रूप में कहता है—स्पष्टतः स्मिथ 'किला' शब्द के प्रयोग से दिग्भ्रमित हुआ है।

कुछ भी हो, बदायूँनी की गुप्त और अस्पष्ट लिखावटों की विन्सेंट स्मिथ द्वारा की गई व्याख्या के अनुसार भी अकबर ने जो कुछ निर्माण कराया वह बादलगढ़ के भीतर मात्र एक राजमहल था जिसको बंगाली

महल उपनाम अकबरी महल का नाम दिया गया था। क़िन्तु हमारे पास यह प्रमाणित करने के लिए पूरे प्रमाण—साक्ष्य उपलब्ध हैं कि एकमात्र भवन-निर्माण कराने का वह दावा भी सफेद झूठ है। अबुलफज़ल की साक्षी के अनुसार लालकिले में ५०० भवन थे। वे बंगाली और गुजराती शैलियों के थे। अत: उन बंगाली शैली वाले भवनों में से पहले ही विद्यमान एक भवन को बदायूंनी ने अकबर की सृष्टि कहा है। फिर यह स्वीकार किया जाता है कि वह तथाकथित अकबरी महल उपनाम बंगाली महल ध्वंसावशेषों में है। उसका अर्थ यह है कि हम एक परस्पर विरोधी निष्कर्ष पर पहुँच जाते हैं अर्थात् कुछ भी बनाने के स्थान पर, अकबर ने कम-से-कम उन पूर्वकालिक ५०० हिन्दू भवनों में से एक को विनष्ट कर दिया, जो बंगाली शैली में बना हुआ था। अन्यथा उन भवनों में से एक ही ध्वस्त रूप में क्यों हो, वह भी स्वयं अकबर द्वारा ही बनवाया हुआ भवन, जबकि किले का शेष भाग अत्युत्तम प्रकार से सुरक्षित है! इसी प्रकार तो भारतीय इतिहास को पूरी तरह विकृत किया गया और विदेशी शासन के एक हजार वर्षों में उथल-पुथल कर दिया गया। उसके सम्बन्ध में भी स्मिथ स्वीकार करता है कि "इसकी निश्चित तिथि का पता नहीं लगाया जा सकता।" यह तो स्वाभाविक ठीक बात ही है क्योंकि यह अकबर-पूर्व मूलोद्गम की है।

अन्य बेहूदगी यह अंतर्निहित भाव है कि अकबर ने सम्पूर्ण हिन्दू बादलगढ़ को नष्ट किया और ५०० भवनों सहित लालकिले का पुन: निर्माण कर दिया—मज़ाक ही मज़ाक में और मानो जादू से ही—जबकि फिर कुछ दशाब्दियों बाद उसका पोता शाहजहाँ भी मज़ाक ही मज़ाक में उन सभी ५०० भवनों को नष्ट कर बैठा और अपनी ही मर्ज़ी के अनुसार उसने पुन: उन ५०० भवनों का निर्माण कर दिया। क्या यह इतिहास है या अरेबियन नाइट्स? क्या इस बेवकूफी में विश्वास करने वाले व्यक्तियों को इतिहासकारों की संज्ञा दी जानी चाहिए? क्या उन्होंने विचार किया है कि बादशाहों का जीवन-क्रम क्या था? क्या उन लोगों ने कभी इस बात पर गौर किया है कि उन बादशाहों के शासनकाल कितने संकटपूर्ण थे? क्या उन्होंने कभी ध्यान दिया है कि उनकी शासनावधि कितने वर्षों की रही है? क्या उन्होंने कभी इस बात की गणना की है कि ५०० भवनों को गिराने में

और उनके ही स्थान पर अन्य ५०० भवनों की योजना और फिर उनका निर्माण करने में कितना धन और समय लगता है ? क्या वे विश्वास करते हैं कि इस कार्य को मात्र मन-मौजी के रूप में ही किया जा सकता था ? क्या विध्वंस और पुनर्निर्माण का यह अतिविशाल कार्य उन बादशाहों द्वारा सम्पन्न होना सम्भव था जिनके हरमों में ५००० बेगमें-बाँदियाँ बन्द थीं और जो अत्यधिक शराबी और जड़ी-बूटियों के व्यसनी थे ? किन्तु भारतीय इतिहास को तो इसी प्रकार लिखा गया है और सम्पूर्ण विश्व में इसे ऐसे ही पढ़ाया-लिखाया जा रहा है।

एक अन्य छोटी पर्यटक मार्गदर्शिका का कहना है : "इतिहासकारों के अनुसार, यह किला राजा बादलसिंह द्वारा निर्मित एक हिन्दू सुदृढ़ दुर्ग बादलगढ़ के स्थान पर बना है जिसको वर्तमान किले के लिए गिरा दिया था। तथ्य तो यह है कि आज किला जिस रूप में है, वह अनुवर्ती बादशाहों के संयुक्त (कुल) प्रयत्नों का फल है। अकबर द्वारा रूप-रेखांकित और निर्मित इस किले में जहाँगीर और शाहजहाँ द्वारा परिवर्धन किया गया था।"

उपर्युक्त अवतरण भी किले की निर्मिती के सम्बन्ध में परम्परागत भ्रमपूर्ण धारणाओं को विविध रूप में दर्शाता है। हम पहले ही लिख चुके हैं कि बादलसिंह नाम का कोई व्यक्ति नहीं था। इतिहासकारों ने बादलसिंह नामक व्यक्ति के अस्तित्व की कल्पना कर सकने की छूट ली है क्योंकि उनके कानों में किले का नाम आज भी 'बादलगढ़' ही गूँजता है। दूसरी बात यह है कि वे जानते नहीं कि इस किले को किसने और कब बनवाया था, इसलिए वे भ्रमवश इसका निर्माण-श्रेय विभिन्न बादशाहों अथवा बादशाहों के समूहों को देते हैं। इस प्रकार, जबकि अन्य लोगों ने किले को निर्माण कराने का श्रेय सिकन्दर लोधी और सलीम शाह सूर तक को दिया है, तथापि उपर्युक्त अवतरण सम्पूर्ण श्रेय अकबर और उसके पुत्र जहाँगीर तथा पौत्र शाहजहाँ को देता है। उसमें भी लेखक यह नहीं बताता कि कौन-सा भाग और कब, कितनी धन-राशि से और किस प्रयोजन से बनवाया था ! वह यह भी नहीं बताता कि बादलगढ़ कब गिराया गया था और क्यों गिराया

गया था, उसे गिराने की लागत कितनी थी और इसे गिराने में कितना समय लगा था ?

हम पहले ही देख चुके हैं कि किस प्रकार कीन ने लालकिले का २२०० वर्षीय इतिहास प्रस्तुत किया है और उस स्थल पर (अर्थात् सन् १५६५ ई० में) जहाँ कहा जाता है कि अकबर ने किले को गिरवा दिया था, वहीं पर कीन ने परोक्ष रूप में स्वीकार किया है कि चूँकि एक वर्ष बाद ही (अर्थात् सन् १५६६ ई० में) किले की छत के ऊपर से हत्यारे को नीचे फेंक दिया गया था, इसलिए अकबर द्वारा किले का तथाकथित गिराया जाना असम्भव, अस्वीकार्य, अविश्वसनीय और अयुक्तियुक्त है।

श्री एम० ए० हुसैन ने लिखा है : "मुगलों से पूर्व ही आगरे में एक किला विद्यमान था—यह तो स्वतः सिद्ध है…किन्तु निश्चितपूर्वक कहा नहीं जा सकता कि यह वही दुर्ग है जिसे बादलगढ़ पुकारा जाने लगा… परम्परा का आग्रहपूर्वक कथन है कि बादलगढ़ का प्राचीन दुर्ग, जो सम्भवतः पुरानी तोमर या चौहान मोर्चेबंदी थी, अकबर द्वारा रूपपरिवर्तित एवं परिवर्धित किया गया था स्वकीय उपयोग-हेतु। किन्तु इसकी पुष्टि जहाँगीर द्वारा नहीं हो पाती…।"

उपर्युक्त अवतरण प्रदर्शित करता है कि श्री हुसैन किसी अधिकारी व्यक्ति पर विश्वास नहीं कर पाते, और इसीलिए सभी विकल्पों को प्रस्तुत कर रहे हैं। हम प्रश्न कर सकते हैं कि यदि अकबर, जहाँगीर और शाहजहाँ ने कुछ भी निर्माण-कार्य किया होता तो क्या उन्होंने अपने वे दावे उन अनेकों शिलालेखों में न अंकित करवाए होते जो उन्होंने लालकिले में अनेक स्थानों पर लगवाए हैं ? वे कभी इतने शर्मीले अथवा विनम्र थे ? यही तथ्य कि उन्होंने व्यावहारिक रूप में कोई भी ऐसे दावे नहीं किए थे, स्पष्ट दर्शाता है कि उन्होंने बनवाया कुछ भी नहीं अपितु एक पुराने किले पर आधिपत्य ही किया था। तथ्य तो यह है कि भ्रमणीय, दर्शनीय स्थानों पर जिस प्रकार घुमक्कड़ लोग अपने नाम लिख आते हैं उसी प्रकार के सभी असंगत शिलालेखों का एकमात्र निष्कर्ष यह है कि सिकन्दर लोधी, सलीम शाह सूर, अकबर, जहाँगीर और शाहजहाँ प्राचीन हिन्दू लालकिले में घुमक्कड़ ही थे जिनके विजयी होने पर किला उसके अधीन हो गया था और जो हमारे

सम्मुख ईसा-संवत् युग से चला आया है।

एक दूसरी पुस्तक में भी इसी प्रकार का भ्रम प्रदर्शित किया गया है। इसमें लिखा है—[२]"आज आगरा नगर जिस स्थान पर है, वहीं पर एक लघुतर नगरी विद्यमान थी और आज जहाँ पर वर्तमान आगरा किला है, वहीं पर ११वीं शताब्दी से १५वीं शताब्दी तक बादलगढ़ के नाम से प्रसिद्ध एक छोटा स्थानीय किला बना हुआ था। सन् १५०४ में दिल्ली के तत्कालीन अफगान-शासक ने अपनी राजधानी बादलगढ़ ले जाने का निश्चय किया। सन् १५०४ से १७०७ तक भारो-गांगेय मैदानों के मुस्लिम शासकों की राजधानी आगरा रही…।"

उपर्युक्त अवतरण भी उन्हीं सामान्य असंगतियों और परस्पर विरोधी बातों से भरा पड़ा है जो उस लेखक की रचना में समाविष्ट होती हैं जिसे किले के मूलोद्गम के सम्बन्ध से स्पष्ट चिन्तन नहीं है। उसका यह विश्वास करना गलत है कि मुस्लिमों के आधिपत्य से पूर्व आगरा एक 'छोटा' नगर था और इसका एक 'छोटा' किला था। हम पहले ही संकेत कर चुके हैं कि मध्यकालीन मुस्लिम तिथिवृत्तकारों के 'छोटे' इस्लामी दिमागों में पूर्व-कालिक हिन्दू स्थानों को 'छोटा' में ख्याल किया जाता था ताकि वे शेखी बघार सकते कि वे 'छोटे' स्थान उस समय तुरन्त 'बड़े' हो गए जब उनके इस्लामी बादशाहों-शहंशाहों ने वहाँ आधिपत्य किया—स्थिति गुब्बारे के फुलाने—बड़ा कर देने के समान थी। स्वयं 'अग्र' शब्द ही संस्कृत भाषा में 'अग्रणी नगर' का द्योतक है। जैसा उग्रवादी मुस्लिम रचनाओं के आधार पर हमको विश्वास करने को कहा जाता है, यदि हिन्दुओं का अग्रणी नगर 'छोटा' था, तब तो सम्पूर्ण भारत देश को ही अति लघु आकार वाले लिलिपुट देश के समान ही समझना पड़ेगा। उसके बाद मुस्लिम लुटेरों ने इसे 'बड़ा' बनाया। इसे 'छोटा' कहकर पुकारने के बाद भी, लेखक कहता है कि मुस्लिमों ने इसे सन् १५०४ से १७०७ तक अपनी राजधानी बनाया था। वे इसे अपनी राजधानी क्यों और कैसे बनाते जब तक कि इसमें लाल-किला, ताजमहल, तथाकथित ऐत्मादुद्दौला तथा अन्य अनेकों हिन्दू राज-

२. श्री बी० डी० साँवल रचित 'आगरा और इसके स्मारक', पृष्ठ ३ से ७ तक।

महल, भवन और सुरक्षित स्थान न होते ? अनुवर्ती मुस्लिम आधिपत्य-कर्त्ताओं द्वारा इन वस्तुओं को हड़पा गया था और इनका निर्माण सम्बन्धी यश उन्हीं लोगों के साथ जुड़ गया जो उनमें रहने लगे अथवा उन्हीं भवनों में जिनकी मृत्यु हो गई।

श्री एस० एम० लतीफ़ का कथन है—[3]"आगरे के किले का प्रारम्भ सन् १५६६ ई० में किया गया था और इसके तीन वर्ष बाद ही फतहपुर-सीकरी को शाही निवास के लिए चुना गया था। अगले १७ वर्षों तक उस (अकबर) ने अपना दरबार फतहपुर-सीकरी में लगाया…।"

यदि हम उपर्युक्त टिप्पणी पर विश्वास करें, तब तो अकबर अत्यन्त चंचलवृत्ति वाला मूर्ख ही सिद्ध होगा कि आगरे में एक विशाल किले का निर्माण प्रारम्भ करा दिया और उसके पूर्ण होने से पहले ही तीन वर्ष के भीतर ही फतहपुर-सीकरी को अपनी राजधानी बना बैठा। साथ ही सन् १५६६ में आगरे का किला अभी बनाना शेष ही था तो सन् १५५६ में गद्दी पर बैठने के बाद से अगले १० वर्ष तक अकबर ठहरा कहाँ था? और (मुस्लिम वर्णनों के अनुसार) यदि फतहपुर-सीकरी तब तक बनी हुई नहीं थी, तो वह अपनी राजधानी वहाँ किस प्रकार ले जा सकता था? और उन्हीं मुस्लिमों के अनुसार, यदि फतहपुर-सीकरी सन् १५७० से लगभग सन् १५८५ तक निर्माणाधीन ही थी, तो अकबर कहाँ ठहरा हुआ था, और फतहपुर-सीकरी में किस प्रकार रहा? फिर हमें यह बताया जाता है कि फतहपुर सीकरी ज्यों ही निर्मित हो गई, त्यों ही अकबर ने इसका परित्याग कर दिया और (सन् १५८५ में) एक बार फिर आगरे में ही अपनी राजधानी ले आया। इस प्रकार हमें अत्यन्त अयुक्तियुक्त, अनुचित बेहूदगियों की शृंखला में विश्वास करने को कहा जाता है। कहने का अर्थ है कि अकबर ने आगरे को अपनी राजधानी सन् १५५६ से १५६५ या १५६६ तक बनाए रखा और वह स्वयं आगरे के किले में निवास करता रहा। फिर हमें बताया जाता है कि उसने किले को ध्वस्त कर दिया किन्तु इतिहासकारों को जानकारी नहीं है कि उसने ऐसा क्यों किया? किन्तु फिर भी वे हमें यह

३. श्री एस०एम० लतीफ़ कृत : 'आगरा ऐतिहासिक और वर्णनात्मक', पृष्ठ १२४।

नहीं बताते कि जब तक उस किले का पुनर्निर्माण नहीं हो गया, तब तक कहाँ रहता रहा? फिर हमें विश्वास करने को कहा जाता है कि चाहे किला पूर्ण हो गया हो अथवा पूर्ण होते ही, अकबर अपने संगी-साथियों तथा साज-सामान के साथ फतहपुर-सीकरी के लिए चल पड़ा। उसी समय हमको यह विश्वास करने के लिए भी कहा जाता है कि फतहपुर-सीकरी जंगलों से घिरा हुआ क्षेत्र था जब अकबर ने उसे अपनी राजधानी बनाया। हमें इस बात की कोई जानकारी नहीं दी जाती कि वह नए आगरे के किले की सुविधाओं और सुरक्षा को छोड़कर उस जंगल में रहा कैसे? इसके आबाद होने से पूर्व ही इसे फतहपुर-सीकरी कैसे और क्यों कहा जाने लगा? तभी हमें यह विश्वास दिलाया जाता है कि जिस समय सभी दरबारी लोग सारी फौज, हरम, पशु-संग्रह और निजी संगी-साथियों सहित अकबर उस जंगल में निवास कर रहा था, तभी मानो जादू के प्रभाव द्वारा दृढ़ाधार चमकदार फर्श चुपके से उनके पैरों तले आ गए, उनके चारों ओर भव्य दीवारें उठ गईं, उनके सिरों के ऊपर राजोचित छतें तन गईं, और देखो पलक मारते ही, बिना किसी को किसी भी प्रकार की असुविधा उत्पन्न किए ही, सम्पूर्ण सुविस्तृत नगरी ने अत्यन्त सफाई और शान्ति के साथ शाही इस्लामी स्थापना को विश्व की सर्वाधिक सुन्दर इमारतों से घेर लिया। आकर्षक दरबारी महिलाएँ सर्वाधिक प्रिय वेशभूषा में सज-सँवर गईं, दरबारियों को सबसे अधिक तड़क-भड़क वाला गण-वेश प्राप्त हो गया और सभी राज-महल प्रार्थना करते ही चमकदार भूषा-भूषणों, शृंगारों और जड़ाऊ कामों से सज गए। और ज्यों ही फतहपुर-सीकरी नई-नवेली दुलहन जैसी बन-ठन पाई थी कि चंचल अकबर का मन पुनः चलायमान हुआ, फतहपुर-सीकरी से उकता गया, आगरा जाने के लिए व्यग्र हो गया और फतहपुर-सीकरी को भेड़ियों, कुत्तों और शूकरों के हितार्थ परित्यक्त कर दिया तथा स्वयं फिर आगरा लौट आया।

मध्यकालीन मुस्लिम तिथिवृत्तों की असंगत और उग्रवादी गड़बड़ी को बिना किसी सत्यापन किए ही अन्धाधुंध स्वीकार करने पर आधुनिक लेखकों द्वारा व्यसनी और अनुत्तरदायी निर्माण-श्रेय देते हुए आगरा नगर, आगरे के लालकिले, फतहपुर-सीकरी तथा अनेक अन्य नगरों व भवनों के

मूलोद्गम के बारे में लिखी गई सभी रचनाओं का ऐसा ही बेहूदा व्यंग्यार्थ है।

हम अब एक और वर्णन उद्धृत करेंगे। इस समय यह पुस्तक सरकार के अपने पुरातत्व-विभाग का प्रकाशन है। इसमें भी वही भ्रमावस्था पूर्ण-रूप में चरितार्थ हुई है। इसमें कहा गया है—[४]"अकबर की सरकार की राजधानी आगरा थी, न कि दिल्ली। उसने लोधियों का ईंटों का किला गिराया और यमुना के तट पर अपना प्रसिद्ध किला बनवाकर नगर को नया रूप, नया जीवन प्रदान किया···। यह पहला अवसर था कि सँवारा हुआ पत्थर न केवल महलों में अपितु परकोटों में भी प्रयोग में लाया गया था···।"

उपर्युक्त अवतरण में अनेक दोष, असंगतियाँ, विरोधी बातें तथा भ्रान्तियाँ समाविष्ट हैं। पहली बात तो यह है कि यदि अकबर की राजधानी आगरा ही थी तो वह उस समय कहाँ रहता था जब उसने किले को गिराया था? लेखक ने किस आधार पर कहा है कि यह लोधियों का किला है? हमने पहले ही विवेचन कर लिया है और यह पाया है कि यह दावा निराधार है। लेखक को यह विचार किस कारण आया कि एक पुराना किला गिरा कर उसने 'नगर को नया जीवन प्रदान किया?' नगर को इससे क्या अन्तर पड़ता है कि किला नया है अथवा पुराना? यह स्पष्ट प्रदर्शित करता है कि मात्र पुस्तक का कलेवर बढ़ाने के लिए इस सरकारी प्रकाशन में भी असंगत और अनधिकारिक वक्तव्य जोड़ दिये गए हैं। अन्तिम बात यह है कि वे कौन-सी परिस्थितियाँ हैं जिनके कारण लेखक ने कह दिया कि वह पहला अवसर था कि सँवारा हुआ पत्थर न केवल महलों में अपितु परकोटों में भी (भारत) में प्रयोग में लाया गया था···?

क्या एक के बाद एक इतिहासकार ने अपने विपुल पुस्तक-भण्डारों में हमें यह नहीं बताया था कि अकबर से शताब्दियों-पूर्व (यदि उसी कथन को सत्य मान लिया जाय) मुस्लिम-आक्रमणकारियों ने ध्वस्त हिन्दू मन्दिरों, भवनों, किलों और राजमहलों के पत्थरों के टुकड़ों से अपने मकबरों और मस्जिदों

४. पुरातत्वीय अवशेष, स्मारक और संग्रहालय, भाग-I, पृष्ठ ३०६।

को बनाया था ? क्या उसका यह अर्थ नहीं है कि मुस्लिमों द्वारा भारत पर आक्रमण होने से पूर्व ही इस देश में पत्थर के भवन असंख्य मात्रा में थे ? तब उस सब लिखित बात को भूल जाना और यह वक्तव्य दे देना कितना बेहूदा है कि अकबर या उसी की भाँति अन्य किसी भी विदेशी मुस्लिम ने हिन्दुओं को पहली बार प्रदर्शित किया कि लाल पत्थर या संगमरमर के भवन किस प्रकार बनते हैं। भारतीय इतिहास, जो आज पढ़ाया और विश्व-भर के समक्ष प्रस्तुत किया जा रहा है, ऐसी ही बेहूदगियों, परस्पर विरोधी बातों और अयुक्तियुक्त सन्दर्भों से भरा पड़ा है जिसने सत्यापन और जाँच-पड़ताल के अभाव में शैक्षिक जगत् में हंगामा, सत्यानाश प्रस्तुत कर दिया है।

हम पिछले अध्याय में मध्यकालीन मुस्लिम तिथिवृत्तों के कुछ नमूने सर्वेक्षण में देख चुके हैं कि उन्होंने किस प्रकार अपने शाही संरक्षकों के सम्मुख उग्रवादी घुटने टेकने की वृत्ति में लिखी गई अपनी झूठी अस्पष्ट रचनाओं द्वारा विश्व-भर को धोखा दिया है। इस अध्याय में हम देख चुके हैं कि आधुनिक लेखक भी इन रचनाओं के प्रभाव में बह गए हैं और उन्होंने स्वयं को धोखे का शिकार बना लिया है। इतिहासकारों से जिस सतर्कता, सत्यापन और परिस्थिति-निरीक्षण की आशा की जाती है, वे उस कर्तव्य-पालन में विफल रहे हैं।

मूल-प्रवंचना और अनुवर्ती घोर उपेक्षा का संयुक्त प्रभाव अत्यन्त भयावह हुआ है। इसने एक महान् देश और एक देश के महान् जाति के लोगों के इतिहास को एक विकृत मोड़ दे दिया है तथा अपना सम्पूर्ण यश विदेशी आक्रमणकारियों वा लुटेरों को दे दिया है। यह तबाही केवल इतिहास तक ही सीमित नहीं रही अपितु इसने शिल्पकला के क्षेत्र को भी दूषित कर दिया है और शिल्पकलाकार को यह विश्वास दिलाकर धोखे में डाल दिया है कि आज उसको जो भी मध्यकालीन भवन दिखाई देते हैं, वे सभी मुस्लिम मूलोद्गम के हैं तथा जब तक बर्बर अरबों, तुर्कों, ईरानी और मुगलों ने भारत पर आक्रमण नहीं किया था, तब तक भारत के मूल देश-वासियों को पत्थर के भवन-निर्माण की कला आती ही नहीं थी। समस्त विश्व उन आधारभूत भ्रामक और धोखे से भरी साग्रह बातों से बेहूदे निष्कर्ष निकालने में व्यस्त रहा है। उन बेहूदी धारणाओं को प्रत्येक व्यक्ति के हृदय से और प्रत्येक पुस्तक से बाहर निकाल फेंकने में न जाने अभी कितना समय लगेगा।

अध्याय ८

किले का निर्माण-काल अज्ञात है

महत्त्वपूर्ण बात यह है कि यद्यपि आगरे के किले का सन्दर्भ इंगित करने वाले अनेक इतिहास-ग्रन्थ हैं, तथापि उनमें से कोई भी इस बारे में निश्चित नहीं है कि इसकी निर्माण-तिथि क्या थी अथवा इसे किसने बनवाया था? उन सभी में विभिन्न निर्माताओं और विभिन्न तारीखों का उल्लेख है। वे लोग भी, जिनकी धारणा है कि हम आज आगरे में जिस लालकिले को देखते हैं, उसे तीसरी पीढ़ी के मुगल बादशाह अकबर ने ही बनवाया था, यह बताने में असमर्थ हैं कि उसने इसका निर्माण कब प्रारम्भ किया था और यह कार्य पूर्ण कब हुआ था?

वे लोग यह भी नहीं जानते कि अकबर ने केवल बाहरी दीवार बनवाई थी अथवा कुछ भीतरी राजमहल भी बनवाए थे।

हम इस अध्याय में पाठक के सम्मुख उन अस्पष्ट और असत्यापित प्रवंचनाओं को प्रस्तुत करेंगे जिनका उल्लेख मार्गदर्शिकाओं एवं इतिहास ग्रन्थों में आगरे के लालकिले के निर्माण-वर्ष अथवा निर्माण-वर्षों के रूप में किया गया है।

सरकार के पुरातत्व विभाग के एक प्रकाशन में कहा गया है कि [1]"अकबर ने लोधियों का ईंटों का किला गिराया और यमुना के तट पर अपना प्रसिद्ध किला बनवाकर नगर को नया रूप, नया जीवन प्रदान किया...। किला सन् १५६५ में बनाना शुरू हुआ था और सन् १५७४ में पूरा हुआ।"

हम आगे कुछ अवतरणों को उद्धृत करेंगे जिनसे स्पष्ट हो जाएगा कि

---

१. पुरातत्वीय अवशेष, स्मारक और संग्रहालय, भाग २, पृष्ठ ३०७।

अन्य लेखकों ने भिन्न-भिन्न तारीखें बताई हैं। स्पष्ट है कि किसी के भी पास मुस्लिम दरबार के अभिलेखों पर निर्भर रहने योग्य कोई आधार नहीं है।

एक आधुनिक मुस्लिम लेखक द्वारा लिखी गई एक अन्य पुस्तक में कहा है, [2]"सन् १५७१ में अकबर द्वारा निर्मित आधुनिक किला भारत के महानतम वास्तुशिल्पीय कार्यों में से एक है।"

परवर्ती अवतरण की पूर्ववर्ती अवतरण से परस्पर तुलना करने पर हमें ज्ञात होता है कि यद्यपि पहले अवतरण में कम-से-कम यह बताने की सद्वृत्ति तो थी कि किले का निर्माण सन् १५६५ में प्रारम्भ किया गया था और इसे पूरा सन् १५७४ में किया गया था, तथापि पिछले अवतरण में तो केवल सन् १५७१ का ही दुर्बोध रूप में उल्लेख कर दिया गया है। क्या हम इससे यह समझें कि आगरे के अति लम्बे-चौड़े, विशाल लालकिले की नींव जनवरी सन् १५७१ में रखी गई थी और उसके शीर्ष-कलश दिसम्बर, सन् १५७१ में लगा दिए गए थे। अन्य व्याख्या यह हो सकती थी कि जैसा ईश्वर द्वारा विश्व-सृष्टि के सम्बन्ध में बाइबल में दावा किया जाता है, अकबर ने कहा, "एक लालकिले की रचना होनी चाहिए, और देखो। लालकिला तैयार था!" बिलकुल बना-ठना अभिनव!

तीसरा स्पष्टीकरण यह होगा कि सन् १५७१वें वर्ष को बिलकुल बीच की घड़ी में सवेरे-सवेरे अकबर ने आदेश दिया कि किले की नींव रख दी जाय और संध्या समय तक यह निवास-योग्य तैयार हो गया जिसमें अत्यन्त ऐश्वर्यशाली शयनकक्षों में से एक में मौज-से लेटे-लेटे वह एक साम्राज्य का स्वप्न ले सके।

हम कम-से-कम यह समझ पाने में विफल रहे हैं कि लेखक का यह कहने से तात्पर्य क्या है कि "आधुनिक किला सन् १५७१ में अकबर द्वारा निर्मित हुआ था।" निम्नतर स्तर की परीक्षा में भी ऐसी बात लिखने वाले विद्यार्थी को एक बड़ा शून्य ही प्राप्त होगा। क्या कोई किला एक साल में बन सकता है? क्या यह किला किसी गत्ते का बना हुआ था?

---

२. श्री एस० एम० लतीफ़ कृत : 'आगरा—ऐतिहासिक और वर्णनात्मक', पृष्ठ ७४।

तथापि, हम लेखक से इस बारे में पूर्णतः सहमत हैं कि "आगरे का लालकिला भारत के महानतम वास्तुशिल्पीय कार्यों (रचनाओं) में से एक है।" हम उसका ध्यान उसी के द्वारा प्रयुक्त 'भारत' शब्द की ओर आकृष्ट करना चाहते हैं। असावधानी-वश किन्तु रहस्यमय ढंग से वह ठीक ही है। आगरे का लालकिला विशालता और भव्यता, दोनों में ही वास्तुशिल्पीय अत्युत्तम नमूना है। यह विष्टिता में भारतीय अर्थात् हिन्दू है क्योंकि यह ईसा-पूर्व काल में निर्मित हुआ था जब न तो ईसा का और न ही हज़रत मोहम्मद का जन्म हुआ था। इस बात को हम कीन तथा कई अन्य लोगों की साक्षियाँ प्रस्तुत करके सिद्ध कर चुके हैं। अकबर भारतीय नहीं था। वह तो भारत में शासन कर रहा अन्य देशीय व्यक्ति था। वह कभी ऐसे किले की कल्पना भी नहीं कर सकता था जो शैली में पूर्णतः हिन्दू शैली का निर्माण हो। न ही उसके पास किसी किले को बनाने का समय था क्योंकि वह जीवन-पर्यन्त आक्रमण, युद्धों अथवा अपने ही सगे-सम्बन्धियों और दरबारियों व सेनापतियों द्वारा किए गए विद्रोहों को दबाने में ही लगा रहा। अकबर पितृ-वंश में घोरतम नर-संहारक तैमूरलंग का और मातृ-पक्ष में एक अन्य नर-राक्षस चंगेज़ खान का वंशज था। उसकी धमनियों में भारतीय रक्त की एक बूंद भी नहीं थी, विन्सेंट स्मिथ[3] का कहना है : यदि धारणा यह है कि उसने हिन्दू महिलाओं से विवाह किया था, तो स्पष्ट रूप में यह समझ लेना चाहिए कि उन तथाकथित शादियों में से प्रत्येक मामला 'अपहरण'[4] का मामला था। यदि अकबर ने भारत में कुछ निर्माण-कार्य किया होता तो वह निर्माण समरकंद और बोखारा की अनुकृति पर ही होता, न कि वाराणसी और मथुरा की शैलियों पर।

कुछ भी सही, पाठक को उपर्युक्त दो अवतरणों की विषमता ध्यान में रख लेनी चाहिए। एक में कहा गया है कि आगरे का लालकिला सन् १५७४ के मध्य बना था, जबकि दूसरे में उल्लेख है कि यह सन् १५७१ में बना था। स्पष्ट है कि उनको उन वर्षों का उल्लेख करने का कोई अधिकार नहीं

३. विन्सेंट स्मिथ कृत 'अकबर महान मुगल', पृष्ठ ७।
४. श्री पी० एन० ओक कृत 'कौन कहता है कि अकबर महान था?', पृष्ठ १२६-१३९।

है क्योंकि वे सभी बिना किसी आधार के ही हवा में बातें कर रहे हैं।

एक पश्चिमी विद्वान् लेखक हेवेल ने लिखा है—[५]"वर्तमान किला अकबर द्वारा सन् १५६६ में उसी जगह पर प्रारम्भ करवाया गया था जहाँ पर सलीम शाह सूर द्वारा बनवाया गया एक पुराना किला हुआ करता था···।"

यहाँ हमें एक तीसरी ही बेतुकी तारीख अर्थात् सन् १५६६ की उपलब्धि हो जाती है जो पहले कही गई दो तारीखों अर्थात् सन् १५६५-७४ तथा १५७१ से भिन्न है। चूंकि श्री हेवेल ने यह नहीं बताया है कि किले को बनाने में कितने वर्ष लगे अथवा यह पूर्ण कब हुआ था, इसलिए स्वतः सिद्ध है, स्पष्ट है कि उसे इस बारे में विश्वास नहीं था। तब स्पष्ट है कि वह यह विश्वास करने में गलती पर है कि अकबर ने किले का निर्माण सन् १५६६ में प्रारम्भ किया था। किला तो पहले ही विद्यमान था और अकबर स्वयं उसमें निवास कर चुका था। वह कभी इससे बाहर नहीं गया जैसा किले की ऊपरी मंजिल में सन् १५६६ में आधम खान द्वारा आजम खाँ को कत्ल कर देने की घटना से स्पष्ट है। अतः, अकबर द्वारा लालकिले का निर्माण कराने का प्रश्न ही नहीं था। वह उस भवन का निर्माण कैसे करा सकता था जिसमें वह स्वयं निवास कर रहा था! अतः स्पष्ट है कि हेवेल को यह विश्वास करने में गलत जानकारी है कि अकबर ने सन् १५६६ में किले का निर्माण प्रारम्भ करवाया। इसी कारण वह उस वर्ष की सूचना देने के बारे में भी खामोश है जिस वर्ष किले को अकबर द्वारा पूरी तरह निर्माण करा दिया गया था। यद्यपि हमने यहाँ हेवेल की त्रुटि की ओर संकेत कर दिया है तथापि हम उसकी विलक्षण टिप्पणियों के प्रति अपनी ओर से प्रशंसा व्यक्त किए बिना भी नहीं रहेंगे। उदाहरण के लिए, उसी में यह दृष्टि और अभिव्यक्ति थी कि ताजमहल, लालकिला और तथ्यतः सभी मध्यकालीन भवन वास्तुकला की दृष्टि से हिन्दू शैली में हैं। हमें श्री हेवेल पर अफसोस यह होता है कि उन भवनों के हिन्दू स्वामित्व एवं हिन्दू-मूलक होने की बात के अत्यन्त निकट होते हुए भी वह मध्यकालीन मुस्लिम तिथि-

५. श्री ई० बी० हेवेल की पुस्तक, पृष्ठ ४०।

वृत्तकारों के उग्रवादी पाखंडों से ठगी का पात्र हो गया। वह तो मुस्लिम धोखाधड़ी के पर्दे को लगभग फाश कर ही चुका था, तथापि सभी तथाकथित मध्यकालीन मुस्लिम भवनों के हिन्दू स्वामित्व की सत्यता का दर्शन वह जिस-तिस भाँति न कर पाया।

ऊपर लेखकों की लिखी हुई तारीखों में विषमता के अतिरिक्त हम पाठक का ध्यान एक अन्य विसंगति की ओर खींचना चाहते हैं। जबकि पुरातत्व विभाग के प्रकाशन में बताया गया है कि अकबर ने लोधी-वंशी किले के स्थान पर दूसरा किला बनवाया था। श्री हेवेल ने हमें बताया है कि अकबर के किले ने सलीम शाह सूर का स्थान ले लिया था। इन दोनों में से किसका विश्वास किया जाय? इतना ही नहीं, अनेक विभिन्न विरोधी दावों पर भी विचार करना शेष है। व्यक्ति उनमें से किस पर अधिक विश्वास करे! स्पष्टत: बात यह है कि उनका यही विश्वास गलत है कि इस या उस मुस्लिम ने आगरे के लालकिले को बनवाया था। वह किला ईसा-पूर्व युग का हिन्दू किला है जो हमारे अपने युग तक अस्तित्व में चला आ रहा है। वह किला आक्रमणकारी मुस्लिमों को आठ सौ वर्षों तक, जब तब, शरण देता रहा है और उनके बाद भी जीवित है…।

एक अन्य आधुनिक लेखक का आग्रहपूर्वक कहना है :[६] "वर्तमान किला बादशाह अकबर द्वारा लगभग आठ वर्षों (सन् १५६५-१५७३) में बना था।" इससे पूर्व प्रस्तुत किए गए वर्णनों में से एक में निर्माण-कार्य प्रारम्भ करने की एक ही तारीख से सहमत होते हुए भी कहना पड़ता है कि एक में कार्य-पूर्ति का वर्ष सन् १५७३ कहा गया है जबकि दूसरे में इसी को सन् १५७४ बताया गया है। इस प्रकार, इस लेखक को भी पूरी जानकारी नहीं है तथा वह दिग्भ्रमित है।

यही लेखक प्रत्यक्षत: भ्रमित है क्योंकि उसे स्वयं विश्वास नहीं है कि आज जिस २०वीं शताब्दी में आगरे के लालकिले को दर्शक जाकर देखता है, उस किले को कब और किसने बनाया था? लेखक कहता है :[७] "आगरा-दुर्ग-स्टेशन के दाईं ओर आगरे का किला है…। यह बादलगढ़ नामक पुराने

६. श्री एम० ए० हुसैन कृत 'आगरे का किला', पृष्ठ २।
७. श्री एम० ए० हुसैन कृत 'आगरे का किला', पृष्ठ १ से १२ तक।

राजमहल के स्थान पर बना हुआ है। आगरे में एक किले का अस्तित्व मुहम्मद गज़नी (१०९९-१११४) के प्रपौत्र मसूद-III की स्तुति में सलमान द्वारा रचित गीतिकाव्य से प्रत्यक्ष है, किन्तु निश्चयपूर्वक कहा नहीं जा सकता कि यह वही गढ़ था जो बाद में बादलगढ़ के नाम से पुकारा जाने लगा। परम्परा साग्रह घोषित करती है कि बादलगढ़ का पुराना किला, जो संभवत: तोमरों या चौहानों का मुख्य मोर्चा था, अकबर द्वारा अपनी आवश्यकताओं के अनुरूप परिवर्तित और परिवर्धित कर लिया गया था।"

उपर्युक्त अवतरण से प्रत्यक्ष है कि लेखक के समक्ष सभी तथ्य संग्रहीत थे तथापि वह सत्य को आत्मसात करने से वंचित रह गया—क्योंकि वह भी अन्य लोगों की भाँति मध्यकालीन मुस्लिम झूठी कथाओं से ठगा गया था।

उसने ठीक ही लिखा है कि मुहम्मद गज़नी के आक्रमण से पूर्व भी विद्यमान हिन्दू किला ही बाद में बादलगढ़ के नाम से पुकारा जाने लगा था। स्वयं अकबर ने भी अपने उपयोग-हेतु इसमें परिवर्तन-परिवर्धन कर लिए थे। यह भी कोई छोटी-मोटी कृपा नहीं है कि कम-से-कम अकबर के बाद तो किसी मुस्लिम दरबारी चाटुकार ने गंभीरतापूर्वक यह दावा नहीं किया है कि किसी अन्य मुगल ने किले को गिराया और फिर उसी के स्थान पर एक दूसरा किला बनवाया था। किन्तु जहाँगीर और शाहजहाँ का गुणगान करने के इच्छुक कुछ दरबारी चापलूसों ने तो फिर भी अस्पष्ट दावे प्रस्तुत करने का यत्न किया है कि उन दोनों मुगलों ने आगरे के लालकिले के भीतर कुछ भवन बनाए या गिराए और पुन: निर्माण कराए थे।

झूठे दावों, विरोधी दावों और अतिरंजित दावों के इस कुचक्र में सम्पूर्ण ऐतिहासिक विद्वानों को विश्व भर में धोखे में डाला गया है। सीधी तथ्य की बात यह है कि ईसा-पूर्व युग का हिन्दू किला ही वह लालकिला है जिसे हम आज आगरे में दर्शनार्थी बनकर देखते हैं। निर्माण-सम्बन्धी कोई भी प्रलेख नहीं दे सकने पर भी, कोई शिलालेख न होने पर भी अन्य देशीय मुस्लिम शासकों के एक के बाद एक शासक द्वारा उसी स्थान पर पहले के किले को गिराकर दूसरा किला उसी प्रकार की हिन्दू शैली में बनवाने के, बीच-बीच में किए जाने वाले दावे स्पष्ट ही शैक्षिक धोखे हैं। यदि इस साधारण सीधे तथ्य को अनुभव कर लिया जाए, तो समस्त भ्रम को दूर

किया जा सकता है। इतिहासकारों को चाहिए कि वे मुस्लिम दावों को महत्त्व कम दें, उनको एकत्र करें और उनको झूठ भरी, जाली रचनाओं के रूप में ऐतिहासिक संग्रहालयों में जमा कर दें। भारत में अनेक संग्रहालयों में पर्याप्त स्थान हैं जहाँ ऐसे नमूने रखे जा सकते हैं।

अतः हमारा सुझाव है कि इतिहास के अध्ययन का एक विधि-स्कंध हो जिसका कार्य ऐतिहासिक तिथिवृत्त-लेखन में झूठी बातों का पता लगाना, धोखे से भरे ऐतिहासिक प्रलेखों को पृथक् करने, उनके लिखे जाने के प्रकारादि के रहस्य प्रकट करने और उनको विशेष ऐतिहासिक विधि-संग्रहालयों में प्रदर्शित करने का हो।

लेखक का कहना है कि "वर्तमान किला बादशाह अकबर द्वारा लगभग आठ वर्षों में (सन् १५६५-७३) में बना था।" हमें आश्चर्य यह है कि इस लेखक का यह कथन किस प्रकार ठीक है, जबकि (जैसा हम उद्धृत कर चुके हैं) इसी पुस्तक में वह अन्यत्र आप स्वीकार कर चुका है कि उसे ठीक मालूम नहीं है कि कब और कितने शासकों ने आगरे के किले का निर्माण अथवा पुर्ननिर्माण करवाया था। उसने उस परंपरा का भी उल्लेख किया है कि अकबर ने केवल अपने उपयोग हेतु ही हिन्दू बादलगढ़ (किले) का अनुकूलन किया था। यह सब कुछ कह देने के बाद श्री हुसैन को यह कहने का कोई न्यायोचित अधिकार नहीं है कि अकबर ने वर्तमान किले को सन् १५६५ से १५७३ तक लगभग आठ वर्षों में बनवाया था। उसके द्वारा 'लगभग आठ वर्ष' शब्दावली का प्रयोग ही उसकी अटकलबाजी के अपुष्ट आधार का स्पष्ट द्योतक है।

एक अन्य आधुनिक लेखक ब्रिटेनवासी कीन लिखता है :[८] "अकबर सन् १५५८ में पहली बार आगरे आया था और कुछ समय बाद ही बादलगढ़ के पुराने किले में चला गया…अनेक वर्षों तक अकबर विद्रोहियों को कुचलने में सचेष्ट रहा…वह आमतौर पर आगरा आता-जाता रहा…सन् १५६५ में ऐसे ही एक अवसर पर उसने बादलगढ़ ध्वस्त कराना प्रारंभ किया और उसी के स्थान पर आगरे के किले का निर्माण शुरू करा दिया…।"

८. कीन्स हैंड बुक, वही, पृष्ठ १४।

पूर्वोक्त वक्तव्य बहुत जटिलतापूर्ण है। लेखक अपनी रचना के निहितार्थ से अनभिज्ञ, असावधान रहा प्रतीत होता है। चूँकि अकबर किले में पहले ही रह रहा था, इसलिए स्पष्टतः इसमें कोई गलती नहीं है। ऐसा कोई अभिलेख नहीं है जिससे मालूम पड़े कि अकबर ने अपनी असुरक्षा तथा अपने मंत्रियों अथवा दरबारियों को किसी प्रकार की असुविधा की कभी शिकायत की थी। फिर कोई व्यक्ति यह कल्पना क्यों करे कि अकबर ने एक दिन सवेरे उठकर किले को ध्वस्त करने का आदेश दिया था ! हमको तो यह भी नहीं बताया गया कि अकबर के ठहरने का वैकल्पिक प्रबन्ध क्या था ? बादशाह द्वारा किले से अपना सारा साज-सामान बाँधना और किसी अन्य स्थान पर अपना ठिकाना करना तो एक बड़ी घटना रही होगी। एक सामान्य पारिवारिक व्यक्ति के जीवन में भी पते का परिवर्तन, निवास-स्थान की बदली, एक घर से सामान ढोना और दूसरी जगह घर बसाना भी एक महत्त्वपूर्ण घटना होती है। फिर क्या बात है कि इतनी बड़ी घटना का बदायूँनी, निज़ामुद्दीन या अबुलफज़ल जैसे दरबारी चापलूसों की रचनाओं में अथवा अकबर के दरबार में उपस्थित किसी पश्चिमी लेखक की तिथिवृत्त-पुस्तिका में कोई उल्लेख नहीं मिलता जिसमें शहंशाह, उसके दरबारियों और संगी-साथियों को आगरे के लालकिले से अपने समस्त साज-सामान सहित तब तक बाहर अन्यत्र रहना पड़ा था जब तक कि वह किला दुबारा नहीं बन गया था ! यह स्पष्ट प्रदर्शित करता है कि अकबर ने बादलगढ़ को ध्वस्त करने का कभी आदेश नहीं दिया, अपितु उसी में निवास-स्थान बनाए रखना जारी रखा। हमारी पुस्तकों में इस तथ्य के विपरीत बातों का उल्लेख होने का कारण यह है कि आधुनिक इतिहासकारों को इस बात का ज्ञान नहीं था कि मध्य-कालीन मुस्लिम (इस्लामी) दरबारों के इशारों पर लिखी गई उग्रवादी मुस्लिम टिप्पणियों की अत्यंत सतर्कतापूर्वक व्याख्या करनी चाहिए और उसको समझना चाहिए।

हमें एक अन्य सुराग उपरोक्त अवतरण में समाविष्ट अनवरत विद्रोहों से मिलता है। सतत विप्लवों से संत्रस्त अकबर उस किले को कभी गिरा नहीं सकता था जिसने उसे सदैव सुरक्षित शरण-स्थल प्रदान किया हो। बिना किले के तो वह स्वयं अत्यन्त सरलतापूर्वक सुभेद्य हो गया होता।

इतना ही नहीं, कोई भी व्यक्ति किले को ध्वस्त करने, गिराने का कोई वर्णन प्रस्तुत नहीं करता। इस कार्य में कितने वर्ष लगे थे और सारा मलवा कहाँ जमा किया गया था! क्या दीवारें उठाने, खड़ी करने के लिए उसी नींव को काम में लाया गया था अथवा नींव को भी पुन: खोदा गया था। यदि नींव खोदी भी गई थी, तो क्या उन्हीं खाइयों में नई नींव रखी गई थीं अथवा एक नवीन परिरेखा के साथ-साथ नई खाइयाँ खोदी गई थीं? यदि नई परिरेखाएँ खोदी गई थीं, तो क्या पुरानी परिरेखाएँ स्पष्ट रूप में दिखाई देती हैं? यदि कोई नई योजना ही बनाई गई थी, तो वे सहस्रों रेखा-चित्रादि कहाँ हैं जो हमें आगरे में आज दिखाई देने वाले लालकिले जैसे विशाल किले के निर्माण में आवश्यक रहे होंगे? क्या कारण है कि अकबर की दरबारी लिखा-पढ़ी के कागज-पत्रों में एक भी रेखाचित्र विद्यमान नहीं है? इन रेखा-चित्रों के अतिरिक्त, किले को गिराने, पुन: बनवाने, सामग्री खरीदने अथवा रूप-रेखांकनकारों तथा श्रमिकों को धन-राशि भुगतान करने के बारे में भी कोई आदेश उपलब्ध नहीं हैं। इतिहासकारों को चाहिए था कि अकबर द्वारा किसी हिन्दू किले को मन की तरंग में आकर गिरा देने और उसके स्थान पर एक अन्य किला बनवा देने के पाखंड में विश्वास करने के स्थान पर इन जैसे दुर्बोध, जटिल प्रश्नों के समाधानकारक उत्तर खोज निकालते।

कीन ने इस बारे में भी रहस्यमयी चुप्पी साध रखी है कि किले के निर्माण में कुल कितने वर्ष लगे थे और अकबर ने इसे पूरा कब किया था। इन सब विचारों से स्पष्ट हो जाता है कि अन्य लोगों की भाँति ही कीन भी मात्र किंवदन्ती के भरोसे ही आगरे में बने हुए लालकिले पर अकबर के रचनाकार होने के जाल में फँस गया।

कनिंघम प्रतिवेदन के नाम से विख्यात, भारत सरकार के एक पुरातत्वीय सर्वेक्षण प्रतिवेदन में कहा गया है कि [१]"आगरे के किले की स्थापना अकबर द्वारा सन् १५७१ में की गई थी। किन्तु उस किले के भीतर अब ऐसे किसी राजमहल अथवा निवास-स्थान का नामो-निशान शेष नहीं है जिसे अकबर ने सचमुच बनवाया हो अथवा वह उसमें रह चुका हो...।"

---

१. 'भारत का पुरातत्वीय सर्वेक्षण प्रतिवेदन', खंड ४, पृष्ठ ११३, सन् १८७१-७२ वर्ष, दिल्ली।

पूर्वोक्त प्रतिवेदन कई दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण है। भारत सरकार के वक्तव्य के रूप में यह वक्तव्य उसी विभाग के अन्य कर्मचारियों के विचारों का स्पष्ट रूप में खण्डन करता है और कहता है कि आज दर्शक को दिखाई देने वाला लालकिला अकबरकालीन सभी वस्तुओं से अछूता है—वहाँ ऐसी कोई वस्तु नहीं है जिसे अकबर द्वारा बनवाया हुआ या उसके आधिपत्य में रहा हुआ कहा जा सके। इस सम्बन्ध में हम पाठक को केवल यही संकेत कर सकते हैं कि सरकार के अपने पुरातत्व विभाग के कर्मचारीगण तथा प्रतिवेदन भी न केवल दो अपितु अनेक स्वरों में बोलते हैं। इससे पूर्व हम अन्य पुरातत्वीय कर्मचारियों और उनके प्रकाशनों का उल्लेख कर चुके हैं जिनमें आगरे के लालकिले को बनाने का श्रेय अकबर को दिया गया है जबकि कनिंघम का प्रतिवेदन उन दावों को तिरस्कृत कर देता है। कदाचित् भारत सरकार की मंत्रि-परिषद् अपने धर्माधिकारी तन्त्र एवं अपने ही अभिलेखों में व्याप्त इस भ्रमावस्था से पूर्णतः सजग, सावधान नहीं है। इस बात का उल्लेख हम आगरा स्थित लालकिले के उद्गम के सन्दर्भ में कर रहे हैं, किन्तु भारत सरकार के ध्यान में हम इस तथ्य को भी अवश्य लाना चाहते हैं कि मुस्लिमों को निर्माण-श्रेय दी जाने वाली भारत की सभी मध्यकालीन इमारतों की कहानी भी ऐसी ही है। इस समस्त संभ्रम की जाँच-पड़ताल करने के लिए एक अति उच्च-सत्ताधिकारी समिति की नियुक्ति की जानी चाहिए क्योंकि मध्यकालीन स्मारकों के सम्बन्ध में अपनी धारणाओं का आधार, पर्यटक विभाग और शिक्षा मन्त्रालय ने, उन्हीं भ्रम-पूर्ण एवं परस्पर-विरोधी पुरातत्वीय अभिलेखों में से एक या अधिक को ही बना रखा है।

इसी प्रकार विश्व-भर में भारतीय इतिहास का अध्यापन करने वाले शिक्षकों और प्राचार्यों का ध्यान आकृष्ट करने और तथाकथित पुरातत्वीय व पर्यटन-विभागीय प्रकाशनों की पूरी अविश्वसनीयता के प्रति उन्हें सचेत करने की हमारी इच्छा है। इस बात का दिग्दर्शन हम कनिंघम-प्रतिवेदन का सन्दर्भ उल्लेख करके करा चुके हैं कि इसमें उन सभी बातों को रद्द कर दिया गया है जो अन्य निचली श्रेणी के पुरातत्वीय कर्मचारियों द्वारा उनकी पुस्तकों में कही गई हैं जैसे भारत के पुरातत्वीय सर्वेक्षण विभाग द्वारा

प्रकाशित 'पुरातत्वीय अवशेष, स्मारक और संग्रहालय' (भाग १ व २) या श्री एम० ए० हुसैन और एस० एम० लतीफ़ जैसे लोगों की लिखी पुस्तकें।

हम इतना कह लेने के बाद, अब कनिंघम-प्रतिवेदन की ही परीक्षा करेंगे। हम इसे 'कनिंग' (धूर्त) तो नहीं कहेंगे, किन्तु यह निश्चित ही 'हम' तथा सरल तो है ही। यह सीधे-सीधे, विनम्र ढंग से यह कहकर, कि अकबर ने सन् १५७१ में किले की स्थापना की थी, उस विषय की उपेक्षा कर देता है कि अकबर ने किले का निर्माण कब प्रारम्भ किया था और कब उसको पूर्ण कर दिया। यह साधारण प्रश्न ही कनिंघम के प्रतिवेदन की पूर्ण अविश्वसनीयता को चिरस्थायी कर देता है।

प्रतिवेदन में यह भी निहित है कि किले के भीतर अकबर द्वारा बनवाए गए सभी राजमहल भी उसके बेटे जहाँगीर द्वारा अथवा उसके पोते शाह-जहाँ द्वारा गिरा दिये गए थे। हम 'गिरा देने' के इस करतब को ठीक तरह से समझ नहीं पाए।

अशोक-पूर्व युगीन हिन्दू किले को अनिश्चित भाषा में सिकन्दर लोधी द्वारा गिराया गया बताया जाता है, फिर उसके किले को सलीम शाह सूर द्वारा गिरा दिया गया कहा जाता है, उस किले को भी अकबर द्वारा ध्वस्त कर दिया गया घोषित किया जाता है और फिर, किले के भीतर के भवन अकबर के पुत्र या पौत्र अथवा दोनों द्वारा विनष्ट कर दिए कहे जाते हैं।

और फिर भी कोई उनके तारतम्य के बारे में भी निश्चित नहीं है। एक सन्देह यह है कि प्राचीन हिन्दू किला अभी भी ज्यों का त्यों विद्यमान है। अन्य कल्पना यह है कि कदाचित् सिकन्दर लोधी और सलीम शाह सूर ने कोई किला बनवाया ही नहीं, तथा अकबर ही वह व्यक्ति था जिसने प्राचीन हिन्दू किला नष्ट करा दिया, जो अभी भी चला आ रहा है; और भी ऐसी ही कई ऊल-जलूल बातें हैं।

इसी प्रकार की सभी अटकलें अभी तक प्रचलित हैं यद्यपि मुस्लिम तिथिवृत्तों का ढेर, मुस्लिम शिलालेखों का प्राचुर्य और मुस्लिम दरबार के अभिलेखों का बाहुल्य आज भी उपलब्ध है। क्या ऐतिहासिक विद्वत्ता की प्रतिभालब्धि इतनी पतित हो गई है कि वह यह भी मालूम नहीं कर सकती व निष्कर्ष निकाल सकती है कि मात्र कुछ हिन्दू अलंकरणों को छुपाने के

लिए किसी मुस्लिम शासक ने लालकिले में तो पलस्तर भी नहीं कराया था। क्या लोगों को अपनी आँखों से दिखाई नहीं देता कि अनेकों धर्मान्ध मुस्लिम बादशाहों द्वारा बारंबार किले को गिरा देने और फिर-फिर बनवा देने की अफवाहों के बावजूद लालकिले के पृथक्-पृथक् सभी भागों की सम्पूर्ण साज-सजावट एवं योजना पूर्णतः हिन्दू शैली की है। क्या व्यक्ति को जरा ठहर कर इस तथ्य पर विचार नहीं करना चाहिए कि लालकिले से सम्बन्धित अमरसिंह दरवाजा, शीशमहल, हाथी पोल दरवाज़ा और त्रिपोलिया नाम पूर्णतः हिन्दू हैं। कुछ मस्जिदों के अतिरिक्त किले के भीतर इस्लामी और क्या वस्तु है? उनके अष्टकोणीय नमूनों से भी यही निष्कर्ष निकलता है कि उनकी दीवारों के भीतर अथवा उनके फर्शों के नीचे किले के पूर्वकालिक हिन्दू राजवंशी स्वामियों के राजकुलों के हिन्दू इष्टदेव दबे-गड़े पड़े हैं।

स्वयं को यह निश्चय हो जाने पर कि आगरे में आज हमें दिखाई देने वाले लालकिले के वास्तविक निर्माता के बारे में किसी भी आधुनिक लेखक को तनिक भी जानकारी नहीं है, आइए हम अब देखें कि मध्यकालीन यूरोपीय और मुस्लिम लेखकों की वास्तविक टिप्पणियाँ क्या हैं। वैसे तो यह भी निस्सार बात ही है क्योंकि यदि उन्होंने कोई निश्चित बात लिख दी होती, तो यह भी निश्चित है कि आधुनिक लेखक-गण इतने भ्रमित न हुए होते और न ही इतने मतभेद उनके विचारों में मिल पाते। फिर भी सभी उपलब्ध आधार-सामग्री की पूर्ण जानकारी पाठक को देने के विचार से ही हम समस्त मध्यकालीन स्रोतों को प्रस्तुत करेंगे।

एक अंग्रेज आदमी अकबर के शासनकाल में आगरे की यात्रा पर आया था। उसका नाम है राल्फ फिच। उसने अपने स्मृति ग्रन्थ लिखे हैं। उसने अपनी भाषा की पुरानी शैली में लिखा है: [१०]"यहाँ से हम अनेक नदियों को पार करते हुए आगरा गए—अपने जीवन की रक्षा के लिए हमें अनेक बार उनको पार करना पड़ा। आगरा एक बहुत बड़ा शहर है, घनी बस्तियाँ हैं, पत्थर का बना है और बड़ी-बड़ी सड़कें हैं। इसमें एक बढ़िया और मजबूत महल था जिसके पास बहुत बढ़िया खाई थी।"

---

१०. राल्फ फिच, भारत को इंग्लैंड का अग्रगामी व्यक्ति, पृ० ९७।

राल्फ फिच सन् १५८३ में आगरे में था—अर्थात् अकबर को राजगद्दी प्राप्त हुए केवल २७ वर्ष ही हुए थे। अकबर गद्दी पर उस समय आसीन हुआ था जब वह मात्र १३ वर्ष का ही था। क्या १३ वर्षीय अकबर गद्दी पर बैठने के २७ वर्षों की अल्पावधि में ही आगरा नगर या मात्र इसकी पत्थर की प्राचीर, साथ ही एक पूरा किला जिसकी विशाल दुहरी दीवार और एक खाई तथा इसीके अन्दर ५०० विभिन्न आवास—और फतहपुरसीकरी व नगरचैन नाम की दो अन्य नगरियों का निर्माण कर सकता था ? और यदि उसने ऐसा किया ही होता, तो क्या फिच यह नहीं कह सकता था कि आगरा बिल्कुल नया-नया बना हुआ नगर था अथवा कम-से-कम इस शहर की दीवार और इसका दुर्ग तो बिल्कुल नये ही थे अथवा नव-निर्माण के मलबे के चिह्न जैसी वस्तुएँ यहाँ-वहाँ दिखाई दिए थे ! इसके स्थान पर वह आगरे, उसके दुर्ग और जनसंख्या को स्मरणातीत मूलोद्‌गम का बताता है।

एक मध्यकालीन मुस्लिम इतिहास लेखक फरिश्ता का कहना है कि :
[11]"सन् १५६४ ईस्वी में आगरा-दुर्ग की पुरानी दीवार, जो ईंटों से बनी हुई थी, गिरा दी गई थी और लाल पत्थर की नई दीवार की नींव रखी गई थी जो चार वर्ष के बाद पूरी हो गई थी।"

उपर्युक्त कथन इतना अस्पष्ट है कि इससे पता ही नहीं चल पाता कि दीवार का संदर्भ शहर से है अथवा किले से। कुछ भी हो, इसका सम्बन्ध केवल एक-से है, दोनों से नहीं। चूँकि उसने आगरा से सन्दर्भ किया है, इसलिए हम मान लेते हैं कि उसका मन्तव्य नगर-प्राचीर से है। नगरप्राचीर के रूप में भी यह कहना बेहूदा बात है कि ईंटों की पुरानी दीवार गिरा दी गई थी और पत्थरों की एक नई दीवार बनाई गई थी क्योंकि यह सर्वविदित है कि विशाल नगर-प्राचीरें सदैव ईंटों की ही बनाई जाती हैं। पत्थर के बड़े-बड़े टुकड़े तो ईंटों की ऊपरी सतहों पर ही लगाए जाते हैं। साथ ही, यहाँ यह भी देखने की बात है कि तिथि-वृत्तकार फरिश्ता भी एक नई दीवार की 'नींव' का सन्दर्भ अत्यन्त अस्पष्टता, चतुराई एवं अप्रकट रूप

११. मोहम्मद कासिम फरिश्ता विरचित : "भारत में मुस्लिम प्रभुत्व का अभ्युदय—सन् १६१२ तक", पृष्ठ १३२।

में प्रस्तुत करता है। वह यह नहीं कहता कि एक नई दीवार उठाई गई थी। यहाँ यह भी ध्यान देने की बात है कि उसके द्वारा सन्दर्भित सन् १५६४ से चार वर्षीय अवधि का अर्थ है कि आगरे की ईंटों वाली दीवार को गिराने और उसके स्थान पर पत्थर की नई दीवार खड़ी कर देने का कार्य (यदि हुआ तो) सन् १५६४-६७ की अवधि में हुआ था। हमें आश्चर्य इस बात का है कि अपने सभी दरवाजों सहित अत्यन्त ऊँची और विशाल नगर प्राचीर को गिराने और उसके स्थान पर दूसरी नई दीवार को खड़ी कर देने का अत्यन्त गुरुतर कार्य मात्र चार वर्ष की अत्यन्त अल्पावधि में ही किया जा सका (यद्यपि यह भी एक बड़ा भेद है कि फरिश्ता ने किसी दरवाज़े आदि का उल्लेख न करके, केवल दीवार का ही वर्णन किया है)।

यह भी ध्यान रखना चाहिए कि सन् १५६४-६७ की यह अवधि अन्य पूर्वोक्त इतिहासकारों द्वारा उल्लेख की गई तारीखों अर्थात् १५६५-७३, १५६५-७४, १५६६-७४ और १५७१ से पृथक् ही है। इसका अर्थ यह हुआ कि उन इतिहास लेखकों में से प्रत्येक लेखक ने पीढ़ियों को धोखा दिया है अथवा इतिहासकारों के रूप में तथ्यों का निरूपण करने अथवा पाठकों, इतिहास के विद्यार्थियों तथा ऐतिहासिक-स्थानों के सैलानियों के ध्यान में इन विसंगतियों को लाने के पुण्य-कर्तव्य का निर्वाह नहीं किया है।

अकबर के दरबारी-तिथिवृत्तकार बदायूँनी के अनुसार : [१२]"इस हिज़री सन् ९७१ वर्ष में, आगरे के किले की निर्माता-परियोजना का विचार किया गया था और जो दुर्ग अभी तक ईंट का बना हुआ था, उसको उस (अकबर) ने कँटे-छँटे पत्थरों का बनाया...पाँच वर्षों की अवधि में यह पूर्ण हो गया....।" उसके कहने का भाव यह है कि सन् १५६४ में प्रारम्भ की गई परियोजना सन् १५६८ या १५६९ में पूर्ण हो गई। यह तारीख अन्य इतिहासकारों द्वारा उद्धृत तारीखों से मेल नहीं खाती।

साथ ही, इसमें भी ईंटों की दीवारों में पत्थर जड़ देने की बात का उल्लेख है। इसमें किले के भीतर किसी भी महल को निर्माण करने की बात नहीं कही गई है। हमारे मत में तो ईंटों की दीवार में पत्थर जड़ने वाला

---

१२. मंतखाबूत तवारीख़ (बदायूँनी विरचित), खण्ड २, पृष्ठ ७४।

अकबर का यह दावा भी झूठा, धोखे-से भरा, जाली दावा है। हम इससे जो कुछ निष्कर्ष निकाल सकते हैं, वह मात्र यह है कि आगरे के किले में छोटी-मोटी मरम्मत के नाम पर (किन्तु वास्तव में उसे मुस्लिम आवासीय उपयोग-हेतु बनाने के लिए) जनता के ऊपर कुछ सूदखोरा कर लगाया गया था, क्योंकि प्राचीन काल में हिन्दू लोग अपने किलों को, अवश्यम्भावी रूप में, ऐसी दीवारों वाले बनाते थे जिन पर बाहर पत्थरों की चिनाई होती थी या पत्थर-ही-पत्थर के बड़े-बड़े टुकड़े—खण्ड लगे रहते थे। मात्र ईंटों से बने किले तो कदाचित् ही कभी रहे हों।

कुछ अन्य मध्यकालीन मुस्लिम तिथिवृत्तों में किये गए दावों के बारे में श्री एम० ए० हुसैन की पुस्तक के पदटीप में कहा गया है : [१३]"सन् १५६७ से १५६७ तक की विभिन्न तारीखों को ही परम्परागत रूप में किले की संरचना की तारीखें कहा जाता है। तुज़के-जहाँगीरी (फारसी भाष्य, पृष्ठ २) में इस संरचना काल की अवधि १५ या १६ वर्ष कही गई है, किन्तु बादशाहा-नामा (फारसी भाष्य, खण्ड-१, पृष्ठ १५४) और आईने-अकबरी (ब्लोयमन का अनुवाद, खण्ड-१, पृष्ठ ३८०) कदाचित् सही हैं कि यह आठ वर्षों (सन् १५६५ से १५७३) में बना था।"

चूँकि जहाँगीर खानदानी शाहजादा था जो अकबर के बाद गद्दी पर बादशाह के रूप में बैठा, इसलिए उसका तिथिवृत्त—जहाँगीरनामा—अधिक विश्वसनीय होना चाहिए था। वह इसकी निर्माणावधि १५ या १६ वर्ष कहता है। यह स्वयं अस्थिर मालूम पड़ती है। वह '१५ या १६' क्यों कहे? वह निश्चित अवधि क्यों न कहे? हम, जैसाकि पहले ही कह चुके हैं और श्री हुसैन द्वारा जहाँगीरनामा पर अविश्वास प्रगट करने से निहितार्थ स्पष्ट है, यह तिथिवृत्त झूठों का पुलिन्दा है। हम चाहते हैं कि विशेषकर जहाँगीरनामा का जब भी कभी कोई अवलोकन करे, उसका सन्दर्भ उल्लेख करे, उस समय प्रत्येक व्यक्ति को, प्रत्येक इतिहास लेखक को यह तथ्य अपने समक्ष रखना चाहिए। कुछ भी हो, जहाँगीरनामा के अनुसार, आगरे का लालकिला अकबर द्वारा सन् १५६५ से १५८० के बीच, मोटे तौर पर,

---

१३. श्री एम० ए० हुसैन कृत 'आगरे का किला', पृष्ठ २।

बनवाया गया था।

किन्तु अकबर के दरबार के एक अन्य इतिहासकार अर्थात् अबुलफ़ज़ल द्वारा, जो अनेकों प्रिय वर्णनों के अनुसार 'सर्वश्रेष्ठ देवदूत, इतिहासकार-शिरोमणि एवं अकबर के दरबार का सर्वोत्तम प्रतिभावान जवाहर' और न जाने क्या-क्या था, उल्लेख किया गया है कि यही अवधि सन् १५६५ से १५७३ तक—मात्र आठ वर्ष की थी। यद्यपि उसकी गगनचुम्बी प्रशंसा की गई है, तथापि उसी का उद्धरण प्रस्तुत करते समय श्री हुसैन ने अत्यन्त सावधानीपूर्वक कहा है कि अबुलफ़ज़ल 'कदाचित् सही है।' श्री हुसैन को तो यह तथ्य ज्ञात होना ही चाहिए क्योंकि वे भारत सरकार के पुरातत्व विभाग में सहायक अधीक्षक रह चुके हैं। वे अबुलफ़ज़ल की सत्यता पर सन्देह करने में पूर्णत: सही हैं क्योंकि सभी विवेकी, निष्पक्ष इतिहासकारों और स्वयं राजगद्दी के उत्तराधिकारी शाहजादा सलीम ने (जो बाद में जहाँगीर बादशाह कहलाया) अबुलफ़ज़ल को 'निर्लज्ज चापलूस' का नाम दिया है। मध्यकालीन इतिहास और मध्यकालीन मुस्लिम तिथिवृत्तकारों द्वारा लिखित वर्णनों के बीच विश्वास का अत्यन्त अभाव रिक्ति है। उन तिथिवृत्तकारों में से अधिकांश दरबारी लोग, शाहजादे, शाहज़ादियाँ और स्वयं शासकगण ही थे।

सम्पूर्ण आधार-सामग्री का विश्लेषण करने पर हमें ज्ञात होता है कि एक वर्ग के अनुसार आगरे का लालकिला अकबर द्वारा सन् १५७१ ई० में निर्मित हुआ था। दूसरे वर्ग के अनुसार, जिसमें बदायूँनी प्रमुख था, यह किला सन् १५६४ से १५६८ तक पाँच वर्षों में बना था; तीसरा मत रखने वाले इतिहासकारों के अनुसार यह किला अकबर ने सन् १५६५ या १५६६ से १५७३ या १५७४ ई० तक आठ वर्षों में बनवाया था। चौथा वर्ग कहता है कि किला लगभग सन् १५६५ से १५८० के बीच १५ वर्षों में बना था।

यदि सचमुच अकबर ने किला बनवाया होता तो ऐसी विसंगति उपस्थित न हो पाती। चूँकि अकबर ने वास्तव में कोई दुर्ग नहीं बनवाया और दरबारी चाटुकारों-लेखकों, मुंशियों को आदेश थे कि वे कुछ झूठी यश-गाथाएँ लिखा करें, इसलिए ऐसी विसंगति समाविष्ट हो गई है।

मध्यकालीन दरबारी टिप्पणियों का मात्र गप्पें, मनगढ़न्त और झूठी

बातें होना इस बात से स्वतः सिद्ध है कि इनमें इस तथ्य का भी उल्लेख नहीं है कि इस किले को किसने बनयाया था। कुछ में सुझाव प्रस्तुत किया गया है कि आगरा नगर की ही स्थापना की गई थी, कुछ टिप्पणियाँ कहती हैं कि इसकी प्राचीरों मात्र की संरचना अकबर द्वारा की गई थी, कुछ का कथन है कि आगरा नगर नहीं, आगरे के किले का निर्माण अकबर द्वारा किया गया था, कुछ का कहना है कि किले के भवन नहीं, मात्र किले की दीवारें बनाई गई थीं, कुछ कहते हैं कि किले के अन्दर अकबर ने ५०० भवनों का निर्माण कराया था किन्तु अब उनमें से एक भी शेष नहीं है, कुछ कहते हैं कि केवल किले की दीवार बनवाई गई थी, कुछ कहते हैं कि दीवार भी नहीं बनवाई थी अपितु ईंटों की दीवार पर पत्थरों की चिनाई अन्तिम रूप में की गई थी और कुछ का दावा है कि अकबर ने किला और आगरा नगर, दोनों का ही निर्माण करवाया था।

आगरे के किले अथवा नगर को निर्माण कराने का श्रेय अकबर को देने वाले व्यक्तियों ने भी प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप में अपनी रचनाओं में स्वीकार किया है कि आगरा एक प्राचीन समृद्ध हिन्दू नगर था जिसके चारों ओर एक विशाल दीवार थी और उसी में एक अति सुदृढ़ विशाल किला था अर्थात् नगर-प्राचीर में लालकिला ही विद्यमान था।

अतः, हम पाठकों, इतिहास के विद्यार्थियों तथा आगरा की यात्रा करने वाले दर्शनार्थियों से यही अनुरोध करना चाहते हैं कि वे आधुनिक पर्यटक-साहित्य अथवा मध्यकालीन मुस्लिम तिथिवृत्तों की झूठी बातों में तनिक भी विश्वास न करें। आज वे लोग आगरे में जो भी ऐतिहासिक स्मारक देखते हैं, जैसे तथाकथित जामा मस्जिद, तथाकथित ऐतमाद्दुदौला, किला, ताजमहल, नगर-प्राचीर और बहुत सारे अन्य भवनादि, वे सभी विजित हिन्दू संरचनाएँ हैं जिनका असत्य, झूठा निर्माण-श्रेय उत्तरकालीन मुस्लिम आक्रमणकारियों और आगरे पर आधिपत्य करने वालों को दे दिया गया है।

अध्याय ६

किले का भ्रमण

हम आगरे के लालकिले के हिन्दू मूलोद्‌गम से सम्बन्धित अन्य उपलब्ध साक्ष्यों का विवेचन करने से पूर्व इस अध्याय में पाठक को किले की सम्पूर्ण योजना की जानकारी देना तथा इसके विभिन्न, विशिष्ट स्थलों एवं अन्य ऐतिहासिक स्मृति-चिह्नों से परिचित कराने का विचार रखते हैं।

किले की आकृति एक अनियमित त्रिकोण की है, जिसका आधार पूर्व-दिशा में नदी के तट के साथ-साथ फैला हुआ है। इसका शीर्ष भाग दिल्ली दरवाज़ा उपनाम हाथी पोल (अर्थात् हाथी दरवाज़ा) पश्चिम में है। यह स्थान आगरे के किले के रेलवे स्टेशन के ठीक सामने है। यही वह शाही दरवाजा था जिसमें से राजकीय अवसरों पर हिन्दू राजा और महाराजागण लालकिले में प्रवेश करते थे और यहीं से वापस आते थे।

नदी-तट पर सीमा के रूप में किले का आधार लम्बाई में लगभग आधा मील है। नदी प्राकृतिक सुरक्षा-खाई का काम एक दिशा में देती ही थी। अन्य दिशाओं में विशेष रूप से खोदकर बनाई गई खाई यमुना नदी के जल से भरी रहती थी। चूँकि किले के मुस्लिम आधिपत्यकर्त्ताओं को जल-प्रवाहिकाओं के अनुरक्षण की पूरी जानकारी नहीं थी और अपने विद्रोहों से भरे शासनकाल में किसी को भी उन प्रवाहिकाओं को बनाए रखने की सुध नहीं रही थी, इसलिए वह खाई प्रायः खाली अथवा कुछ अंश तक ही भरी रहती थी।

अन्य दोनों भुजाओं की ओर किला कुछ मुड़ा हुआ है। किले की दुहरी दीवार है जो बीच-बीच में बने हुए गरगजों से और भी पुष्ट सुदृढ़ हो गई है। किले की परिरेखा लगभग डेढ़ मील की है।

किले का एक बहुत बड़ा भाग सेना के पास है। यह उपनिवेशवादी अंग्रेजी-नियमों का एक खेदजनक स्मृति अंश है जो भारतीय जनता की सरकार द्वारा भी ज्यों का त्यों, अनावश्यक रूप में दुहराया जा रहा है। दिल्ली और झाँसी जैसे स्थानों पर बने हुए अन्य किलों में भी इसी प्रकार सेना के आधिपत्य के कारण स्वतन्त्र भारत के नागरिकों को अपनी देश-भक्ति, शक्ति, कला और गौरवशाली परम्परा के प्राचीन किलों का निकटता से अध्ययन करने और सूक्ष्म-विवेचन करने से वंचित रहना पड़ता है। यह स्थिति जितनी जल्दी समाप्त हो जाय, उतना ही अच्छा है। वायुयानों के इस युग में किलों पर सशस्त्र सेनाओं का अनावश्यक दखल नहीं होना चाहिए। इन विशाल और अतिश्रेष्ठ भवनों में जाने का जन-सामान्य को पूर्ण अधिकार होना ही चाहिए। इन किलों को तो राष्ट्रीय संग्रहालयों, प्रदर्शनियों तथा अन्य ऐसे ही प्रयोजनों के लिए उपयोग में लाना चाहिए ताकि बहुमूल्य स्थान व्यर्थ न जाए, समस्त परिसर स्वत: स्वच्छ रखा जाएगा और जनता उसके सभी भागों तक निर्बाध पहुँच सकेगी।

इसी प्रकार पुरातत्व विभाग को भी जनता के प्रति तनिक और उत्तर-दायित्वपूर्वक अपना कर्तव्य निर्वाह करना चाहिए। आजकल किले की अँधेरी कोठरियाँ, तलघर, भू-गर्भस्थ भाग, नदी तट तक जाने वाली सीढ़ियाँ, सुरंगें आदि व्यावहारिक रूप में बन्द, निषिद्ध एवं उपेक्षित हैं। इनके सम्बन्ध में एक विचित्र रहस्यमयता एवं उपेक्षा अपनाई जा रही है। सामान्य जनता को उनमें प्रवेश करने के लिए उसी प्रकार विकर्षित किया जा रहा है जिस प्रकार कायर माता-पिता अपने जिज्ञासु बच्चों को अँधेरे कमरे में जाने से मना करते रहते हैं। राष्ट्रीय स्तर पर ऐसी कार्यवाही सम्पूर्ण जनता को शक्ति-हीन, बुजदिल बना देती है। यह कार्यवाही उनके उत्साह का नाश करती है, उत्साही भावना का हनन करती है, जिज्ञासा को शान्त कर देती है और उनकी प्रेरणा का गला घोंट देती है। पुरातत्व विभाग का कर्तव्य है कि वह सभी ऐतिहासिक स्थलों पर सार्वजनिक ऐतिहासिक अनुसन्धान शालाएँ प्रारम्भ करे और उनके सदस्यों को ऐसे अँधेरे स्थानों की खोज करने, उनको स्वच्छ रखने, बिजली की व्यवस्था करने एवं अवरुद्ध मार्गों को खुला रखने तथा प्राचीन शिल्पकला और कला के उन विशाल, अत्युत्तम आदर्श रूपों के

इंजीनियरी तथा ऐतिहासिक पक्षों में अनुसन्धान करने के लिए प्रेरित करे, उनको प्रोत्साहित करे !

छः मील दूर, सिकन्दरा-स्थित तथाकथित अकबर के मकबरे के तलघर को भी जनता की आँखों से ओझल किया हुआ है, बन्द कर रखा है। यह तथाकथित मकबरा भी एक हिन्दू राजमहल है जिसमें सम्भवतः कुल सात मंज़िलें हैं। उन अँधेरे तथापि विशाल तलघरीय कमरों और मार्गों के कुछ प्रवेशद्वार तो पूर्वकालिक असली मुगलों द्वारा बन्द कर दिए गए थे, किन्तु शेष प्रवेशद्वारों को अभी हाल में ही उन मुगलों के उत्तराधिकारी अभिनव-मुगलों द्वारा बन्द करा दिया गया था। परिणाम यह है कि सम्पूर्ण तलघर जनता की दृष्टि से छिप गया है। इसके भू-तलीय बरामदे पर एक अतिरिक्त कूप-सदृश प्रवेशद्वार कुछ समय पूर्व तक खुला हुआ ही था। उसको भी अब पत्थर के भारी टुकड़े से सीलबन्द कर दिया गया है। भावी संततियों को तो शायद यह भी जानकारी नहीं हो पाएगी कि वही खुला मार्ग तलघर तक जाता था। यह तो प्रेरणा और साहस की भावना को समाप्त करने तथा नागरिकों को निःशक्त कार्यों में बदल देने का अति सुनिश्चित ढंग है। हमें विस्मय, आश्चर्य इस बात का होता है कि हमारे शासक-वर्ग न जाने कब अधिक शूर-वीर, अधिक देशभक्त, अधिक कल्पनाशील और अपनी महान ऐतिहासिक परम्परा के प्रति अधिक गौरव की अनुभूति करेंगे। यदि हमारे पूर्वज इतने बहादुर, इतने महान् और इतने योग्य हो सकते थे कि इतने भव्य, विशाल, शानदार और महान राजमहल, किले, राजभवन, भवन और मन्दिरों की संरचना कर सकें, तो क्या हम इतने अशक्त गोबरगणेश हो गए हैं कि हमको उन रहस्यमय अँधेरे विश्राम-स्थलों का अबाधित दर्शन-भ्रमण भी सुलभ न हो पाए ताकि हम भूतकाल की महान् उपब्धियों को देखकर न केवल अपनी आँखों को तृप्त कर सकें अपितु पुरातत्व, इतिहास और इंजीनियरी की दृष्टि से व्यावहारिक अध्ययन कर सकें। इस प्रकार, उन अँधेरे भू-गर्भीय भागों तथा मार्गों को जनता के लिए खुला रखना राष्ट्रीय कर्तव्य है। इस कर्तव्य का अनुपालन न करना राष्ट्र की उत्तरोत्तर क्षति है, प्रतिभा और मनोविज्ञान, दोनों ही दृष्टि से।

किले के चार प्रवेशद्वार हैं। जिस अमरसिंह दरवाजे से आजकल किले

में प्रवेश मिल पाता है—वह भी कुछ प्रवेश-शुल्क के भुगतान के बाद—वह दक्षिण की ओर है। होथी पोल उपनाम दिल्ली दरवाज़ा पश्चिम की ओर है। अन्य दो दरवाज़े जल-द्वार, जो यमुना-तट तक जाता है और उत्तर-पूर्व द्वार कहलाते हैं। ये दोनों अब बन्द हैं। दिल्ली-दरवाज़ा केवल सशस्त्र सेनाओं द्वारा ही उपयोग में लाया जाता है और निर्धन जनता को, जो प्रभुता-सम्पन्न राष्ट्र की संरक्षक है तथा लोकतन्त्र की वास्तविक किन्तु नाममात्र की शासक है, मात्र एक ही दरवाज़े से निरुद्देश्य भ्रमण-हेतु किले में प्रवेश करने दिया जाता है और उसीसे वापस जाने दिया जाता है मानो सब अकल्पनीय, असहनशील, निस्तेज और अ-शूरवीर शासनतन्त्र के अधीन विनम्रतापूर्वक यातनाएँ भोग रहे हों। जल-द्वार नदी-मुख के केन्द्र के पास है। इससे अष्टकोणीय स्तम्भ के प्रांगण में पहुँच जाते हैं, जिसे मुत्थम्मन, मुसम्मन या सम्मन बुर्ज के विभिन्न नामों से पुकारते हैं। यह हिन्दू घराने का सर्वाधिक निजी क्षेत्र था क्योंकि इससे यमुना नदी का अति रमणीय दृश्य आँखों के सम्मुख आ जाता था जिसकी कामना अशोक, कनिष्कादि हिन्दू सम्राटों से लेकर राजाओं की पीढ़ियाँ करती आई थीं, वे उसमें—पुण्य सलिला यमुना में स्नान करते थे और अपनी वत्सला प्रजा के साथ पुण्य घाटों पर तन्मय हो जाते थे। किले के अधिपतियों ने तो जल-द्वार और उत्तर-पूर्व द्वारों को बन्द कर दिया था क्योंकि वे तो स्नान ही कभी-कभी करते थे और सार्वजनिक घाटों पर तो कभी नहीं करते थे। वे लोग बाहर उपस्थित सामान्य जनता से मिलने-जुलने में नाक-भौं चढ़ाते थे, क्योंकि विदेशी होने के कारण उन लोगों के धर्म और संस्कृति से उन लोगों के मन में हार्दिक घृणा और तिरस्कार के भाव विद्यमान थे।

राजकीय आवासीय भाग, सब के साथ नदी-तट के साथ पूर्वी दिशा में समानान्तर बने हुए हैं। इस काल सदैव ठण्डी हवा, एक रमणीय दृश्य और प्राकृतिक खाई सुनिश्चित रहती थी।

किले के चारों ओर बनी हुई दो समानान्तर सुरक्षात्मक दीवारों में से भीतरी दीवार ज्यादा ऊँची है। इन दोनों के मध्य पटरीदार खाई है जो दोनों ओर लगभग ४० फीट है। नदी की ओर दीवारों के बीच की चौड़ाई लगभग १८० फीट है। इस क्षेत्र को पूर्व-प्रांगण कहते हैं। झाड़ियों से भरा

होने के कारण यह अत्यन्त बीहड़ और भयंकर दिखाई देता है। दो दीवारों से घिरे हुए इस स्थान के तल से बाहरी दीवार लगभग ७५ फीट ऊँची है जबकि भीतरी दीवार लगभग १०५ फीट ऊँची है। इन दोनों दीवारों के बीच में खड़े हुए व्यक्ति को पहाड़ी क्षेत्र नीचे दिखाई देता है। इस प्रकार किले की दो खाइयाँ हैं—एक बाहरी दीवार के बाहर है और दूसरी इसके अन्दर है।

अमरसिंह दरवाजे की ओर जाने वाले बाहरी दक्षिण दरवाजे पर रेतीले पत्थर का एक खम्भा है। भूमि से लगभग छः फीट की ऊँचाई पर उस खम्भे पर कुछ घिसाई, रगड़ दिखाई देती है। किंवदन्ती है कि जब राव अमरसिंह राठौर की पत्नी ने सुना कि उसके पति को भीतर किले में मार डाला गया है, तब उसने अपनी भारी कंगन और सिर खम्भे पर दे मारा था और अपार दुःख में बेतहाशा रोई थी। किन्तु यह भी सम्भव है कि यह घिसाई या रगड़ किसी पहिए के संघर्षण से अथवा भारी लकड़ी के दरवाज़े से हुई हो, जो खुलते और बन्द होते समय उस खम्भे से बार-बार टकराता था।

सलीमगढ़

अन्दर जाने पर दर्शक को केवल उन्हीं वस्तुओं को देखने की अनुमति मिलती है जो नदी-मुख के साथ-साथ दाईं ओर बनी हुई हैं। ये वे राजघराने की वस्तुएँ हैं, वे राजकीय भाग हैं जिनको हिन्दू राजवंशियों ने ईसा-पूर्व युग में किले के अन्य भागों के साथ-साथ ही बनवाया था। किला जब मुस्लिम हाथों में पहुँच गया, तब मुस्लिम शाही घराने भी उन्हीं राजमहलों में निवास करने लगे। इस कारण कुछ भवनों के साथ मुस्लिम नाम जुड़ गए। ऐसा ही एक नाम सलीमगढ़ है। इसके अन्दर और बाहर, दोनों तरफ ही सुन्दर हिन्दू नक्काशी की हुई है। इसकी दो मंजिलें हैं। इसके साथ लगे हुए एक मेहराबदार खुले बड़े कमरे पर बनी बारादरी को अंग्रेजों ने गिरा दिया था ताकि सैनिकों के आवास के लिए बैठकें बनाई जा सकें। यह तथ्य प्रदर्शित करता है कि मुस्लिम और अंग्रेजों की विजय से पूर्व लालकिला और इसके राजमहल अतिविस्तृत, विशाल, भव्य और सुन्दर थे। विदेशियों के कब्ज़े में रहने के समय लूट-खसोट, मूर्ति-भंजन और जान-बूझकर की गई तोड़-फोड़ के कारण

किले की दीप्ति और शोभा का अधिकांश भाग नष्ट हो गया। इतना होने पर भी जो कुछ शेष रह पाया है वह इतना विस्मयकारक और भव्य है कि सर्वाधिक दुराराध्य नेत्र वाले और अरुचि सम्पन्न व्यक्ति की आँखों को भी चकाचौंध कर दे।

मुस्लिम अभिलेखों में कोई प्रलेख ऐसा उपलब्ध नहीं है जिससे ज्ञात हो कि सलीमगढ़ को किसने बनाया था अथवा यह कब बना था। सभी ऐतिहासिक अटकलबाजियाँ इसके नाम पर ही आधारित हैं। सलीम नाम बादशाह जहाँगीर का था। जब वह शाहज़ादा ही था। इस किले पर एक समय अधिकार करने वाले सलीमशाह सूर का नाम भी सलीम था। फतहपुर-सीकरी में रहने वाले फकीर सलीम चिश्ती का नाम भी सलीम युक्त है। सलीमगढ़ के मूलोद्गम का श्रेय उनमें से किसी को भी देने का कार्य अनैतिहासिक और अयुक्तियुक्त है क्योंकि उस सम्बन्ध में उनमें से कोई भी व्यक्ति अपना शिला लेख अथवा अन्य प्रलेख नहीं छोड़ गया है। हथियाए गए भवनों और मार्गों को उनके छीनने वालों के नाम आसानी से ही दे दिए जाते हैं। भारत के स्वतंत्र होते ही, अन्य भवनों और मार्गों के ब्रिटिश नामों का परिवर्तन कर दिया गया था और भारतीय नाम रख दिए गए थे। अतः इतिहास में जब भी कभी भवनों और मार्गों के नाम विजेताओं के नाम पर मिलें तथा अन्य कोई अभिलेख उपलब्ध न हो, तो निष्कर्ष यही होगा कि उन भवनों और मार्गों को विजय-पूर्व ही निर्मित किया गया था, विशेषकर तब जबकि विजेता लोग विदेशी हों।

सलीमगढ़ के मामले में तो भवन की हिन्दू साज-सजावट इस पर थोपे गए मुस्लिम नाम की अपेक्षा बहुत अधिक मुखरित हो रही है। आज जिसे सलीमगढ़ कहते हैं। वही पूर्वकाल में सहज ही अमरसिंह गृह (अमरसिंह का निवास-स्थान) रहा हो सकता है। यह अमरसिंह आगरे के मुस्लिम-पूर्व हिन्दू शासकों में से एक रहा होगा जिसके नाम पर दक्षिण का प्रवेशद्वार भी बना है।

कीन का विचार तो यह भी है कि हो सकता है कि यह स्थान उस अकबरी महल अर्थात् बंगाली महल के साथ जुड़ा हुआ संगीत कक्ष रहा हो जो अब ध्वस्त है। सलीमगढ़ के नाम से आजकल प्रचलित राजमहल के

साथ संगीत-साहचर्य इस विचार का प्रस्तोता भी है कि मुस्लिम-पूर्व युगों में उस राजमहल में हिन्दू संगीत की स्वर लहरी गूंजा करती थी।

श्री हुसैन का विचार है :[1] "यह भवन, हो सकता है, दीवाने-आम के साथ लगे हुए नौबत-खाने (संगीत-कक्ष) के रूप में उपयोग में आता रहा हो।" इस प्रकार एक अन्य इतिहासकार भी आजकल सलीमगढ़ के नाम से प्रचलित भवन के साथ जुड़ी हुई संगीत की परम्परा का उल्लेख करता है।

पत्थर का कटोरा

दर्शक को आगे चलकर खुली जगह पर, एक बहुत बड़ा पत्थर का कटोरा मिलता है जो हलके रंग के आग्नेय शिलाखण्ड से काटकर बनाया गया है। इसमें, अन्दर और बाहर, दोनों तरफ सीढ़ियाँ लगी हुई हैं। कटोरे की पथरीली परत छः इंच मोटी है। यह पाँच फीट गहरा है। इसकी दोनों ओर की पर्तों की मोटाई को मिलाकर व्यास आठ फीट है।

कटोरे को एक विकृत शिलालेख द्वारा विद्रूप कर दिया गया है, जिसमें कहा जाता है कि बादशाह जहाँगीर का संदर्भ है और कहा जाता है कि उस पर सन् १६११ की तारीख अंकित है। हम जैसा पर्यवेक्षण पहले ही कर चुके हैं, इस प्रकार के असंगत शिलालेख इस बात के द्योतक हैं कि यह तो विजित हिन्दू संपत्ति थी। इसीलिए यह निष्कर्ष निकालना, जैसा कि कुछ इतिहासकारों ने किया है, गलत है कि चूंकि कटोरे पर जहाँगीर का नाम है, इसलिए इसका निर्माण-आदेश भी जहाँगीर ने ही दिया था। यदि सचमुच ऐसी बात होती तो शिलालेख में उसी के अनुरूप पर्याप्त शब्दों में उल्लेख किया गया होता। यदि कटोरे के निर्माण का आदेश जहाँगीर ने दिया होता, तो वह इस सम्बन्ध में उल्लेख करने से संकोच क्यों करता! अपने आदेश पर शिलालेख का निर्माण कराने वाला व्यक्ति सर्वप्रथम उसमें तारीख, प्रयोजन और निर्माण की लागत का उल्लेख कराएगा। वास्तविक स्वामी के स्थान पर अपहरणकर्ता व्यक्ति तो कुछ असंगत खुदाई ही कर देगा, जैसा कि पत्थर के कटोरे पर लगे हुए शिलालेख में जहाँगीर द्वारा कराया गया है।

१. आगरे का किला, लेखक श्री एम० ए० हुसैन, पृष्ठ ६।

मुस्लिम लोगों को जानकारी के अभाव के बारे में हमारे पर्यवेक्षण की पुष्टि इस तथ्य से भी हो जाती है कि यद्यपि वह अस्पष्ट शिलालेख मात्र ३५० वर्ष पुराना ही है, तथापि उसका कूटार्थ बोधगम्य नहीं है। यह तथ्य स्पष्ट दर्शाता है कि हिन्दू जल-कुंड पर मुस्लिमों द्वारा कितनी बुरी तरह ऊपर से लिखावट थोप दी गई है। जो व्यक्ति अपहरण करने के बाद एक सामान्य शिलालेख भी ठीक प्रकार से नहीं लगवा सकता, वह एक भव्य किले का अथवा उसके अन्दर बने राजोचित राजमहलों का निर्माता कभी भी नहीं हो सकता।

साथ ही, कूपों और जल-कुंडों में सीढ़ियाँ बनवाना पुरातन हिन्दू परंपरा है। दर्शक-गण इस जल-कुंड से पानी लेकर अपने चरण-प्रक्षालन करते थे। जहाँगीर द्वारा इसके निर्माणोद्देश्य के बारे में ऊल-जलूल कल्पनाएँ पूर्णतः अयुक्तियुक्त हैं। इसके मुस्लिम-मूलक होने के सम्बन्ध में कितनी बेहूदी अटकलबाजियाँ की गई हैं, इसका अनुमान श्री हुसैन की पुस्तक के दृष्टांतों से लगाया जा सकता है। उनका कहना है : "यह (सन् १६११ ई० की) तारीख विचार प्रस्तुत करती है कि इस कटोरे का सम्बन्ध उसी वर्ष बादशाह जहाँगीर की नूरजहाँ से हुई शादी से है और संभव है कि यह विचित्र कटोरा दूल्हा की ओर से अथवा उसको उपहार में भेंट दिया गया हो।"

पहली बात यह है कि स्मरण रखना चाहिए कि अपरिष्कृत पत्थर के जल-कुंड शाही विवाह-पक्षों की ओर से परस्पर भेंट दिए जाने योग्य वस्तुएँ नहीं हैं। दूसरी बात यह कि जहाँगीर और नूरजहाँ के बीच हुई तथाकथित शादी तो निर्दय, निर्लज्ज अपहरण काण्ड थी। नूरजहाँ शेर अफगन नामक एक दरबारी की विधिपूर्वक विवाहिता पत्नी थी। शेर अफगन का पीछा जहाँगीर द्वारा विशेष रूप से भेजे गए हत्यारों द्वारा किया गया था और उन्हीं लोगों ने उसकी हत्या भी कर दी थी। दुःखी, रोती-चिल्लाती नूरजहाँ को तब सुदूर बंगाल से ज़बरन उठवाकर जहाँगीर के हरम में ठूँस दिया गया था। कहा जाता है कि तब भी, वह अनेक वर्षों तक अपने पति के शाही हत्यारे के साथ सहवासी होने के लिए तैयार न हो सकी। अन्ततोगत्वा, अन्य कोई चारा न होने पर, वह अत्यन्त अनिच्छापूर्वक जहाँगीर की आक्रामक आशनाई के सम्मुख घुटने टेकने को विवश हो गई। यह तो कोई

शादी न थी और जहाँगीर के अतिरिक्त किसी अन्य व्यक्ति के लिए हर्षोल्लास का अवसर भी न था। अन्य लोगों के लिए तो यह अत्यन्त सन्तापदायी शर्म और त्रास की बात थी कि मुगल-शासन के अन्तर्गत एक महिला के सम्मान को उसी महिला के पति के हत्यारे द्वारा नष्ट किया जा सकता था। इस निन्द्य जीवन-साहचर्य के अपरिष्कृत रूप के अवसर पर यदि पाषाण-हृदय जहाँगीर को अनगढ़ और मोटा पत्थर का जल-कुंड विवाहोपहार के उपयुक्त था, तो कुछ नहीं कहा जा सकता।

यह जलकुंड भी पृथ्वी के ऊपरी धरातल पर नहीं मिला था, अपितु जहाँगीरी महल के सामने धरती में दबा हुआ मिला था। यह भी सन् १८५७ के अभ्युदय के तुरन्त बाद की गई खुदाइयों में प्राप्त हो सका था। कुछ समय के लिए इसे आगरा छावनी के एक बाग में रखा गया था। बाद में इसे फिर किले में ले जाया गया था और दीवाने-आम के सामने रख दिया गया था। सन् १९०७ में इसे वहाँ से भी हटा दिया गया और आज वाली स्थिति में रख दिया गया था।

बंगाली महल

इससे आगे अकबरी महल उपनाम बंगाली महल के ध्वंसावशेष देखे जा सकते हैं। इसकी ध्वंसावस्था इस बात की द्योतक है कि इसमें असंख्य संस्कृत शिलालेख तथा हिन्दू देव-प्रतिमाएँ संग्रहीत थीं। मुस्लिम विजेताओं को इस भवन को समूल नष्ट किए बिना उन देव-प्रतिमाओं और संस्कृत-शिलालेखों को नष्ट करना असंभव रहा होगा। यदि यह अकबर द्वारा निर्मित होता, तो कोई कारण नहीं है कि उसके बेटों और पोतों ने उसे गिराया हो। अनुवर्ती व्यक्ति तो पिता या प्रपितामह की संपत्ति का गौरवशाली वंशज होता है। कोई भी व्यक्ति ऐसे महान् इस्लामी धन को व्यर्थ ही नष्ट नहीं करेगा। किन्तु चूँकि 'काफिराना' सजावट और बंगाली महल के शिलालेख मुस्लिम आधिपत्यकर्ताओं की आँखों में काँटों की तरह सदैव चुभते रहे होंगे, इसलिए इसको भूमिसात कर दिया गया होगा। यदि जिस किले को अकबर द्वारा निर्मित माना जाता है, उसके शेष भाग ठीक-ठाक हैं, तो क्या कारण है कि केवल एक ही भाग (राजमहल) नष्ट हो जाय! इससे सिद्ध होता है, सम्पूर्ण

किला मुस्लिम-पूर्व युग का है। इसके कुछ भाग नष्ट हो गए क्योंकि उत्तरवर्ती मुस्लिम विजेतागण विजयोपरान्त ध्वंस-दुष्कर्म में अत्यन्त लिप्त रहे थे।

हमारा निष्कर्ष है कि ध्वस्त राजमहल एक पवित्र हिन्दू भवन था जो हिन्दू उत्कीर्णांशों और शिलालेखों से भरा पड़ा था, जिनको परवर्ती मुस्लिम आधिपत्यकर्ताओं ने 'काफिराना' असह्य-संपत्ति समझा था। उपर्युक्त निष्कर्ष की पुष्टि श्री हुसैन की इस टिप्पणी से होती है कि :[2] "यह एक राजमहल या उसका भाग रहा होगा जो दलित के वर्णनानुसार तीन खण्डों वाला होगा जिनमें राजा की रखैलें रहती हैं, जिनमें से एक खण्ड इतवार का द्योतक आदित्यवार कहलाता है। दूसरा मंगलवार और तीसरा शनिवार है।" इसका अर्थ यह है कि इस राजमहल में कम-से-कम सात या नौ महाकक्ष रहे होंगे, जो हिन्दू राशि-चक्र के ग्रहों के नाम पर रखे गए होंगे। पुरातन हिन्दुओं की तो यह पुरानी परम्परा रही है कि राजमहल के भागों तथा नगर की विभिन्न बस्तियों के नाम सप्ताह के दिनों के नाम पर रखे जाएँ। पूना और शोलापुर जैसे नगरों में यह पद्धति अब भी ज्यों-की-त्यों प्रचलित है। अतः हमारे मत से तो बंगाली महल का प्राचीन हिन्दू नाम सप्त-ग्रह अथवा नवग्रह भवन रहा होगा।

श्री हुसैन ने लिखा है कि :[3] "आईने-अकबरी (पृष्ठ ८१) के लेखक का विचार है कि बंगाली महल सन् १५७१ में पूरा बन गया था। इन परिस्थितियों में, लगभग उसी समय (सन् १५७१ में) अकबरी महल की संरचना का अनुमान करना अयुक्तियुक्त नहीं होगा जिसका एक भाग संभव है यह महल रहा होगा।"

चूँकि श्री हुसैन सरकारी पुरातत्व विभागीय कर्मचारी थे, इसलिए हम मान लेते हैं कि सरकार को यह भी मालूम नहीं है कि अकबरी महल और बंगाली महल एक ही भवन के दो नाम हैं अथवा अकबरी महल बंगाली महल का एक भाग था, या इसी की उलटी बात थी, और यदि इसका निर्माण अकबर द्वारा कराया गया था तो इसका नाम बंगाली महल क्यों प्रचलित

२. श्री हुसैन कृत 'आगरे का किला', पृष्ठ ७-८।
३. श्री हुसैन कृत 'आगरे का किला', पृष्ठ ८।

हुआ जबकि मध्यकालीन मुस्लिम व्यवहार में 'बंगाली' शब्द 'हिन्दू' शब्द का द्योतक था ! साथ ही, यदि अकबर ने इसे बनवाया था, तो यह ध्वस्त क्यों है ? इस विषय पर कोई शिलालेख क्यों नहीं है जिसमें निर्माण-मूल्य, उद्देश्य तथा अवधि का उल्लेख हो क्योंकि किले के भीतर तो अकबर के नाम के अनेक असंगत शिलालेख उत्कीर्ण मिल जाते हैं ? इसका सबसे उपहासास्पद भाग यह है कि अकबर के अपने दरबारी तिथिवृत्तकार अबुलफज़ल द्वारा लिखित आईने-अकबरी में इस भवन के बारे में इतना थोड़ा संदर्भ दिया गया है कि श्री हुसैन जैसे कर्मचारियों और लेखकों को यह कहने पर विवश होना पड़ा है कि आइने-अकबरी के लेखक का 'विचार' है कि यह महल सन् १५७१ में पूर्ण हुआ था। अबुलफज़ल जैसे सरकारी तिथि-वृत्तकार को 'विचार' अर्थात् अनुमान क्यों करना पड़े कि बंगाली महल अर्थात् अकबरी महल को अकबर ने बनवाया था। यहाँ यह ठोस प्रमाण है कि अकबर ने इसे बनवाया नहीं था। यदि अकबर ने इसे बनवाया होता तो क्या अबुल-फज़ल जैसे चापलूस दरबारी ने इस तथ्य का स्पष्ट उल्लेख नहीं किया होता ? यह बात हमारे इस पर्यवेक्षण का एक अन्य प्रमाण है कि अबुलफज़ल की आईने-अकबरी रचना सर्वाधिक अविश्वसनीय, भ्रामक और जाली इतिहास है जिसमें अत्यन्त अतिशयोक्तिपूर्ण काल्पनिक बातें लिखी हुई हैं।

कमरे-युक्त कूप

बंगाली बुर्ज के पास ही कमरे-युक्त कूप है। यद्यपि इसे आजकल अकबरी बाओली कहते हैं, तथापि स्वयं स्पष्ट है कि इसके साथ अकबर का नाम जुड़ने का कारण यह है कि अकबर ने किले की विजय प्राप्त की थी। बहुमंजिले कमरों वाले कुएँ बनवाना पुरातन हिन्दू परम्परा थी। सारे भारत में प्राचीन राजमहलों, भवनों और किलों के भीतर या उनके पास ही ऐसे कुएँ पर्याप्त संख्या में मिलते हैं।

ऐसा ही एक विशाल कमरे-युक्त बहुमंजिला कूप लखनऊ में भी तथा-कथित (बड़े) इमामवाड़े में विद्यमान है। अतः हमारी इच्छा है कि इतिहास का कोई प्रेमी लखनऊ के तथाकथित इमामबाड़ों पर अनुसन्धान-कार्य प्रारम्भ

करे और सिद्ध करे कि ये सब प्राचीन लखनऊ उपनाम लक्ष्मणवती उपनाम लक्ष्मणपुर के मुस्लिम-पूर्व हिन्दू राजप्रासाद हैं।

जहाँगीरी महल

ध्वस्त अकबरी महल के उत्तर में जहाँगीरी महल है। यूरोपीय इतिहासकारों ने निष्कर्ष निकाला है कि सलीमगढ़ उस समय बना होगा जब जहाँगीर शाहजादा सलीम के रूप में ही था और जहाँगीरी महल का निर्माण उस समय हुआ होगा जिस समय जहाँगीर बादशाह बन चुका था। हम पहले ही स्पष्ट कर चुके हैं कि इस प्रकार के निष्कर्ष कितने अ-बुद्धिपूर्ण और अयुक्तियुक्त हैं। किन्तु कदाचित् पश्चिमी इतिहासकार दोषी नहीं हैं क्योंकि उन लोगों को मध्यकालीन मुस्लिम तिथि-वृत्त-लेखन के 'धोखे' की पूरी जानकारी नहीं थी, जिस धोखे पर सर एच० एम० इलियट ने सन्देह तो किया था किन्तु इस पर इतना सर्वव्यापी विश्वास नहीं किया था।

तथाकथित जहाँगीरी महल का वर्णन करते हुए हुसैन इसके : [४]"अनोखी असंगत दीवारगीरी, छत, छज्जे (उभरे हुए) नक्काशी किये हुए खम्भों, आलों और स्तम्भों का उल्लेख करता है। राजमहल मूलरूप में स्वर्ण और रंगों से चित्रित था, या उभरी हुई पलस्तरदार पपड़ी (नक्काशी) से सुसज्जित था—वह भी रंग-बिरंगा था—फतहपुर-सीकरी स्थित जहाँगीरी महल से बहुत अधिक समरूप था।"

उपर्युक्त अवतरण स्पष्टतः दर्शाता है कि किस प्रकार इतिहासकार सत्य के पास ही थे, किन्तु सत्य ने उनको फिर भी प्रवंचित कर दिया था। इसका कारण उनकी अपनी भ्रान्त धारणाएँ ही थीं। श्री हुसैन की मुस्लिम-आँखों को तथाकथित जहाँगीरी महल की दीवारगीरी, छतें, छज्जे आदि 'अनोखे असंगत' प्रतीत होते हैं क्योंकि वे सभी पुरातन रूढ़िवादी हिन्दू विशिष्टताएँ होने के कारण मुस्लिम परम्परा में अनमेल बैठती हैं। किसी मुस्लिम अभिलेख के अभाव के अतिरिक्त, इस बात को ही सभी इतिहासकारों को यह अनुभूति प्रदान करा देनी चाहिए थी कि तथाकथित जहाँगीरी

४. श्री एम० ए० हुसैन विरचित 'आगरे का किला', पृष्ठ ८-९।

महल, किले के भीतर बने अन्य राजमहल तथा स्वयं किला भी हिन्दू-कला और स्वामित्व की वस्तुएँ हैं। श्री हुसैन का यह दूसरा पर्यवेक्षण भी, कि तथाकथित जहाँगीरी महल फतहपुर-सीकरी में बने हुए शाही भवनों से अत्यधिक मिलता-जुलता है, अत्यन्त समीचीन है। फतहपुर-सीकरी को तो पहले ही हिन्दू-मूलोद्गम का सिद्ध किया जा चुका है जिसका "'निर्माण-श्रेय" अन्य भवनों और नगरों की ही भाँति गलती से अकबर को दिया जाता है।

जहाँगीरी महल के नाम से विख्यात राजमहल की बाहरी लम्बाई लगभग २८८ फीट और चौड़ाई २६१ फीट है। इसके सीमान्त स्तम्भों के मध्य अग्रभाग १६२ फीट लम्बा है। एक फाटक और ड्योढ़ी से स्वागत-कक्ष में जा पहुँचते हैं। वहाँ एक द्वार से मुख्य कक्ष में रास्ता जाता है। स्वागत-कक्ष की दाईं ओर का एक रास्ता छोटे-से दालान में और नगाड़खाने वाले स्तम्भ-युक्त महाकक्ष में जाता है। यह तो हिन्दू परम्परा का एक अन्य संकेतक है क्योंकि मुस्लिम परम्परा में संगीत एक निषिद्ध वस्तु है, विशेष-कर उन स्थानों पर जहाँ मस्जिदें बनी हैं।

केन्द्रीय प्रांगण की दक्षिणी दीवार के पीछे कमरों की एक पंक्ति बनी हुई है जो कदाचित् हिन्दू दरबार के अनुचरों के लिए आवास-हेतु बनाई गई प्रतीत होती है। केन्द्रीय प्रांगण लगभग ७६ फीट वर्ग है। इसके चारों ओर दुमंजिला मोहरा है। इसके हिन्दू रंग, यद्यपि धुँधले पड़ गए हैं, फिर भी अभी भी देखे जा सकते हैं। अपने अनिश्चित तथा उपद्रवग्रस्त काल-खण्ड में, ढलते हुए मुस्लिम शहंशाहों ने धैर्य, रुझान, धन और जानकारी के अभाव में हिन्दू-रंगकला को धूमिल हो जाने दिया क्योंकि वे न तो उसे ठीक-ठाक कर सकते थे और न ही नया रूप दे सकते थे।

स्वागत-कक्ष के ऊपर तीसरी मंजिल पर एक खुला बड़ा कमरा है जिसके पाँच स्तम्भ के तीन ओर खुले हुए कोष्ठक हैं जो पूर्व और पश्चिम में प्रांगण की ओर खुलते हैं। ३, ५, ७, ६, ११ से २१ तक जैसी विषम संख्या में स्तम्भ, गोलाकार प्रासाद शृंग तथा फाटक बनवाना प्राचीन हिन्दू

५. पी० एन० ओक कृत 'फतहपुर-सीकरी एक हिन्दू नगर' पढ़ें।

परम्परा रही है। सभी मध्यकालीन भवनों में (भारत में) यह बात देखी जा सकती है क्योंकि वे सब मुस्लिम-पूर्व हिन्दू-मूलक हैं।

हिन्दू रानी का व्यक्तिगत कमरा

चतुष्कोण की उत्तर दिशा में खम्भों वाला एक बड़ा कमरा है, जिसे जोधबाई का व्यक्तिगत कमरा कहते हैं। यह एक अन्य महत्त्वपूर्ण बात है जिसके प्रति हम सभी इतिहासकारों और मध्यकालीन ऐतिहासिक भवनों के दर्शनार्थियों को सावधान करना चाहते हैं। मुस्लिम हरमों में ५००० महिलाएँ ठुँसी रहती थीं। उन्हीं में से एक संयोगश जोधबाई या जोधाबाई नाम की असहाय, घृणित, अव्यक्त ध्वनि हिन्दू महिला थी जिसका दर्जा उप-पत्नी या घटिया किस्म की रखैल था। इस प्रकार, उसका मूल्यांकन १/५०००वाँ भी नहीं था, फिर भी चाहे फतहपुर-सीकरी हो या आगरे का किला या कोई अन्य स्थान, हम सदैव एक जोधबाई या जोधाबाई का नाम सुनते हैं और विचित्रता यह है कि शेष उन ४,९९९ महिलाओं में से एक का भी नाम सम्मुख नहीं आता जो प्रथम श्रेणी की, प्रथम दर्जे की असली मुस्लिम महिलाएँ थीं। इस बात का रहस्य क्या है? रहस्य यह है कि चूँकि मुस्लिम शहंशाहों ने अपना समस्त जीवन आगरा, दिल्ली और फतहपुर-सीकरी के विजित हिन्दू भवनों में बिताया तथा उनके उग्रवादी मुस्लिम दरबारियों को यह बात बहुत अखरती थी कि उनके सर्वशक्तिशाली मालिक विजित हिन्दुओं के पुराने भवनों में रहते थे, इसलिए उन्होंने उन भवनों, राजमहलों तथा किलों की हिन्दू साज-सजावट का दोष अवर्णित, विलक्षण जोधबाई या जोधाबाई को दे दिया।

हम यहाँ पर उपनामों के बारे में घालमेल का स्पष्टीकरण भी करना चाहेंगे। अकबर के हरम का एक अंश बनने के लिए भेंट की गई जयपुर की राजकन्या जोधबाई थी (जोधाबाई नहीं)। जहाँगीर के हरम में भेजी गई जयपुर की दूसरी राजपुत्री जोधाबाई थी। किन्तु ये भी झूठे नाम हैं। उनके वास्तविक हिन्दू नाम अज्ञात हैं। कम-से-कम उस राजकन्या का नाम अज्ञात है जिसका अपहरण अकबर ने किया था। किन्तु वह जैसे ही अकबर के हरम में पहुँची, तैसे ही उसको 'मर्यम ज़मानी' नाम दे दिया गया। उसका मुस्लिम

नाम पता होना जबकि हिन्दू नाम अज्ञात है, स्वयं इस बात का प्रबल प्रमाण है कि उसका अपहरण ही किया गया था, किसी भी प्रकार विवाह नहीं। यदि यह सचमुच ही विवाह हुआ होता तो उसका हिन्दू नाम बड़े गर्व के साथ सभी अभिलेखों में अंकित हुआ होता, किन्तु चूंकि समकालीन राजपूतों के लिए यह तो अत्यन्त घोर लज्जा की बात थी कि अकबर के सेनानायक शफुद्दीन के तीन त्रासदाता आक्रमणों के सम्मुख बलादग्राही लुण्ठक शत्रु के समक्ष उनको एक असहाय सुरक्षाहीन कन्या को समर्पित करना पड़ा, इसलिए उन्होंने उसका नाम इतिहास से समूल नष्ट कर दिया। मुस्लिम द्वारा उसका नाम सदैव के लिए समाप्त कर देने का कारण यह रहा कि मुस्लिम हरमों में हिन्दू नाम अति घृणा के भावों से देखे जाते थे। हिन्दू नाम को हमेशा के लिए खत्म कर देने वाला उसका मुस्लिम नाम मर्यम ज़मानी था। यदि किसी व्यक्ति को ऐतिहासिक अन्तर्दृष्टि प्राप्त हो तो ऐसी ही छोटी-छोटी बातों से बहुत विशाल ऐतिहासिक भण्डार तैयार किया जा सकता है।

राजकुलीन मन्दिर गृह

चतुष्कोण के पश्चिम में एक कमरा है जिसमें बहुत सारे आले बने हुए हैं। किला मुस्लिमों के अधीन होने से पूर्व, इन आलों में हज़ार वर्षाधिक्य अवधि तक हिन्दू देवताओं-देवियों की प्रतिमाएँ रखी रहती थीं। कमरे में १००० वर्ष से अधिक अवधि तक अनेक हिन्दू देवगणों की मूर्तियाँ इस प्रकार विराजमान रहने की प्रथा, परम्परा मुस्लिम आधिपत्य में भी चलती रही। धीरे-धीरे एक मध्यकालीन इस्लामी झूठी कथा चल पड़ी और भ्रमणार्थियों को अब बताया जाता है कि कथा का सम्भवतः अर्थ यह है कि जहाँगीर की पत्नी और माँ, दोनों ही हिन्दू होने के कारण, उन्होंने कमरे में एक उपासना गृह बना रखा था। यह साफ बकवाद है। मध्यकालीन मुस्लिम शासन के अंतर्गत हज़ारों लोगों को हिन्दू और ईसाई धर्मों का बलात् त्याग करना पड़ा था और इस्लाम धर्म को विवश होकर अंगीकार करना पड़ा था। जहाँगीर और शाहजहाँ के शासन-काल खण्ड ऐसे आतंक-प्रेरित धर्म-परिवर्तनों और मन्दिर के व्यापक-स्तरीय सर्वनाशों से भरे पड़े हैं। अतः यह बात अत्यन्त बकवाद पूर्ण है कि उनके ही अंधेरे हरमों में भारी पर्दों के भीतर वाले इस

कमरे में रहने वाली विवशता-वश समर्पित हिन्दू राजकन्याओं को बुर्का धारण करने के बाद भी शाही नाक के नीचे ही अपने हिन्दू देवगणों की पूजा करने की अनुमति दी जाय जबकि उनके चारों ओर धर्मान्ध मुल्लों, काज़ियों, हरम की औरतों, नौकरों और दरबारियों की भीड़ सदैव लगी रहती हो जो संसार से सभी प्रकार के गैर-इस्लामी रीति-रिवाजों को खत्म करने की कसम खाए बैठे हों।

हिन्दू महारानी का महाकक्ष

चतुष्कोण के दक्षिण में एक और कुछ छोटा कमरा है। उसे भी असहाय जोधाबाई के कमरे के नाम से स्मरण किया जाता है। हम पाठक का ध्यान फिर इस गुत्थी की ओर आकर्षित करते हैं जो अधिक रहस्यमय हो जाती है। किसी जोधबाई या जोधाबाई का नाम बार-बार क्यों दुहराया जाता है, जब पीढ़ियों से मुस्लिम हरमों का एक बहुत विशाल अंश तो मुस्लिम महिलाओं का था। इसका कारण यह है कि फतहपुर-सीकरी और आगरे के लालकिले तथा दिल्ली के लालकिले के राजमहल के आवासीय भागों के प्रत्येक कमरे हिन्दू साज-सजावटों, चिह्नों से भरे पड़े हैं। चूंकि इस विचित्रता का स्पष्टीकरण सरलतापूर्वक नहीं दिया जा सकता था, इसलिए एक निर्धन, असहाय, अबला जोधबाई या जोधाबाई के नाम का सहारा ले लिया गया। इस काल्पनिक जोधाबाई की हिन्दू बैठक तीन ओर साढ़े चार फीट चौड़े रास्ते से घिरी हुई है। मुस्लिम लोग इसका स्पष्टीकरण नहीं दे पाते। वे जो कह सकते हैं वह यह है कि ये रास्ते सेवकों के लिए थे जो बैठक से आदेश मिलने पर तुरन्त उपस्थित रहें। यदि यही बात थी, तो अन्य राजमहलों में भी यही व्यवस्था होनी चाहिए थी। स्पष्टतः मुस्लिम परम्परा फतहपुर-सीकरी और दिल्ली व आगरे के लालकिलों के तथा मध्यकालीन मूलोद्गम के उनके तथाकथित मकबरों और मस्जिदों के अनेक लक्षणों का युक्तियुक्त स्पष्टीकरण प्रस्तुत करने में एक जगह भी सफल नहीं है। उन्हें सदा ऐसी शब्दावली का सहारा लेना पड़ता है : "कहा जाता है ⋯ विश्वास किया जाता है⋯यह पता नहीं है कि क्यों⋯यह विचित्र बात है⋯यह आश्चर्य है⋯यह निष्कर्ष दिया जाता है⋯यह अनुमान है⋯यह रहस्यमय गुत्थी है⋯हो

सकता है कि…" आदि। कई बार इस परिपाटी से दूर चलकर एक काल्पनिक जोधबाई या जोधाबाई को सारा दोष दे दिया जाता है। यह अतिप्रिय रूपान्तर है।

हिन्दू पुस्तकालय

पूर्व दिशा में कई कमरे हैं जिनका एक प्रांगण है जो नदी-मुख के साथ-साथ है। इसका केन्द्रीय प्रवेशद्वार एक ड्योढ़ी है जो स्तम्भों के सहारे खड़ी हुई है। छज्जे से परे एक कमरा है जिसे पुस्तकालय कहते हैं। चूँकि मध्यकालीन मुस्लिम शासकों के प्रबन्धक अधिकांशत: अनपढ़ अथवा अध-पढ़ थे जिनकी पढ़ाई-लिखाई कुरान या उसके भाष्यों से अधिक नहीं थी, इसलिए ऐसा पुस्तकालय कालदूषण, तारीख की गलती है। इसलिए सम्भावना यह मालूम देती है कि मन्दिर गृह तथा नक्षत्र गृहों के समान ही प्रांगणों के साथ लगा हुआ यह कमरा अशोक, कनिष्क तथा अन्य हिन्दू शासकों का पुस्तकालय रहा होगा। ये कमरे वेदों, उपनिषदों, भगवद्गीता, रामायण, महाभारत, पाणिनी का व्याकरण, भास के नाटक, कालीदास तथा अनेक नाटककारों की रचनाओं, सुविख्यात संस्कृत-काव्य; ज्योतिष, आयुर्वेद तथा हिन्दुओं के ज्ञान की अन्य शाखाओं के उज्ज्वल रत्नों के सुश्रेष्ठ हिन्दू साहित्य के अगाध भण्डार रहे होंगे।

तथाकथित जहाँगीरी महल की छत पर दो आकर्षक दर्शक-मण्डप बने हुए हैं। यहाँ कुछ जल टंकियाँ हैं जो ऊपरी मंजिल के जल-भण्डार का कार्य करती थीं जिनसे प्रवाहित यमुना-जल को जल-प्रवाहिकाओं और झरनों के माध्यम से अन्य भागों में पहुँचाया जाता था।

भारत में लगभग सभी ऐतिहासिक राजमहलों और भवनों का एक सामान्य लक्षण यह रहा है कि उनमें ऊपरी जल-भण्डारों से जल-प्रवाहिकाओं और झरनों के रूप में प्रवाहित जल-व्यवस्था सदैव विद्यमान रही है। ये सब उस युग की हिन्दू तकनीक और यन्त्रविद्या में निपुणता के दृश्यमान प्रमाण हैं जिस समय कोई यन्त्र इस प्रकार का निर्मित हुआ ज्ञात नहीं हो जाता, जब किसी नदी या कुएँ से २०० फीट ऊपर तक पानी उठा दिया जा सके। यही तथ्य कि मकबरा समझा जाने वाला सफदरजंग (और किसी मृतक को

जल की आवश्यकता नहीं होती)—भवन, दिल्ली और आगरे के लालकिले व फतहपुर-सीकरी के राजमहल तथा सुदूर बीदर में तथाकथित मकबरों आदि भवनों में बहते हुए पानी की नालियाँ तथा पानी ऊपर पहुँचाने व उसका वितरण करने की प्रणालियों का अस्तित्व है, इस बात का द्योतक है कि वे सब हिन्दू मूलक और स्वामित्व की वस्तुएँ हैं। उत्तरकालीन विदेशी मुस्लिम आक्रामकों और विजेताओं ने उनको मक़बरों और मस्जिदों के रूप में बुरी तरह इस्तेमाल किया। अरेबिया, इराक, ईरान और सीरिया के शुष्क रेतीले प्रदेशों से आने के कारण मुस्लिमों का अभ्यास जल के अभाव में जीवन-यापन करने का हो गया था और जल से अति दूर होने के कारण, उनको जल ऊपर उठाने और सिंचाई की विधाओं का ज्ञान लेश-मात्र भी नहीं था, जिस विद्या से हिन्दू लोग पूर्णतः पारंगत थे।

उन जल-टंकियों के निकट जल-नलों में अभी भी ताँबे की नलियाँ लगी हुई हैं जो मुस्लिम-पूर्व युगीन प्राचीन हिन्दू कारखानों में बनी थीं। प्राचीन हिन्दू यन्त्र-कला की जटिलताओं से विस्मित, विमुग्ध हुए मुस्लिम आधिपत्य-कर्ता लोग उनको सुव्यवस्थित बनाए रखने में प्रायः असफल रहे। कुछ खराबी की स्थिति में सुधार करने की दृष्टि से उनको जल-प्रणाली व उनसे लाभ उठाने वाले भागों पर पत्थर की कटोरियाँ-सी लगा देनी पड़ीं जो आज भी देखी जा सकती हैं, यद्यपि वे टूटी हुई हैं।

शाहजहाँनी महल

तथाकथित जहाँगीरी महल की उत्तरी दिशा 'शाहजहाँनी महल' कहलाता है। अपनी अपरिपक्वता और ऊपरी विधि-प्रणाली में ही पश्चिमी विद्वानों ने तुरन्त यह निष्कर्ष निकाल लिया है कि भवन का जहाँगीरी महल भाग जहाँगीर द्वारा और शाहजहाँनी महल वाला भाग शाहजहाँ द्वारा बनवाया गया था। जिन लोगों की दृष्टि में उपर्युक्त बात बेहूदी थी क्योंकि सम्पूर्ण एक एकीकृत योजना के अनुसार बनवाया गया था, उन्होंने भी एक छोटा-सा संशोधन कर लिया कि जिस भाग का नाम आज शाहजहाँ के साथ जुड़ा हुआ है, उसे शाहजयाँ ने गिराया या परिवर्तित किया हो। हम इस प्रकार की शैक्षिक कलाबाजियाँ समझ पाने में असफल रहे हैं। क्या यह

समझ पाना अति कठिन बात है कि जब किसी राजवंश की कई पीढ़ियाँ एक ही स्थान (परिसर) में रहती हैं, तब विभिन्न भागों के नाम उन राजाओं के साथ जुड़ जाते हैं जिन्होंने अपनी छाप उन भवनों पर छोड़ी होती है जिनमें कारण होते हैं समकालीन दरबारी प्रयोग। क्या हमको भी उनके साथ चले आए नामों से, किसी अन्य साक्ष्य के अभाव में भी विवश होकर यह मान लेना चाहिए कि वह भवन या मार्ग उसी व्यक्ति द्वारा बनवाया गया था जिस नाम से उसे आज पुकारा जाता है? क्या हम इस तथ्य को भूल सकते हैं कि विजेतागण और उनके समर्थक, चापलूस और हाँ-में-हाँ करने वाले व्यक्ति विजित क्षेत्र के भवनों और मार्गों के नामों को अपना नाम प्रदान कर देते हैं? क्या हमारे लिए अपने मानस पटल पर यह बात अंकित करना कठिन है कि हिन्दुस्तान के भूखण्ड को अपना कहकर दावा करने वाले आक्रमणकारी, विध्वंसक अरबों, फारसियों, तुर्कों और मुगलों ने इस देश के विशाल हिन्दू भवनों, राजमहलों, प्रासादों, पुलों, झीलों, नहरों और स्तम्भों को भी अपना कहकर दावा किया है। क्या इस धरती पर उन चापलूसों और खुशामदियों की कभी कमी हुई है जो सत्ताधारियों के शासन की झूठी प्रशंसा करने के लिए अपनी लेखनी को बेचकर उसका व अपना मुँह काला कर लेते हैं? अपनी घोर शत्रुता सम्पन्न संस्कृति वाले देश पर शासन के संगी-साथियों में ऐसे चापलूसों और खुशामदियों का महत्त्वपूर्ण भाग होना मध्यकालीन मुस्लिम तिथिवृत्तों से स्पष्ट रूप में देखा जा सकता है।

शाहजहाँनी महल में एक सामने दालान, एक केन्द्रीय कक्ष दक्षिण, पूर्व और पश्चिम में तीन-तीन कमरों का एक समूह तथा एक स्तम्भ दीर्घा है। इस दीर्घा की भीतरी छतें तथा दीवारें फूलों के नमूनों से सुसज्जित हैं। कहा जाता है कि मुगल लोग इस दीर्घा से नीचे प्रांगण में हाथियों की लड़ाइयाँ होते हुए देखा करते थे। कई बार कुपित मुस्लिम बादशाह के इशारे पर अवांछनीय व्यक्तियों को भी हाथियों के पैरों तले रौंदवा डाला जाता था। ब्रिटिश शासन-काल में, उत्तर-पश्चिमी सीमा-प्रांत के उप-राज्यपाल जान रसेल कोलविन का देहान्त ९ सितम्बर, १८५७ को इसी स्तम्भ-दीर्घा में हुआ था। उसकी समाधि अब भी तथाकथित दीवाने-आम के बाहर मैदान में बनी हुई देखी जा सकती है।

हिन्दू राजमहल द्वार

शाहजहाँनी महल की उत्तरी दिशा में पाँच दीवार के खाँचों का एक तोरणयुक्त मोहरा है। इसके पश्चिमी किनारे वाली मेहराब काँच के परदे से बन्द है। इस काँच के परदे के पीछे एक बड़ा उखड़ा हुआ दरवाज़ा रखा है जिसे गज़नी दरवाज़ा कहते हैं। यह १२ फीट ऊँचा व ९ फीट चौड़ा है।

कहा जाता है कि पहली अफगान चढ़ाई के बाद भारतीय टुकड़ियों का नेतृत्व करते हुए जब सेनापति नाटिंघम गज़नी में प्रविष्ट हुआ था, तब वह ११वीं शताब्दी के आक्रमणकारी महमूद गज़नी के मकबरे से इस दरवाज़े को उखाड़कर सन् १८४२ ई० में लूट के धन के रूप में इस दरवाजे को भारत में ले आया था। अरेबिया, ईरान, इराक, सीरिया, तुर्की, अफगानिस्तान, कज़ाकस्तान और उज़बेकस्तान के लुटेरों द्वारा एक हज़ार वर्ष तक की दीर्घावधि तक हिन्दुस्तान की लूट-खसोट की यह एक प्रतीकात्मक प्रतिक्रिया ही थी।

कुछ लोगों का कहना है कि यह दरवाज़ा वह द्वार था जो महमूद गज़नी ने सन् १०२४-२५ ई० के अपने कुख्यात आक्रमण के समय भारत के सोमनाथ मन्दिर से ही उखाड़ा था। अन्य लोग कहते हैं कि सोमनाथ मन्दिर का द्वार जिसे महमूद गज़नी ने उखाड़ा था, चन्दन की सुगन्धित लकड़ी का था, जबकि गज़नी से लाया गया दरवाज़ा देवदारु का है। यह भी हो सकता है कि महमूद गज़नी के राजमहल एवं मकबरे से इस दरवाजे को उखाड़ते समय भारतीय सैनिकों ने कहा हो कि महमूद गज़नी द्वारा सोमनाथ मन्दिर को अपवित्र, खण्डित करने के प्रतिकार के रूप में ही वे भी इस दरवाज़े को भारत ले जाना चाहते हों, इस बात से भी दोनों दरवाज़ों की कथाएँ मिल-जुल गई हों।

किन्तु चाहे यह दरवाजा सोमनाथ मन्दिर से न ले जाया गया हो, तथापि इस बात की प्रत्येक सम्भावना है कि यह दरवाजा किसी अन्य हिन्दू मन्दिर अथवा राजमहल का हो, जिसको महमूद गजनी हिन्दुस्तान से ले गया था। छः कोनों वाला नक्षत्रीय नमूना इस द्वार के हिन्दू-स्वामित्व का स्पष्ट द्योतक है। महमूद गज़नी जैसे धर्मान्ध, कट्टर मुस्लिमों के मकबरे

'काफिरों' के निशान वाले इस्लामी कलात्मक दरवाज़ों से कभी भी सुशोभित नहीं हो सकते थे। किन्तु जब ऐसी वस्तुएँ लूट की सम्पत्ति में मिलीं, तो वे तो अत्यन्त स्वागत योग्य थीं। साथ ही महमूद गज़नी के बारे में सर्वज्ञात है कि वह लूट की दौलत पर ही जीवित रहता था। स्वयं गजनी का उसका महल एवं मकबरा पूर्वकालिक हिन्दू राजा जयपाल की सम्पत्ति था। इसका प्राचीन हिन्दू शासक-निर्माता कौन था, इस तथ्य की खोज की जानी चाहिए। इस प्रकार, चाहे यह दरवाज़ा सोमनाथ मन्दिर का रहा हो अथवा अन्य किसी हिन्दू भवन का, यह निस्सन्देह हिन्दू फाटक (द्वार) है और इसका भारत-आगमन इतिहास की पुनरावृत्ति ही है। एक अनुपयुक्त चिह्न (स्मारक) के रूप में इसे अप्रयुक्त पड़ा रहने देने की अपेक्षा इसे किसी हिन्दू मन्दिर में पुनः स्थापित कर दिया जाना चाहिए जिससे इसकी भली-भाँति देखभाल की जा सके, ठीक प्रकार से तेल दिया जा सके, रंग-रोगन तथा रख-रखाव हो सके।

इस दरवाज़े पर प्राचीन अरबी वर्णमाला में लिखावट द्वारा सबुक्तगीन के बेटे सुल्तान महमूद पर अल्लाह के शुभाशीषों की याचना की गई है।

खास महल

एक अन्य दर्शनीय भाग खास महल अर्थात् प्राचीन हिन्दुओं का निजी राज भवन है। मुस्लिम आधिपत्य की अवधि में इसके 'आरामगाह-ए-मुकद्दस' (पवित्र विश्राम गृह) जैसा विदेशी नाम दे दिया गया तथा इसमें हरम स्थापित कर दिया गया। मध्यकालीन ढोंगियों को इसके निर्माता की जानकारी न होने के कारण इस भाग का निर्माण-श्रेय शाहजहाँ को दे दिया गया। किन्तु ऐसे मामलों में जैसा होना अवश्यम्भावी है, अनेक अन्य मुस्लिम प्रतिद्वन्द्वी दावे भी हैं, जो सब-के-सब झूठे हैं। आज इसमें क्या-क्या, कौन-कौन-सी इमारतें सम्मिलित हैं, यह भी निश्चित नहीं है क्योंकि लालकिले के सभी राजमहलों के अंग के रूप में अनवरत, परस्पर सम्बद्ध भागों, गलियारों, बरामदों, ड्योढ़ियों, दालानों, नाट्यशालाओं के विशिष्ट-कक्षों, दीर्घाओं, कमरों, और मेहराबों का संकुल ही उपलब्ध है। ये सब ईसा-पूर्व हिन्दुओं द्वारा प्रकल्पित एवं रूप-रेखांकित एक एकीकृत प्राचीन योजना के

अंग हैं। इसलिए आधुनिक लेखकों को ये भारी अटकलबाजियाँ करना, ऊट-पटाँग अनुमान लगाना बेहूदा बकवाद है कि किसी सिकन्दर लोधी, सलीम-शाह सूर, अकबर, जहाँगीर या शाहजहाँ ने उनमें से किसी का निर्माण या पुनर्निर्माण करवाया था। शासन करने वाले किसी भी मुस्लिम ने कोई लिखित दावा इस सम्बन्ध में छोड़ा नहीं है। उन लोगों को तो अपरिपक्व कल्पनाशील ऐतिहासिक विद्वानों द्वारा झूठा और निरर्थक श्रेय दिया जा रहा है।

खास महल के सम्बन्ध में भी वही बेहूदी कल्पनाएँ, अटकलबाजियाँ हैं अर्थात् आज जो भाग हमें दिखाई देता है, वह शाहजहाँ द्वारा निर्मित हुआ हो सकता है। दूसरा अनुमान यह है कि उसने इसे सन् १६३७ में बनवाया होगा। क्या रूपरेखांकन और निर्माण करने के लिए एक वर्ष पर्याप्त है अथवा नहीं, वे इस बात का न तो विचार करेंगे और न ही उत्तर देंगे। फिर एक और अनुमान कर लिया जाता है कि शाहजहाँ ने इस भाग को बनवाया तो होगा, किन्तु इस निर्माण से पूर्व उन भागों को गिरा दिया होगा जो उसके दादा अकबर ने बनवाए थे, किन्तु उन्हीं को उसके पिता जहाँगीर ने गिरवाकर फिर पुनः बनवा दिया था। यह तो उन सार्वभौम बादशाहों को उन बेवकूफों के तुल्य बताना है जिनको अपनी पूर्व-पीढ़ी द्वारा निर्मित लाल-किले के विशाल और भव्य भागों को गिराने और उनके स्थान पर नए भागों को बनाने से बढ़कर या उसके अतिरिक्त और कोई कार्य नहीं था। अन्य आश्चर्य की बात यह है कि यद्यपि वे कई असंगत और निरर्थक शिलालेख छोड़ गए हैं किन्तु इन भवनों आदि के निर्माण के सम्बन्ध में एक भी शिला-लेख न बना देने के बारे में वे अत्यन्त लज्जाशील एवं विनम्र प्रतीत होते हैं। तीसरा आश्चर्य यह है कि उन लोगों ने इस भवन-विध्वंस और निर्माण के कार्य को इतनी चुप्पी और तेजी तथा रहस्यमय जादू से सम्पन्न किया कि उनके रूपरेखांकन, नमूने और उनके लिए संरचीकृत व्यय के कोई अभिलेख भी शेष नहीं हैं। शिक्षा के क्षेत्र के लिए यह दया और शर्म की बात है कि भारत में ब्रिटिश शासन काल में इस प्रकार की अपृच्छित, असत्यापित अष्टम-पष्टम बातें बहुविध इतिहास के रूप में प्रचारित-प्रसारित होती रहीं और इसी कारण ऐतिहासिक स्थलों पर दर्शकों को दिए जाने वाले पर्यटक

और पुरातत्वीय साहित्य में ये बातें परिपूर्ण अधिभाषणों के अति पवित्र आधार हो गई हैं और शोधकर्ता विद्वान् इन बातों को अत्यधिक ध्यान देने योग्य सामग्री के रूप में उल्लेख करते हैं।

तथाकथित खास महल में, जिसके बारे में कल्पना की जाती है कि इसे शाहजहाँ ने बनवाया था, विश्वास किया जाता है कि कदाचित्, मुख्य संगमरमरी भवन, तथाकथित अंगूरी बाग, उत्तर और दक्षिण की ओर दर्शक-मंडप, बाग के चारों ओर प्रकोष्ठ और शीशमहल सम्मिलित थे।

मुख्य प्रांगण के पूर्व में तथाकथित अंगूरी बाग के फर्श से लगभग चार फीट की ऊँचाई पर, यमुना जल-मुख के सम्मुख, धवल स्फटिक (संगमरमर) के तीन दर्शक-मंडप हैं।

यहाँ चबूतरे के मध्य में एक पानी का तालाब है जिसमें प्राचीन हिन्दू फव्वारा लगा है। फव्वारे के उत्तर और दक्षिण में दर्शक-मंडप हैं जो छिद्रित और सपाट संगमरमर के टुकड़ों वाले परदों से पृथक् किए गए हैं। हिन्दू दर्शक-मंडपों और राजमहलों में पत्थर के परदों की परम्परा इतनी ही पुरानी है जितना पुराना स्वयं रामायण महाकाव्य है। रामायण में, राम और रावण के महलों के वर्णन-समय ऐसे पत्थर के परदे बारम्बार उल्लेख किए जाते हैं।

केन्द्रीय प्रांगण के पश्चिम में तीन तोरणद्वार हैं जो एक बड़े कमरे में जाते हैं। इसी के ठीक सामने, पूर्व की ओर, नदी के ऊपर तीन खिड़कियाँ हैं जो पश्चिमी तोरणद्वारों के समरूप हैं। दीर्घा की भीतरी छतें और कमरे की छत भी, यद्यपि आज साफ संगमरमर की हैं, (शाहजहाँ के दरबारी तिथिवृत्त) बादशाहनामा के अनुसार स्वर्ण और अन्य रंगों में बहुविध सुसज्जित और चित्रित थे। उनके चिह्न अब भी विद्यमान हैं। यह तथ्य हमारे उस निष्कर्ष को पुष्ट करता है कि यदि मुस्लिम आधिपत्यकर्ताओं ने कुछ किया है, तो मात्र इतना ही कि उन्होंने प्राचीन हिन्दू लालकिले के भागों को विद्रूप किया, उन्मूलित किया, अपवित्र किया, क्षति पहुँचाई और विनष्ट किया किन्तु इनमें कोई परिवर्तन नहीं किया।

यहाँ की दीवारों में आले बने हुए हैं जिनमें हिन्दू देव-प्रतिमाएँ सुशोभित होती थीं, जो मुस्लिम आधिपत्य की अनेक शताब्दियों में उन स्थानों से

उखाड़ी गईं और चकनाचूर करके दूर फेंक दी गई प्रतीत होती हैं। मार्ग-दर्शकों अथवा मार्गदर्शिका-पुस्तिकाओं द्वारा बताई जाने वाली वे कहानियाँ उग्रवादी झूठी कथाएँ हैं कि इन आलों में रखे जाने वाले मुगल बादशाहों के चित्रों को सन् १७६१-६४ ईस्वी में किले पर हिन्दुओं का विजयी ध्वज फहराने वाले जाटों ने नष्ट कर दिया था। इस्लाम सभी प्रकार के चित्री-करण से नाक-भौं सिकोड़ता है। मुगल बादशाहत रूढ़िवादी, दकियानूसी मुल्लाओं और काज़ियों से सदैव घिरी रहती थी। जो लोग स्वयं पैगम्बर-मोहम्मद का चित्र ही सहन नहीं कर सकते, वे इस्लामी राजमहलों में मुगल बादशाहों के चित्रों को सजाने, लगाने की अनुमति कभी नहीं दे सकते थे। इसलिए, वहाँ कोई मुगल चित्र नहीं थे। किन्तु उन्हीं स्थानों पर हिन्दू देव-प्रतिमाओं का होना निश्चित है जैसाकि स्वयं मुस्लिम वर्णनों में प्रायः स्वीकार किया जाता है चाहे वह किसी अज्ञात जोधबाई या जोधाबाई के नाम में ही क्यों न हो।

नीचे के केन्द्रीय प्रांगण में एक ४२ फीट लम्बा और २९ फीट चौड़ा तालाब है जिसके लाल पत्थर के तल पर पाँच फव्वारे और ३२ टोंटियाँ लगी हैं। जल-निर्गामी प्रवाहिका में टेढ़ा-मेढ़ा जटिल कार्य अभी भी संस्कृत के 'पृष्ट-माही' (जिसे इस्लाम में गलती से पुष्टे-माही उच्चारण किया जाता है) नाम से पुकारा जाता है जिसका अर्थ मछली का पृष्ठ है क्योंकि वह मछली के छिलके जैसा दिखाई पड़ता है। इन फव्वारों और टोंटियों से बल-बल करता हुआ पानी पूर्वोल्लिखित तथाकथित जहाँगीरी महल छत पर बने तालाब से ही आता था।

भारतवर्ष में ऐतिहासिक अनुसन्धान किस प्रकार गड़बड़ और ऊट-पटाँग स्थिति को पहुँचा हुआ है, उसका एक स्पष्ट, विचित्र उदाहरण श्री हुसैन की निम्नलिखित टिप्पणी से मिलता है :

[६]"भवन में कोई शिलालेख नहीं हैं, किन्तु हेवेल और नेविल तथा अन्य लोग इसका निर्माण सन् १६३६ ई० में होने की तारीख के बारे में एक लम्बे फारसी शिखालेख का उल्लेख करते हैं। लतीफ एक कदम और आगे

६. 'आगरे का किला', लेखक श्री एम० ए० हुसैन, पृष्ठ १५-१६।

जाता है और इसका पाठ भी प्रस्तुत करता है जिससे निष्कर्ष निकालना पड़ता है कि इसको दीवाने-खास में शिलालेख से भ्रमित किया गया है।" हम इस बात को किले के दर्शनार्थियों और भावी शोधकर्ताओं के ऊपर ही छोड़ देते हैं कि वे देखें, इस बात की खोज करें कि श्री हुसैन सही कहते हैं अथवा अन्य लोग। किन्तु हम तो श्री हुसैन के उपर्युक्त पर्यवेक्षण के आधार पर आंग्ल-मुस्लिम अनुसन्धान में अन्ध-विश्वास स्थापित करने के विरुद्ध उनको सावधान अवश्य करना चाहेंगे।

उत्तरी दर्शक-मण्डप

उत्तरी दर्शक-मण्डप, जिसके उत्तरी छोर पर सम्मान (उपनाम मुसम्मन उपनाम मुत्थम्मन) बुर्ज है, पूरा-का-पूरा सफेद संगमरमर का बना हुआ है। इसका चबूतरा ५३ × १८½ फीट है और इसमें दो कमरे तथा एक केन्द्रीय महाकक्ष बना हुआ है। कमरे भीतर की ओर लगभग १३ फीट वर्ग के हैं। महाकक्ष का बाहरी नाप २२ × १८ फीट है। प्रत्येक दीवार में दो गहरे और कुछ उथले आले हैं। कहा जाता है कि बादशाह अकबर उसमें से एक आले में प्रतिदिन प्रातःकाल एक जवाहर रख दिया करता था। जो उसको सबसे पहले ढूंढ़ लेता था, उसी व्यक्ति को उस दिन बादशाह के सान्निध्य में रह सकने का सौभाग्य प्राप्त हो जाता था।

किले के दर्शनार्थियों और इतिहास के विद्यार्थियों को उग्रवादी मार्ग-दर्शिका-पुस्तकों अथवा मार्गदर्शकों द्वारा बताए जाने वाले मुस्लिम इतिहास की ऊल-जलूल कहानियों से पूरी तरह सावधान रहना चाहिए। श्री हुसैन ने उपहास करते हुए ठीक ही लिखा है :[७] "अकबर की मृत्यु के ३२ वर्ष बाद इस स्थान का निर्माण करने से परम्परा की बेहूदगी स्वतः स्पष्ट हो गई है। तथ्य तो यह है कि शाहजहाँ के दरबारी तिथिवृत्त लेखक मुल्ला अब्दुल हमीद लाहौरी ने उल्लेख किया है कि यह भवन शाहजहाँ की सबसे बड़ी कन्या जहानआरा का निवास-स्थान था। ये मकान जहुविध रूप में स्वर्ण और रंगों से अलंकृत थे, और घुमावदार परिसीमित पक्षों वाली बाहरी छत,

७. आगरे का किला, लेखक श्री एम० ए० हुसैन, पृष्ठ १६।

जिसमें से ताँबे के मुलम्मे वाले नुकीले मेख निकले हुए थे, प्रारम्भिक अवस्था में सोने से मढ़ी हुई थी (बादशाहनामा, फ़ारसी पाठ, खण्ड-१, पृष्ठ २४२)।"

यद्यपि श्री हुसैन अकबर की किंवदन्ती पर ठीक ही उपहास कर रहे हैं, तथापि उनके तर्क असंगत, गलत हैं। उनका यह गलत विश्वास है कि वह राजमहल अकबर की मृत्यु के लगभग ३२ वर्ष बाद बना था। हम जानना चाहते हैं कि उनको यह बात किसने बताई? उनके वर्णन में समाविष्ट 'लगभग' शब्द स्वयं ही इस बात का द्योतक है कि वे ऊल-जलूल अनुमानों में लिप्त हो गए हैं, जो आंग्ल-मुस्लिम विद्वत्ता की भारी विशिष्टता है। हमारे अनुसार तो लालकिले के प्राचीन हिन्दू राजघराने के अनेक भागों का अंश यह राजमहल अकबर की मृत्यु के ३२ वर्ष बाद नहीं, अपितु अकबर के जन्म से संभवत: २३ शताब्दियों पूर्व बना था।

यदि शाहजहाँ की बेटी जहानआरा उन कमरों में रही थी—जो फिर आंग्ल-मुस्लिम अटकलबाजी है—तो भी इस बात से उस भवन की निर्माण आयु में क्या अन्तर पड़ता है? इसका अर्थ यह तो नहीं है कि इसका निर्माण केवल तभी हुआ था जब उसको इसमें रहने की आवश्यकता पड़ी थी? लाल-किले के चिर अतीत बहुविध जीवन के इतिहास में लालकिले पर जिनका आधिपत्य रहा, उन्हीं में से एक वह भी थी। इसकी ढालू छत जिसमें धातु की कीलें बाहर निकल रही थीं, स्वर्ण सहित रंग-बिरंगी चित्रकारी-अलंकृत इसके हिन्दू मूलक होने का अतिरिक्त प्रमाण है। हिन्दू राजघरानों की पाल-कियों और देवी-देवताओं की पूजा के स्थानों में ऐसी ही ढालू छतें होती हैं जिनमें से दो या तीन त्रिशूल छत के बाहर तक निकले होते हैं। किले के मूल हिन्दू स्वामिगण जब इस्लामी आक्रामकों के सम्मुख पराजित हो गए, तब जितनी भी बार क़िले को लूटा, उन्हीं लूट प्रक्रियाओं में स्वर्ण की चादरें भी लूट ली गईं।

किन्तु अकबरी-किंवदन्ती को अनेक अन्य आधारों पर भी तिरस्कृत-अस्वीकृत किया जा सकता है। पहली बात तो यह है कि यह सुझाव प्रस्तुत करना ही बेहूदगी है कि अकबर के पास इतने जवाहर थे कि वह अपनी ५० वर्षीय लम्बी शासन अवधि में प्रतिदिन बालसुलभ-रंगरेलियों में अन्य लोगों को व्यर्थ ही दे देता। वह तो मिदास जैसा अतिकृपण बादशाह था और धन

को जोड़कर उस कोषागार की स्वयं इतना अत्यन्त द्वेष-भावना से रक्षा करने वाला व्यक्ति था। दूसरी बात यह है कि वह स्वयं इतना व्यस्त रहता था कि उसके पास अति-व्ययसाध्य रंग-रेलियों के लिए समय ही नहीं था। तीसरी बात यह है कि अपने सेनानायकों और सम्बन्धियों-अन्तरंगों के सतत विद्रोहों तथा लगातार आक्रामक युद्धों के कारण वह स्वयं ही अत्यधिक सताया हुआ था। चौथी बात यह है कि अकबर की रात्रि की भोग्या-पत्नी अथवा कमरे के बाहर प्रतीक्षा करने वाले सेवक के अतिरिक्त और किस व्यक्ति को वह जवाहर मिल सकता था ? यदि उन दोनों में से ही किसी को जवाहर मिलता था तो उनके ऊपर दिन-भर अकबर के साहचर्य की कृपा होने का कोई अर्थ नहीं था। वे तो पत्नी अथवा सेवक के रूप में दिन-भर, हर समय बादशाह के साथ होते ही थे। पाँचवीं बात यह है कि प्रतिदिन या एक-एक दिन छोड़कर जवाहर प्राप्त करने वालों को अतिशीघ्र ही इतना धनाढ्य हो जाना चाहिए कि उनको किसी बादशाह की अनुनय-विनय करने की और आवश्यकता अनुभव ही नहीं करनी चाहिए। विश्वासयोग्य तथ्यों से अतिशयोक्तिपूर्ण कपोल कल्पनाएँ पृथक् करने के लिए इतिहास का उपर्युक्त भाँति तर्कयुक्त, अधिवक्ता, वकील जैसा विश्लेषण आवश्यक है।

दक्षिणी दर्शक-मण्डप

यद्यपि रूपरेखांकन में समान है, तथापि दक्षिणी दर्शक मण्डप लाल बालू-पत्थर का बना प्रतीत होता है और इसके ऊपर थोड़ा-सा पलस्तर भी किया हुआ है। इसमें एक मेहराबदार मोहरा है। इसका हिन्दू-अलंकरण विद्रूप कर दिया गया है और स्वर्ण की चादरें लूट ली गई हैं। (शाहजहाँ के दरबारी तिथिवृत्त) 'बादशाहनामा' के अनुसार यह बंगला-ए-दर्शन-ए-मुबारक' अर्थात् वह स्थान है जहाँ शाहजहाँ सामान्य जनता को दर्शन दिया करता था।

तलघर

खास महल के दक्षिणी पहलू में बनी हुई सीढ़ियों से भू-गर्भीय तहखानों

के चक्रव्यूह में पहुँच जाते हैं :[८] "उनके पास ही अँधेरी कोठरियाँ हैं जो दुराचारी दास-कन्याओं को बन्दी रखने के प्रयोजन से बनायी गई कही जाती हैं।" 'दुराचारी दास-कन्या' शब्दावली को मध्यकालीन मुस्लिम तिथिवृत्तों की प्रिय वाक्य-शैली के संदर्भ में ठीक प्रकार से समझने की आवश्यकता है। मध्यकालीन मुस्लिम शब्दावली में 'दास' शब्द का अर्थ प्रायः 'हिन्दू' होता था। और, एक 'दुराचारी दास-कन्या' का अर्थ उस अपहृत हिन्दू बाला से होता था जो मुगल परिवेश में उग्रवादी, नृशंस लम्पटता के सम्मुख भी अपने घुटने नहीं टेकती थी।

शीशमहल

ताजमहल के प्रकोष्ठों के उत्तर-पूर्व छोर में भू-तल पर ही शीशमहल है। यह एक विशिष्ट हिन्दू राजमहल-प्रकोष्ठ है। प्राचीन और मध्यकालीन हिन्दू राजघरानों के भवनों में अवश्य ही एक शीशमहल होता था, अर्थात् एक ऐसा कमरा जिसकी भीतरी छत तथा दीवारों के ऊपरी भाग ढालू होते थे जिनमें छोटे-छोटे काँच के अनगिनत टुकड़े जड़े होते थे। भीतर मोमबत्ती या मोमबत्तियाँ अथवा दियासलाई की एक सींक जलाने और कमरे में इधर-उधर हिलाने पर उन काँच के टुकड़ों में हज़ारों दीप-शिखाएँ, प्रकाश-किरणें प्रज्वलित होती दीख पड़ती थीं। इस कार्य से प्राचीन हिन्दुओं को दीपावली जैसा आह्लादकारी वातावरण अनुभव होने लगता था, यही इसका हिन्दुओं के लिए महत्त्व था।

इस प्रकार के सज्जाकारी काँच के टुकड़े— शीशे—हिन्दुओं द्वारा न केवल भवनों को सजाने-सँवारने अपितु महिलाओं की वेशभूषा का सौंदर्य-वर्धन करने के काम में भी आते थे। इन वस्त्रों में पोलके और घाघरे भी होते थे। इस प्रकार के प्रतिबिम्बकारी काँच के टुकड़ों की बात मुस्लिम लोग कभी पसन्द नहीं करेंगे क्योंकि वे कठोर एवं मोटे परदे एवं बुरके में विश्वास करते हैं। किन्तु शीशमहल चूँकि विजित हिन्दू सम्पत्ति थी, अतः यह मुगलों को उसी प्रकार स्वागत योग्य थी, जिस प्रकार मुफ्त की शराब काज़ी को

---

८. आगरे का किला, लेखक श्री एम० ए० हुसैन, पृ० १७।

भी हलाल होती है। उनको इसे ग्रहण कर लेने के अतिरिक्त और कोई चारा ही न था, क्योंकि वे डरते थे कि उनके धर्मान्ध तोड़-फोड़ से उनको ही डर था कि कहीं सम्पूर्ण भव्य राजमहल आवास अयोग्य न हो जाए। अनेक प्रमुख कारणों में से एक कारण यही है कि हमें मुस्लिम आधिपत्य की अनेक शताब्दियों के बाद भी कई प्राचीन हिन्दू भवनों में स्थावर सम्पत्ति ज्यों-की-त्यों देखने को मिल जाती है।

उदाहरण के लिए यह कहानी सफेद झूठ प्रतीत होती है कि फिरोजशाह तुगलक ने अति दूरस्थ स्थानों से दो अशोक-स्तंभ उखाड़े और उनको दिल्ली तक ढोकर ले आया। यह मनघढ़न्त कथा केवल नई दिल्ली स्थित फिरोज़शाह कोटला नामक किले में लगे हुए एक स्तंभ की विद्यमानता के स्पष्टीकरणस्वरूप प्रस्तुत की जाती है। अनुमान किया जाता है कि यह किला उसी ने बनवाया था। यदि उसने इसका निर्माण करवाया होता तो यह ध्वस्तावस्था में नहीं होता। दूसरी बात यह है कि जैसा धर्मान्ध था, उसके अनुसार यदि उसने इसका निर्माण करवाया होता तो वह इसके ऊपर 'विधर्मी,काफिराना' स्तंभ लगवा कर इसे 'कलंकित' न करता। वह निम्नतम शयन-कक्ष में लेटा हुआ शान्तिमय इस्लामी निद्रा के समय एक बार अपनी पलक भी नहीं झपक सकता था, यदि उसके ऊपर 'विधर्मी' स्तंभ अपना मस्तक ऊँचा किए होता।

हमारा स्पष्टीकरण है कि फिरोज़शाह ने अपने निवास-स्थान के लिए एक विजित हिन्दू गढ़ी (किले) को चुन लिया। वह गढ़ी अशोक के काल की होने के कारण उसकी छत पर अशोक का एक स्तम्भ लगा हुआ था। अपने असहनशील इस्लामी जोश में फिरोजशाह ने कदाचित् इसे उखाड़ देने का यत्न किया और उसी दुष्प्रयत्न में उसका कुछ ऊपरी भाग तोड़ दिया (जैसा सभी दर्शकों को स्पष्टतः दृष्टिगोचर होता है)। फिर उसको कुछ सद्बुद्धि आ गई प्रतीत होती है क्योंकि क्रोधित, अकुशल और अशिक्षित इस्लामी कार्य-निष्पादन स्वरूप नीचे गिरने वाले स्तम्भ ने अनेक प्रकोष्ठों को नष्ट कर दिया होता और उसी मुख्य केन्द्रीय राजमहल के कमरे में विशाल विवर कर दिया होता जिसके ऊपर वह बना हुआ था। इन सब भयप्रद संभावनाओं का फिरोजशाह के इस्लामी उन्माद और जोश पर प्रभाव पड़ा और उसे

'विधर्मी' उच्च स्तम्भ वाले किले में जीवनयापन करने की यातना का भोग करना पड़ा। चूंकि यह बर्दाश्त तत्कालीन मुस्लिम उग्रवादी जनता को स्पष्ट कर सकनी कठिन थी, अतः शम्से शीराजअफ़ीफ जैसे दरबारी चापलूसों को हिदायतें दी गई थीं कि वे यह बात प्रस्तुत कर दें कि फिरोज़शाह ने स्वयं ही वे दोनों 'विधर्मी' स्तम्भ निकट की एक नगण्य नगरी से उखाड़कर उनमें से एक अपने ही राजमहल में दिल्ली में गढ़वा लिया था। (विश्वविद्यालय के पास दिल्ली-पहाड़ी पर लगा हुआ दूसरा स्तम्भ भी अशोक काल का ही है)। यदि उसने उन दोनों को लाने का ही सोच था तो वह उन दोनों को ही एकरूपता में अपने किले के सामने या ऊपर लगवा सकता था। वह उन दोनों को पृथक्-पृथक् कई मीलों के अन्तर पर, एक किले पर और दूसरा दिल्ली की पहाड़ी पर क्यों लगाता ? उसे घृणित हिन्दू स्तम्भों को उखाड़ने, यहाँ से वहाँ भेजने और पुनः स्थापित कराने में बहुमूल्य समय और धन का अपव्यय करने के अतिरिक्त क्या और कोई सत्कार्य करना शेष नहीं था ? क्या उसे सब समय युद्धों और विद्रोहों की भीषण यन्त्रणा से पीड़ा नहीं पहुँच रही थी ? यदि उसका वश चला होता तो उसने तो अशोक-स्तंभों को चूर-चूर कर दिया होता क्योंकि उनमें हिन्दू धार्मिक शिक्षाएँ भरी पड़ी हैं।

हिन्दू ध्वानिकी

प्राचीन हिन्दू निर्माण-शास्त्र (इंजीनियरी) की एक विशिष्टता यह थी कि उनकी प्रस्तर या ईंट-पत्थर की चिनाई की हुई इमारत में ध्वनि हुआ करती थी। इस प्रकार उदाहरणार्थ, लम्बी धारी वाले पत्थर के स्तम्भ (कुछ मन्दिरों में) किसी पत्थर या फौलाद के टुकड़े से बजाने पर हिन्दू संगीत-शास्त्र के सात मूल स्वरों की प्रतिध्वनि करते हैं। अब मकबरे के रूप में परिवर्तित बीजापुर का गोल-गुम्बज ग्यारह शुण्डाकार ध्वनियाँ उत्पन्न करता है। आगरे का ताजमहल जो एक हिन्दू राजमहल मन्दिर संकुल है, ऐसे गुम्बद से युक्त है, जो उसके भीतर कहे हुए या बजाए हुए स्वरों की गर्गल करती हुई स्पंदन-ध्वनि को प्रस्तुत करता है। इसी प्रकार शीशमहल की दीवारों पर हाथ की मुट्ठी या हथेली से आलों के अन्दर और बाहर थपथपाने पर हिन्दू तबले और तालवाद्य के स्वर प्रतिध्वनित होते हैं।

हिन्दू स्नानघर

शीशमहल में दो मुख्य कमरे हैं—प्रत्येक का माप लगभग ३८×२२ है। भीतर वाला कमरा स्नानघर था जिसमें फव्वारे सहित एक जल-कुंड था। भीतरी कमरे के एक छिद्र से ढालू पत्थर के एक स्तम्भ पर से बाहरी कमरे के मध्य में बने जल-कुंड में पानी बहा करता था। इस कमरे की पूर्वी दीवार में एक फाटक देखा जा सकता है। इसमें अब लोहे का दरवाज़ा लगा है और यह बन्द है। किन्तु इसकी लोहे की सलाखों में से अँधेरी उतरती सीढ़ियों की पंक्ति अब भी देखी जा सकती है जो बाहर सड़क के धरातल तक नीचे गई है ताकि नदी तक पहुँचने का मार्ग रहे। अँधेरी सीढ़ियों से ऊपर चढ़ने वाली तेज़ ठंडी बयार इतिहास के अँधेरे मार्ग की ओर झाँकने वाले प्रत्येक दर्शक को ग्रीष्मऋतु की लपलपाती गर्मी में भी सुखदायी शीतलता प्रदान करती है जिससे दर्शक को प्राचीन हिन्दू रचना-कला (इंजीनियरी) की अद्‌भुत उत्तमता पर आश्चर्य, विस्मय ही होता रहता है।

अंगूरी बाग

खास महल के सामने २२०×१६९ फीट का चतुष्कोणात्मक प्रांगण अंगूरी बाग के नाम से पुकारा जाता है। सम्भव है कि प्राचीन हिन्दू निर्माताओं ने उस प्रांगण में अंगूर-वल्लरियाँ लगा रखी हों। मुस्लिम शासन के अन्तर्गत किसी भी हरियाली की कल्पना नहीं की जा सकती है। हत्याओं और नरसंहारों के माध्यम से मुस्लिम अपहरणों, लूटपाटों के नित्य परिवर्तनशील युग में ऐसी वनस्पतियों का रोपण, संवर्धन किसी दीर्घावधि तक सम्भव नहीं है। साथ ही प्राचीन हिन्दुओं द्वारा लगाई गई जल-प्रवाही विधियाँ ही रख-रखाव की जानकारी के अभाव में पूर्णतः ठप्प हो गई थीं; मुस्लिम राजगद्दियों के प्रतियोगी दावेदारों ने लगातार पीढ़ियों तक अस्त्र-शस्त्रों के निर्माण-हेतु धातु जलप्रणाली को लूट लिया था। अतः अंगूर-बल्लरियों की परम्परा भी किले के हिन्दू मूलोद्‌गम की कालयापी निशानी है।

चतुष्कोण के मध्य में संगमरमरी चबूतरा है जो लगभग ४८ फीट वर्ग है, जिसके बीच में १८ फीट चौड़ी रश्मि-युक्त पगडंडियाँ हैं। पूर्व दिशा में,

संगमरमरी छत के नीचे एक छोटा-सा जल-कुंड है।

उद्योग-चतुरांगण उत्तर, दक्षिण एवं पश्चिम की तीन दिशाओं में एक दुमंजिले लाल-बालुकाश्म भवन से घिरा हुआ है जिसमें कमरों की कई पंक्तियाँ हैं। उनके भीतर अत्युत्तम प्राचीन हिन्दू चित्रकारी के चिह्न अभी भी खोजे जा सकते हैं, यद्यपि उनको मुस्लिम आधिपत्य की शताब्दियों में रगड़-रगड़कर मिटाने का यत्न किया गया है।

खासमहल चतुष्कोण के पश्चिमी पार्श्व में एक केन्द्रीय दरवाजा है जिसमें से प्रविष्ट होकर बने दीवाने आम में जाया जाता है।

अष्टकोणात्मक स्तम्भ

उत्तरी दर्शक-मण्डप के उत्तरी छोर पर एक सुन्दर दुमंजिला अष्ट-कोणीय दर्शक-मण्डप है। यह मुसम्मन, मुथम्मन अथवा सम्मन बुर्ज आदि के अनेक पृथक्-पृथक् नामों से पुकारा जाता है। श्री हुसैन ने एक पदटीप में स्पष्टीकरण दिया है : [९]"मुथम्मन बुर्ज शब्द को चमेली-स्तम्भ गलत अनु-वाद किया गया है। इसका वास्तविक अर्थ अष्टकोणात्मक स्तम्भ है।" श्री हुसैन सही रास्ते पर हैं। संस्कृत के आठ कोणों वाला खम्भा अष्टकोणात्मक स्तम्भ कहलाता है। लालकिले के विदेशी मुस्लिम आधिपत्यकर्ताओं के लिए इस शब्द का उच्चारण कठिन होने के कारण यह शनैः-शनैः थम्मन अथवा थमन कहलाने लगा। लगभग पाँच शताब्दियों तक मुस्लिम शासन में रहने के बाद भी, आज हमारे अपने ही युग तक भी आगरे के लालकिले में प्राचीन संस्कृत हिन्दू शब्दावली का प्रचलित रहना इसकी हिन्दू परम्परा का एक अन्य द्योतक तत्त्व है।

सदा की ही भाँति इसकी निर्माण-रचना अनिश्चित है क्योंकि इतिहास-कार इसको इस्लामीमूलक होने का गलत अनुमान करते रहे हैं। किले के शेष भागों की तरह ही यह भी हिन्दू-मूलक, हिन्दू-कलाकृति है। इसकी अष्ट-कोणात्मक आकृति और अभी तक प्रचलित इसका अपभ्रंश संस्कृत नाम इस बात के स्पष्ट प्रमाण हैं। आधुनिक इतिहासकारों में से कौन, हेवेल और

९. आगरे का किला, लेखक श्री हुसैन, पृष्ठ २०।

फर्ग्युसन जैसे कुछ लोग इसका निर्माण-श्रेय जहाँगीर को देते हैं जबकि श्री हुसैन तथा अन्य लोग विश्वास करते हैं कि इसको बनाने का आदेश शाहजहाँ ने दिया था। दोनों ही अशुद्ध, गलत हैं। श्री हुसैन ने टिप्पणी की है कि :[१०] "समकालीन इतिहासकार मुल्ला अब्दुल हमीद लाहौरी ने इसका निर्माण-श्रेय साफतौर पर शाहजहाँ को दिया है और इसमें किसी प्रकार का सन्देह-स्थल नहीं छोड़ा है।" हम इस सम्बन्ध में इतिहासकारों को सावधान करना चाहते हैं कि वे मध्यकालीन मुस्लिम तिथिवृत्तों और शिलालेखों को पढ़ने, उनको समझने तथा उनकी व्याख्या करने में अत्यन्त सतर्क रहें। सावधानी-पूर्वक पढ़ने पर उनको मालूम हो जाएगा कि इस्लामी तिथिवृत्तों में अस्पष्ट सन्दर्भों का प्रयोजन पाठकों को धोखा देना मात्र है। तथ्य रूप में यह बात कुछ अंश तक अनुभव में आई है क्योंकि फर्ग्युसन, कीन और हेवेल जैसे विवेकशील इतिहासकार, जिनकी इस्लामी ग्रन्थों में कोई उग्रवादी रुचि नहीं थी, मुल्ला अब्दुल हमीद लाहौरी के द्विअर्थक सन्दर्भों से उतने अधिक प्रभावित नहीं हुए थे, जितने श्री हुसैन हुए थे।

पुरातत्व विभाग के इंशा अल्ला खाँ नामक एक चपरासी को स्तम्भ की दूसरी मंजिल में एक छोटा-सा काँच, इस उद्देश्य से, लगाने के लिए दिया गया था कि दर्शकों को उस अद्भुत सज्जाकारी-सौंदर्य-छटा का कुछ अनुमान हो जाय जो स्तम्भ के प्रवेशद्वार और स्तम्भ की अन्य दीवारों पर सजे हुए उन छोटे-छोटे काँच के टुकड़ों से होती थी जो नदी के दृश्य और उसके पार कुछ दूरी पर स्थित ताजमहल के हिन्दू राजमहल-मन्दिर संकुल को प्रतिबिम्बित करते थे।

ताजमहल की प्रतिबिम्बित छाया का लाभ उठाते हुए कुछ निहित स्वार्थ रखने वाले व्यक्तियों ने यह उग्रवादी कथा प्रचारित कर दी कि शाहजहाँ इस स्तम्भ में बन्दी रखा गया था। और वह अपनी मृत बेगम मुमताज महल के साथ विवाहित जीवन में व्यतीत की गई सुखद घड़ियों की स्मृति में ताजमहल की प्रतिबिम्बित छाया को देखता हुआ अपनी बन्दी अवस्था के दिन यहीं बिताया करता था।

---

१०. आगरे का किला : लेखक : श्री एम० ए० हुसैन, पृष्ठ २०।

इस मनगढ़न्त कथा का खोखलापन 'ताजमहल हिन्दू राजभवन है'[११] शीर्षक पुस्तक में भली-भाँति प्रदर्शित कर दिया गया है। उसमें यह स्पष्ट कर दिया गया है कि स्वयं ताजमहल भी शाहजहाँ द्वारा कभी बनवाया नहीं गया था बल्कि उससे शताब्दियों-पूर्व ही विद्यमान था। वह प्रतिबिम्बकारी काँच का टुकड़ा तो स्तम्भ में अभी मात्र ४० वर्ष पूर्व ही लगाया गया था जबकि मुमताज लगभग २४० वर्ष पूर्व मरी थी। अतः यह कहना बिल्कुल बेहूदा है कि शाहजहाँ उस छोटे-से काँच में २४० वर्ष पूर्व भी टकटकी लगाता था, जबकि उस काँच को लगाए हुए ही ४० वर्ष हुए हैं। साथ ही, शाहजहाँ को उस अष्टकोणात्मक स्तम्भ में बन्दी बनाया ही नहीं गया था। वह स्थान शाही शान-शौकत और सम्मान का प्रतीक, श्रेष्ठ स्थान होने के कारण अपहरणकर्ता औरंगज़ेब बादशाह द्वारा स्वयं अपने लिए ही सुरक्षित रख लिया गया था। उसने तो अपने बाप को कम महत्त्वपूर्ण और सादे भू-तलीय प्रकोष्ठों में से एक में धकेल दिया था। यदि उसको वहाँ बन्दी रखा भी होता तो वह उस काँच में टकटकी लगाने की बजाय, मुड़कर सम्पूर्ण ताजमहल को स्वयं ही देख सकता था। वैसे शाहजहाँ पर्याप्त वृद्ध हो जाने के कारण अष्टकोणात्मक स्तम्भ की सीढ़ियाँ नहीं चढ़ सकता था। वृद्ध शाहजहाँ, जिसकी नेत्र-ज्योति धीरे-धीरे क्षीण होती जा रही थी और कमर दर्द करती रहती थी, एक विकट-स्थिति में अपनी गर्दन ऊपर उठाए ताज-महल को दिन भर उस छोटे काँच में ताकता हुआ खड़ा नहीं रह सकता था। सम्पूर्ण कथा बेहूदी, अतिशयोक्तिपूर्ण, मनगढ़न्त और असत्य है।

पच्चीसी प्रांगण

सम्मान बुर्ज की निचली मंजिल में एक प्रांगण है जो लगभग ४४ × ३३ फीट का है और वर्गाकार संगमरमरी पत्थर के टुकड़ों की पट्टी से बना हुआ है, जिससे यह हिन्दू-खेल पच्चीसी के फलक का नमूना प्रस्तुत करता है। कोई भी मुसलमान यह खेल नहीं खेलता। आगरे के लालकिले का हिन्दू स्वामित्व और मूलोद्गम प्रमाणित करने वाला यह एक अन्य

११. श्री पी एन० ओक० कृत 'ताजमहल हिन्दू राजमहल है'।

साक्ष्य है। इसी प्रकार के फलक का नमूना फतहपुर-सीकरी के प्रांगण में भी बना हुआ है और उसको अब हिन्दू स्वामित्व व मूलोद्गम का सिद्ध किया जा चुका है, यद्यपि मध्यकालीन इस्लामी प्रवंचनाओं द्वारा भ्रमित, भारी भूल करने वाले इतिहासकारों ने उसका निर्माण-श्रेय गलती से अकबर को दिया है।

उत्तर की ओर एक चबूतरा है जो लगभग ३३ × १७ फीट आकार का है, और पूर्व व उत्तर दिशा में संगमरमरी पत्थर की जालियों से बन्द है।

अष्टकोणात्मक सम्मान बुर्ज के भूमि-तल पर बना बड़ा कमरा भीतर की ओर ४० × २२ फीट है। इसके मध्य में बहुत सुन्दर ढंग से अलंकृत और बहु-विध उत्कीर्ण एक जल-कुंड है। इसकी मेहराबदार संगमरमरी छत जो कभी स्वर्ण सहित विभिन्न रंगों से चित्रित रहती थी, आज शून्य, अनावृत प्रतीत होती है क्योंकि इस्लामी शासन के अन्तर्गत शताब्दियों की उपेक्षा या जान-बूझकर विद्रूपण का ही यह एक फल है।

निकटवर्ती अष्टकोणात्मक कमरे को ही कुछ लोग गलती से वह स्थान बताते हैं जहाँ सन् १६६६ ई० में शाहजहाँ बादशाह मरा था। इस बात को चूंकि पहले ही स्पष्ट किया जा चुका है कि शाहजहाँ को किले के किसी अन्य भाग में ही कैद किया गया था, इसलिए अष्टकोणात्मक स्तम्भ के साथ शाहजहाँ के तथाकथित साहचर्य, सम्पर्क की बातें, सभी गलत हैं। अष्ट-कोणात्मक कमरे की प्रत्येक भीतरी दीवार का माप १८ फीट है। उनमें से प्रत्येक के बीच में एक दरवाज़ा है।

अष्टकोणात्मक कमरे की परिधि के साथ-साथ एक ११ फीट चौड़ा गलियारा है।

पच्चीसी-प्रांगण के पश्चिम में संगमरमरी फर्श वाला एक कमरा है जिसमें एक जल-कुंड एवं झरना है। प्रांगण के पश्चिमी पार्श्व में फाटक लगे हैं जो प्राय: ताला बंद रहते हैं। उनमें से एक २२ × २० फीट वाले कमरे में खुलता है और शीशमहल से भी जुड़ा हुआ है। दूसरा फाटक 'चमकदार पत्थर' से आगे वाली सीढ़ियों का मार्ग प्रशस्त करता है। यह चमकदार पत्थर भी हिन्दू विधि का है। कहा जाता है कि इस भवन के हिन्दू स्वामियों द्वारा इसमें बहुमूल्य मणि-माणिक्य लगाए गए थे, जिनको मुस्लिम आधिपत्य

में उस समय लूटा जाता रहा जबकि मुगल-राजगद्दी को प्राप्त करने की होड़ में बेटों और स्वार्थी दरबारियों के मध्य परस्पर भयंकर युद्ध होते रहते थे। उग्रवादी इस्लामी प्रवंचक-वर्णन इसका सारा दोष जाटों के सिर रखते हैं जबकि सन् १७६१ से १७६४ ई० तक किले पर उनका आधिपत्य रहा था। यह बात निराधार है क्योंकि मुस्लिम गद्दी की होड़ में किला अनेक बार लूटा जाता था, उदाहरणार्थ उस समय जबकि शाहजादा औरंगज़ेब के आगमन से पूर्व, उसके बड़े भाई दारा ने, किले का सदैव के लिए परित्याग करते समय, किले की सम्पूर्ण सम्पत्ति पर हाथ साफ कर दिया था।

तथाकथित मीना-मस्जिद

काले और सफेद संगमरमरी पत्थरों से बने दो सिंहासन-पादकों वाली छत से आगे जाने पर अन्य अनेक प्रकोष्ठों में घिरा हुआ एक छोटा-सा प्रकोष्ठ है जिसे अब मीना-मस्जिद कहते हैं। हमारे निष्कर्ष के अनुसार, प्रत्येक मध्यकालीन मस्जिद पूर्वकालिक हिन्दू मन्दिर था। हमारे ऐतिहासिक शोध के अनुसार ही प्रत्येक ऐसी मस्जिद का नाम भी पूर्वकालिक हिन्दू मन्दिर के नाम के समान ही रख लिया गया था। इस प्रकार, जब किसी सफेदी की हुई सफेद मस्जिद का नाम काली मस्जिद कहलाता हो, तो स्वतः स्पष्ट है कि यह पहले हिन्दुओं की देवी 'काली' का मन्दिर था। इसी प्रकार संस्कृत का 'रत्न' 'मीना' कहलाता है। इस प्रकार, आज जिसे मीना मस्जिद कहकर प्रस्तुत किया जा रहा है, वह पूर्वकालिक हिन्दू 'रत्न' मन्दिर हो सकता है। इसमें एक प्रांगण है जो लगभग २२ फीट वर्ग है जिसकी पटरी पर एक के बाद एक सूर्य-कान्तमणि और संगमरमर के वर्गाकार टुकड़े लगे हैं और एक २२ × १३ फीट वाला कमरा है। उस कमरे में, सम्भव है, हिन्दू देव-प्रतिमाएँ संग्रहीत रही हों। यदि पुरातत्वीय अन्वेषण के प्रयोजन से इसके फर्श और दीवारें खोदी जाएँ तो उनमें से हिन्दू देव-प्रतिमाएँ और संस्कृत शिलालेख निकल सकते हैं क्योंकि इतिहास ने दर्शा दिया है कि यह मध्यकालीन मुस्लिम नित्याभ्यास रहा है कि देव-प्रतिमाओं को दीवारों या पैरों तले कुचलने के लिए वहीं दबा दिया जाय।

श्री हुसैन ने ठीक ही कहा है :[१२] "इसके निर्माण का इतिहास धूमिल, अस्पष्ट है। यह परम्परा अविश्वास्य नहीं है कि इसको अपने बंदी पिता के लिए औरंगज़ेब ने बनवाया था, यद्यपि इसकी पुष्टि किसी अभिलेख से नहीं होती है।" यह प्रदर्शित करता है कि निर्माणात्मक संरचना के सभी मुस्लिम दावे कैसी निराधार, उग्रवादी असत्य कथाएँ हैं।

दीवाने-खास

मुस्लिमों द्वारा दीवाने-खास के नाम से पुकारा जाने वाला यह स्थान पूर्व-काल में प्राचीन हिन्दू सम्राटों का निजी, विशेष व्यक्तियों से भेंट करने का महाकक्ष था। महाकक्ष भूमि-तल पर बने हुए शीशमहल की दूसरी मंजिल है। विशेष निजी व्यक्तियों से भेंट करने के इस महाकक्ष में पूर्व-कालिक हिन्दू परम्परा के अनुकरण पर मुगल-वंश भी शाही मेहमानों, मंत्रियों या दरबारियों से यहीं भेंट करता था। इसका बाहरी कक्ष, बाहर से लगभग ७३ × ३३ फीट है, जबकि भीतरी कक्ष की भीतरी लम्बाई-चौड़ाई लगभग ४० × २६ फीट है। एक त्रिविध तोरणद्वार उनको पृथक् करता है। इस प्रकार के त्रिविध तोरणद्वार हिन्दू परम्परा में विशेष रूप से पुनीत होते हैं। यही कारण है कि फतहपुर-सीकरी का हिन्दू बुलन्द दरवाज़ा और हिन्दू अहमदाबाद का तीन दरवाज़ा, दोनों ही त्रिविध तोरणद्वार हैं।

फर्श से लगभग २० फीट की ऊँचाई पर, बाहर की ड्यौढ़ी की चित्र-वल्लरी पर शाहजहाँ-कालीन कुछ लिखावट मिलती है। जैसा गलती करने वाले कुछ इतिहासकार करते हैं, उस लिखावट से यह निष्कर्ष निकालना गलती है कि शाहजहाँ ने ही उस भवन का निर्माण कराया था। इसके विपरीत असंगत उत्कीर्णांशों का विलोम निष्कर्ष ही निकाला जा सकता है कि उस हिन्दू महाकक्ष को विद्रूप करने का अपराधी शाहजहाँ ही है। इस बात का विवेचन हम इससे पूर्व भी कई अन्य स्थलों पर कर चुके हैं। बाहरी, उत्तर वाले सम्मुख भाग में एक छोटा छेद मुस्लिम-बंदूकों के किले पर गोला-बौछार का द्योतक है।

---

१२. आगरे का किला; लेखक : श्री एम. ए. हुसैन, पृष्ठ २३।

श्री हुसैन ने पदटीप में कहा है :[13] "(जहाँगीरी शासन के तिथिवृत्त) तुजुके-जहाँगीरी का कहना है कि सोने की एक जंजीर राजमहल में इस प्रकार लटकी हुई थी कि इसका दूसरा छोर किले के बाहर नदी-तट पर लटकता था और पीड़ित व्यक्ति इसे निर्बाध रूप में खींच सकता था। इस प्रकार बादशाह को सुविधा प्राप्त थी कि वह पीड़ितों को अपने सम्मुख बुलवा सके और उनकी शिकायतों को दूर कर दे। इसी प्रकार की जंजीर शाहजहाँ द्वारा भी अपने दीवाने-खास में उपयोग में लाई गई प्रतीत होती है जैसा कि संदर्भित शिलालेख की ५वीं और ६वीं द्विपदी से स्पष्ट होता है, यद्यपि इस सम्बन्ध में कोई भी प्रलेख तत्कालीन अभिलेखों में उपलब्ध नहीं होता है।"

श्री हुसैन ने स्पष्टतया दर्शाकर सत्कार्य ही किया है कि मुस्लिम शिलालेख पूर्णतया निराधार, निरर्थक हैं क्योंकि समकालीन अभिलेख तथाकथित न्याय की जंजीर के बारे में चुप हैं। सर एच० एम० इलियट ने भी (स्वयं बादशाह जहाँगीर द्वारा लिखित अपने ही शासनकाल के तिथिक्रम-वृत्त) जहाँगीरनामा का समालोचनात्मक अध्ययन करते हुए स्वर्ण की न्याय-जंजीर के बारे में जहाँगीर के दावे को जाली, अवैध मानते हुए तिरस्कार किया है। उसने यह भी बताया है कि पूर्वकालिक हिन्दू सम्राट् अनंगपाल ऐसी न्याय-जंजीर लगाने के लिए प्रसिद्ध था। यह प्रदर्शित करता है कि मुस्लिम बादशाह हिन्दू शासकों की यशस्वी उपलब्धियों से स्वयं को भी अलंकृत कर लेने के स्वभाव वाले व्यक्ति थे। यह तथ्य प्रसंगवश इस बात को भी स्पष्ट कर देता है कि इसी वृत्ति के कारण फिरोज़शाह तुगलक, तैमूरलंग, शेरशाह और अनेक अन्य नर-संहारकों ने अनेक सराएँ, कूप और सड़कें बनवाने के दावे किए हैं।

सोने की जंजीर के मुस्लिम-दावों पर सामान्य सांसारिक-ज्ञान रखने वाला व्यक्ति भी हँसेगा क्योंकि सर्वत्र लूट-पाट, चोरी-चकारी और भ्रष्टाचार के उस युग में यदि किसी मुस्लिम बादशाह ने सोने की एक ऐसी जंजीर किले में लटका दी कि उसका दूसरा छोर नदी-तट पर बाहर लटका रहे, तो

१३. श्री एम० ए० हुसैन द्वारा लिखित 'आगरे का किला' पुस्तक, पृष्ठ २४।

उसे तो लटकाने के २४ घंटों के भीतर ही काट लिया और चुरा लिया होता। साथ ही, लूट-पाट, मार-काट, मन्दिर-विनाश में संलग्न तथा सभी हिन्दू प्रजा को अत्यन्त घृणित वस्तु मानने वाला विदेशी मुस्लिम उग्रवादी-सम्प्रदाय न्याय की शृंखला लगाने का कभी विचार नहीं करेगा। यह कहना एक मनोवैज्ञानिक बेहूदगी है कि एक विदेशी साम्राज्यवादी शक्ति, जो अपनी अरबी, तुर्की, फारसी व मुगलिया बातों को लोगों पर थोपना चाहती हो, धर्मान्धता में मद-मस्त हो, भाई-भतीजों व पितृघाती कुकृत्यों, व्यभिचारों में आकंठ लिप्त हो, अपने सगे-सम्बन्धियों को अन्धा करने अथवा अपंग करने तथा शराब और अन्य मादक वस्तुओं का सदैव सेवन किए रहती हो, न्याय प्रदान करने में इतनी उत्कंठित होगी कि धर्मराज की तलवार की भाँति उसके शाही बिस्तरे पर एक घंटी लटकती रहे, जिसको भीषणतम यातनाओं के बहुधा शिकार लाखों नागरिकों में से कोई भी उसको बजाता रहे।

सिंहासनों वाली छत

दीवाने खास के सामने एक छत है जिस पर दो सिंहासनों के पादक बने हुए हैं—उनमें से एक काले और दूसरा सफेद संगमरमर का है। प्राचीन हिन्दू सम्राटों के शासनकाल में दो जाज्वल्यमान सिंहासन उन पादकों पर रखे रहते थे। ये दोनों किले पर अधिकार करने वाले मुस्लिम आक्रमणकारियों के हाथ पड़े होंगे और उन्हीं के द्वारा अंग-छेद और लूटे गए क्योंकि उनमें सिंह और मयूर अथवा अन्य हिन्दू आकृतियाँ चित्रित की गई थीं।

तलघर

यह भी सम्भव है कि किले के सभी शाही प्रकोष्ठों के समान ही उतनी ही जगह वाले तलघरीय कमरे भी हों। उनमें से अधिकांश आजकल जनता से छुपाकर रखे गए हैं। उनमें से बहुत सारे बन्द कर दिये गए हों अथवा किले के २००० वर्षीय दीर्घ इतिहास में भिन्न-भिन्न समय पर बंद हो गए हों। किन्तु बादशाहनामा[१४] दीवाने-खास के नीचे तह में एक प्रकोष्ठ का

१४. फारसी पाठ, खण्ड-१, पृष्ठ २३८।

उल्लेख करता है। इसमें शाही खज़ाना रखा जाता था।

सिंहासन के पादक

काले और सफेद संगमरमरी, पादक, दोनों ही १५ इंच ऊँचे हैं। काले वाले में पाँच शिलालेख हैं। यह टूट गया है। इस सम्बन्ध में कई धारणाएँ हैं। एक धारणा यह है कि जब शाहज़ादा सलीम ने अपने बाप के विरुद्ध विद्रोह किया और इलाहाबाद में अपने को बादशाह घोषित कर दिया, उस समय वह इस पादक को अपने साथ ले गया था। यह पादक इलाहाबाद ले जाने और वहाँ से लाने में, यात्रा के समय ही टूटा-फूटा होगा। दूसरी बात यह भी हो सकती है कि मुस्लिमों के अनेक आक्रमणों में से किसी समय एक गोला इस पर आकर गिरा हो अथवा जब जाटों (हिन्दू) ने किले पर पुनः अधिकार किया था तब उनकी सेना का ही एक गोला इसे क्षति-ग्रस्त कर गया हो। यह भी सम्भावना है कि मुस्लिम आधिपत्यकर्ताओं के विरुद्ध चढ़ाइयों में किसी समय मराठे या ब्रिटिश गोले का शिकार हो गया हो।

हिन्दू राजवंशी स्नानघर

राजवंशी स्नानघर सिंहासन वाली छत के उत्तर में है। इससे मछली-महल पहुँच सकते हैं। चूंकि नित्य-स्नान इस्लामी दिनचर्या का अंश नहीं है, अतः यह स्नानघर विशिष्ट हिन्दू गृहस्थ की सुविधा है। स्नानघरों सहित मेहराबदार छतों वाले कमरों की अलंकृत दीवारें थीं। वह अलंकृति मुस्लिम अधिपत्य के समय, उस अवधि में, घिस-घिसकर समाप्त हो गई। उन अलंकृतियों के कुछ अवशिष्ट चिह्न अब भी देखे जा सकते हैं। लम्बे गलियारे में भट्टियाँ बनाई गई थीं। खुदाई करने पर कुछ प्रवाहिकाएँ मिली हैं। शाहजहाँ के दरबारी तिथिवृत्त—बादशाहनामा ने, जो अब्दुल हमीद लाहौरी का लिखा हुआ है, स्नानघरों की शोभा बढ़ाने वाले अत्युत्तम पच्चीकारी और चित्रित-नमूनों का उल्लेख किया है। स्नानघर में एक केन्द्रीय जलकुण्ड था जिसके चारों ओर फव्वारे लगे हुए थे। स्नानघर में गरम और ठंडे, दोनों ही प्रकार के पानी को एक-साथ प्रवाहित करते रहने की व्यवस्था थी।

संगमरमरी दीर्घा

स्नानघर के दक्षिण में एक संगमरमरी दीर्घा बनी हुई थी जिसके तीन ओर तोरणपथ था। इसको आगरे के लालकिले के कुछ पुराने चित्रों में देखा जा सकता है। एक ब्रिटिश गवर्नर जनरल लार्ड विलियम बैंटिक के बारे में कहा जाता है कि उसने इसका ध्वंस हो जाने के बाद उसका संगमरमर बेच दिया था। प्राचीन हिन्दू किले को विदेशी मुस्लिम और ब्रिटिश आधिपत्य की शताब्दियों में हुई भयंकर क्षति का यह एक अन्य उदाहरण प्रस्तुत है। किले में अब भी विद्यमान शान-शौकत विदेशी आधिपत्य की लगभग पाँच शताब्दियों को लगातार सहन करती आई है। हिन्दू राजवंश द्वारा २,००० वर्ष से भी अधिक विगत काल में बनाया गया यह हिन्दू किला अनेक गुना राजोचित स्थान वाला सुन्दर, गौरवमय और उज्ज्वल, जाज्वल्यमान रहा होगा। अतः यदि कुछ किया ही गया है तो वह यह कि उसका सौन्दर्यहरण हुआ, क्षति पहुँचाई गई, ध्वस्त किया गया, अपवित्रीकरण हुआ तथा कुछ भाग गिराए गए, किन्तु किसी भी प्रकार इसमें कोई उज्ज्वलता न लाई गई और न ही कभी कोई परिवर्धन किया गया।

तथाकथित नगीना-मस्जिद

मच्छी भवन के दक्षिण में स्थित एक फाटक से तथाकथित नगीना-मस्जिद में प्रवेश होता है। यह एक पटरीदार प्रांगण है जिसकी पूर्वी, उत्तरी और दक्षिण दिशाओं में दीवारें हैं। पश्चिमी भाग में तीन गुम्बदों वाला बरामदा है। यहाँ पर बना एक छोटा कमरा, जहाँ से नीचे दीवाने आम वाला प्रांगण दिखाई देता है, वही स्थान है जहाँ पर सिंहासन-च्युत शाहजहाँ को उसके बेटे बादशाह औरंगजेब ने कारावास में बन्द रखा था। हम इस बात की चर्चा पहले ही कर चुके हैं कि भव्य सम्मान-बुर्ज प्रकोष्ठ में शाहजहाँ को बन्दी रखने वाली कथा किस प्रकार पूर्णतः अविश्वसनीय है।

किसी को भी इस बात का निश्चय नहीं है कि इस तथाकथित नगीना-मस्जिद को किस मुस्लिम शासक ने बनवाया था। कुछ लोग इसका निर्माण-श्रेय शाहजहाँ को देते हैं, जबकि अन्य लोग औरंगजेब को, किन्तु ये सभी

अनुमान गलती भरे हैं। हिन्दू मन्दिरों को उन्हीं नामों की मस्जिदों में परिवर्तित करने के इस्लामी रुझान को ध्यान में रखते हुए हमारा निष्कर्ष यह है कि इसके हिन्दू निर्माताओं ने इनका नाम 'रत्न-मन्दिर' रखा होगा। इसी कारण से इसे नगीना-मस्जिद कहा जाता है। यदि इसकी पटरियाँ और दीवारें खोद डाली जाएँ तो उनमें हिन्दू देव-प्रतिमाएँ और संस्कृत-शिलालेख मिल सकते हैं।

सुन्दरियों का बाजार

मुगल दरबार शहंशाहों की मनमानी अनियमित रँगरेलियों के हेतु दरबारियों, आश्रितों और प्रत्येक त्रासदायक धावे के बाद बन्दियों के रूप में बहुसंख्यकों की गृहस्थियों से चुनी हुई महिलाओं को आत्मप्रदर्शन करने वाली विवशता थोपने के लिए अत्यन्त कुख्यात थे। बाबर, हुमायूँ, अकबर सभी के शासनों के वर्णन इस कुख्यात रीति के सन्दर्भों से परिपूर्ण हैं जबकि नारी-सौन्दर्य अशिक्षित और क्रूर-संभोगी बादशाहत का स्वच्छन्द क्रीड़ा-कौतुक था। तथाकथित नगीना-मस्जिद के प्रांगण से गुजरने पर, जल गरम करने की व्यवस्था से सम्पन्न छोटे कमरे से पार हो जाने पर एक संगमरमरी छज्जा आ जाता है जहाँ से वह प्रांगण दिखाई देता है जहाँ मुस्लिम बादशाह की अनियमित कृपा के लिए सुन्दरियों का प्रदर्शन किया जाता था। इस्लामी दरबारी बातचीत में इसको जनाना मीना बाज़ार कहते थे।

हिन्दू मच्छी भवन

हिन्दू मच्छी भवन दीवाने-आम के पिछवाड़े में स्थित है। इसमें एक विशाल प्रांगण है। यह भाग इस नाम से पुकारे जाने का कारण यह है कि हिन्दू राजवंश इसके संगमरमरी फव्वारों और जलकुंडों में स्वर्णिम और रजत मछलियाँ रखते थे। सदा की भाँति ही, भूल करने वाले आंग्ल-मुस्लिम वर्णन इसका मूलोद्गम जान सकने में विफल रहे हैं। कुछ लोग अस्पष्ट रूप में इसका निर्माण-श्रेय अकबर को देते हैं जबकि अन्य लोग भी समान रूप में, निराधार ही आग्रहपूर्वक कहते हैं कि यह शाहजहाँ द्वारा बनवाया हुआ हो सकता है।

शाहजहाँ का दरबारी तिथिवृत्त इसको शाही-जेवरात का खजाना-घर वर्णन करता है। इस भाग के नाम में और मुगलों द्वारा इसके उपयोग-हेतु प्रयोजन में असीम असंगति ही इस तथ्य का प्रमाण है कि मुगल लोग तो एक हिन्दू-मत्स्य-भवन के परवर्ती आधिपत्यकर्ता मात्र थे। जैसा हम पहले ही स्पष्ट कर चुके हैं, हिन्दू राजवंशी परम्परा में मछलियाँ पवित्र समझी जाती हैं। मछली भवन गूढ़-नमूनों से सुशोभित था। मुस्लिम आधिपत्य की अनेक शताब्दियों में उन सबकी छाप शनैः-शनैः घिस जाने के कारण प्रायः ओझल हो गई है।

मन्दिर राज-रत्न

मछली-भवन को जाने वाली सम्पर्क सड़क के पूर्व में एक बड़ा भवन है जो अभी भी अपने हिन्दू नाम—'मन्दिर राज-रत्न'—से पुकारा जाता है। हमारे उस पूर्व प्रकट किए हुए विचार का इससे समर्थन होता है कि तथा-कथित 'मोती मस्जिद', 'रत्न-मन्दिर' शब्दावली का इस्लामी-अनुवाद मात्र ही है। तथाकथित नगीना मस्जिद अर्थात् रत्न-मन्दिर मन्दिर राज-रत्न का दूसरा भाग अवश्य ही रही होगी। एक भाग के साथ उसका हिन्दू नाम और साहचर्य ज्यों-का-त्यों अभी भी बना हुआ है, जबकि दूसरा भाग इस्लामी परिवर्तन का शिकार हो गया। कुछ लोगों को इसके हिन्दू नाम का स्पष्टी-करण देने में अत्यन्त विवशता होने पर वे कहते हैं कि यह सन् १७६८ ई० में उस समय बना था जब जाटों ने किले को पुनः जीत लिया था। अनुमान है कि महाराजा पृथी इन्द्र के सेनापति ने, जिसका नाम राज-रत्न था, इस भवन में निवास किया था। यह निष्कर्ष अति दूरस्थ कल्पना है। राज-रत्न कल्पित नाम भी हो सकता है अथवा यह नाम इतना महत्त्वपूर्ण न रहा हो कि उसके लिए पृथक् एक प्रकोष्ठ का निर्माण किले के भीतर ही किया जाए, जबकि उसमें अनेकों भाग रिक्त पड़े होंगे। यह निष्कर्ष उस प्रकोष्ठ-भाग के दक्षिणी तोरणद्वार पर लिखे उसके नाम से निकाला जाता है। किन्तु वह ऊपरी लिखावट उस भवन के निर्माता की न होकर उसके आधिपत्यकर्ता से ही सम्बन्धित हो सकती है।

दीवाने-आम

इस्लामी शब्दावली में दीवाने-आम के नाम से पुकारा जाने वाला सामान्यजन महाकक्ष अत्यन्त देदीप्यमान दर्शक-मंडप था। इसमें ४० खम्भों वाली अनेक पंक्तियाँ हैं। हिन्दू शासन के अन्तर्गत, यह दर्शक-मण्डप चमकदार सुनहरे और अन्य सुखद रंगों से रंगा रहता था। यह महाकक्ष २०१× ६७ फीट आकार का है। मुस्लिम आधिपत्य की अवधि में उत्तराधिकार की अनिश्चितता, रख-रखाव के ज्ञान के अभाव और अनवरत युद्धों व विद्रोहों के कारण इस सुन्दर राजवंशी दर्शक-मण्डप की मौलिक हिन्दू शोभा-श्री का ह्रास होने लगा। हिन्दू सम्राट् इस दर्शक-मण्डप में सार्वजनिक दरबार लगाया करते थे, जहाँ साधारण नागरिक भी पहुँच सकते थे और खुले दरबार में सम्राट् से अपनी शिकायतों की चर्चा कर सकते थे।

दर्शक-मण्डप की एक चार फीट ऊँची स्तम्भ पीठ है। यह तीन ओर से खुली है। चौथी दिशा में अर्थात् पूर्व में सिंहासन-कक्ष, एक अत्यन्त अलंकृत मोहरा और संगमरमरी पच्चीकारी सज्जाकारी नमूनों वाला कमरे की दीवार में मेहराबदार आले सहित है। दिल्ली के लालकिले में दीवाने-खास की सिंहासन-दीर्घा के समान ही आगरे के लालकिले में सिंहासन में भी पक्षी-चित्रण का कार्य किया हुआ है।

खम्भों-युक्त महाकक्ष में बादशाह के सामने सैनिक-पंक्तियों में बड़े-बड़े सरदार और दरबारी-गण खड़े होते थे, उनसे निम्न-स्तर के कर्मचारी लोग बाहर खुले आँगन में खड़े होते थे। जनता के लोग उनके पीछे खड़े हुआ करते थे।

महान् मराठा शासक शिवाजी महाराज की धूर्त मुगल बादशाह औरंगजेब से ऐतिहासिक मुलाकात इसी दर्शक-मण्डप में हुई थी—ऐसा कहा जाता है। यद्यपि रौबीला मुगल बादशाह पूरी शान-शौकत के साथ स्वयं सिंहासन-कक्ष में बैठा था, तथापि शिवाजी को, जिनको शाही-स्वागत प्रदान करने के लिए विशेष रूप से बुलाया गया था, दूर की एक पंक्ति में तीसरे दरजे के सरदारों के साथ खड़े होने को कहा गया था। शिवाजी के सामने औरंगजेब का एक राजपूत चाटुकार जसवन्तसिंह खड़ा था, जिसे वे पहले

पराजित कर चुके थे। युद्ध-भूमि में जसवन्तसिंह ने अपनी पीठ दिखाई थी और सिर के बल, बेतहाशा भागा था। यहाँ भी शिवाजी को उसके पीछे खड़े होने पर बाध्य होकर उसकी घृणित, गर्हित पीठ देखनी पड़ी। शिवाजी इस दृश्य की विडम्बना, वीभत्सता को न सह सके कि स्वतन्त्रता के युद्ध में पीठ दिखाने वाले हिन्दू को एक विदेशी, औरंगजेब जैसे अत्याचारी के अधीन अकिंचन गुलाम का जीवन बिताना पड़े। मुगल दरबार की पूर्व-विचारित, निरुत्साहित उदासीनता और अपमान से तीव्र वेदना का अनुभव करते हुए श्री शिवाजी ने अपने स्थान पर खड़े-खड़े ही विदेशी बादशाह की तीव्र भर्त्सना एवं निन्दा करनी प्रारम्भ कर दी। अपने युवा पुत्र सम्भाजी को अपने साथ लिए हुए श्री शिवाजी खम्भों-युक्त महाकक्ष से बाहर निकल आए और दरबारी-शिष्टाचार की खुली अवहेलना करते हुए उसकी सीढ़ियों पर अकड़कर बैठ गए। किंकर्तव्यविमूढ़ औरंगजेब ने, जो स्वयं के सम्मुख नित्य-प्रति नत-मस्तक होने वाले अन्य सरदारों के विशाल समूह के समक्ष और अधिक अपमानित नहीं होना चाहता था, अपना दरबार तुरन्त बर्खास्त कर दिया तथा आतिथेयी-दरबारी रामसिंह से कहा कि वे अपने अविनीत, अनुत्तरदायी अतिथि को किले के बाहर अपने ही निवास-स्थान पर ले जाएँ।

सामान्य की ही भाँति, दीवाने आम का निर्माण-श्रेय विभिन्न इतिहासकारों द्वारा तीसरी पीढ़ी के अकबर से लेकर छठी-पीढ़ी के औरंगजेब जैसे विभिन्न मुगल-बादशाहों को दिया जाता है। स्वयं यही विचार पहले दरजे की बेहूदगी है कि यद्यपि अकबर ने सम्पूर्ण किले का निर्माण किया, तथापि, अत्यन्त अस्पष्ट और आश्चर्य की जटिल बात यह है कि उस किले के भीतर शाही राजमहलों के प्रकोष्ठों के भाग अथवा उनकी विभिन्न मंजिलें उसके बेटों अथवा पोतों ने बनवाई थीं। इस सब अभिलेख-हीन, अनुमानित निष्कर्ष का एकमेव संगत समाधान यह है कि ईसा-पूर्व युग के इस हिन्दू किले का निर्माण-श्रेय, जो मुस्लिम-अपहारकों के हाथों में ज्यों-का-त्यों विजयोपरान्त आ गया था, दरबारी चाटुकारों द्वारा पूर्णतः अथवा आंशिक रूप में उन्हीं मुस्लिमों को झूठे ही दे दिया गया है।

यही वह दर्शक-मण्डप है जहाँ अशोक और कनिष्क जैसे महान् प्राचीन हिन्दू सम्राट् अपने दरबार लगाया करते थे।

मीना बाजार

अपनी दाईं ओर दीवाने आम को पार करके, अमरसिंह दरवाजे से सीधा भीतर जाने पर एक प्रांगण आता है जिसे मीना बाजार के नाम से पुकारते हैं। यहाँ पर मुस्लिम फौज हमलों और युद्धों में लूटी गई सामग्री की प्रदर्शनी इस आशा से लगाती थी कि किले में दरबारियों की भीड़ में से कुछ खरीदार मिल जाएँ।

मीना बाजार प्रांगण से पूर्व दिशा की ओर दाएँ घूमने पर, तथाकथित मोती मस्जिद से आगे बढ़ने पर, बाईं ओर, सड़क नीचे की ओर एक प्राचीन हिन्दू राजमहल के साथ-साथ 'दर्शनी-दरवाजे' तक चली गई है। इस दरवाजे के परे पूर्वी प्रांगण है। सदा की ही भाँति किसी को भी यह निश्चय नहीं है कि इसका निर्माता कौन था। तथ्यतः, किले के विभिन्न भागों को बनाने का श्रेय विभिन्न शासकों को देने का विचार स्वयं ही एक बेहूदगी है।

मोती मस्जिद

तथाकथित मोती-मस्जिद, जो लगभग १५८×१५४ फीट की है, एक खुला प्रांगण है जिसमें सफेद संगमरमरी टुकड़ों की पट्टियाँ पड़ी हुई हैं। इसके केन्द्र में पानी का एक तालाब है। दक्षिणी-पूर्वी छोर पर, ऊँची पीठ पर एक सूर्य घड़ी बनी है जो संगमरमर की है। यह प्राचीन हिन्दू शासकों की चल-सम्पत्ति है। दिल्ली की प्राचीन कुतुबमीनार में भी एक इसी प्रकार की सूर्य घड़ी पाई गई थी जो अभी भी यहीं मैदान में रखी हुई है। हिन्दुओं का ज्योतिष-प्रयोजनों से एक-एक क्षण के समय का ठीक-ठीक निर्धारण करने का रुझान था। अशिक्षित मुस्लिम उग्रवादी वर्ग को, जिसने भारत पर हमला किया और शासन किया, सूर्य घड़ियों का न तो कोई उपयोग ही था और न कोई प्रशिक्षण ही प्राप्त था।

मेहराबों की प्रथम पंक्ति पर लगे प्रस्तर पर एक फारसी शिलालेख है। उस शिलालेख से यह निष्कर्ष निकाला जाना चाहिए कि छठी पीढ़ी वाला मुगल बादशाह शाहजहाँ ही वह व्यक्ति था जिसने पहली बार एक पूर्व-कालिक हिन्दू संरचना के साथ छेड़छाड़ की और इसे मस्जिद के रूप में

इस्तेमाल किया। यदि इसकी दीवारों और फर्शों को खोदा जाए, तो उलटे हुए हिन्दू शिलालेखों और देव-प्रतिमाओं के रूप में महत्त्वपूर्ण पुरातत्वीय साक्ष्य सम्मुख प्रगट हो सकता है।

मीना बाजार प्रांगण से बाईं ओर मुड़ने पर पश्चिमी दरवाज़े उपनाम दिल्ली दरवाज़े अर्थात् हाथी पोल पहुँचा जा सकता है किन्तु चूँकि यह भाग सेना के अधिकार, आवास में है, अतः मार्ग को अवरुद्ध कर दिया गया है।

तथाकथित मोती-मस्जिद के निकट ही ढालू छत वाला एक प्राचीन भवन है जो आजकल काल-दोष के कारण 'ठेकेदार का मकान' कहलाता है। यह ढालू छत तो प्राचीन हिन्दू मन्दिरों की एक विशिष्टता ही है। यह इस बात का अतिरिक्त प्रमाण है कि तथाकथित मोती-मस्जिद एक पूर्व-कालिक हिन्दू भवन का इस्लामी-परिवर्तन ही है।

हाथी पोल

दिल्ली दरवाज़ा उपनाम हाथीपोल प्राचीन हिन्दू सम्राटों का राजकीय प्रवेशद्वार था क्योंकि अपने राजनिवास और किले के दरवाजों पर गज-प्रतिमाएँ स्थापित करना हिन्दुओं की जीवन-पद्धति रही है। ऐसे गज-रूप अभी भी कोटा हिन्दू नगरी के राजमहल के द्वारों पर, ग्वालियर के हिन्दू किले के दरवाजों पर, हिन्दू फतहपुर-सीकरी में, हिन्दू भरतपुर में किले के फाटक पर तथा अन्य कई स्थानों पर देखे जा सकते हैं। मुस्लिमों के लिए तो किसी भी प्रकार की मूर्तियों का निषेध है। मुस्लिम लोग तो मूर्ति-निर्माता न होकर, मूर्ति-भंजक हैं। हिन्दू परम्परा में, धन-समृद्धि की देवी लक्ष्मी के दोनों ओर (पार्श्व में) दो हाथी अपनी सूँडें उनके सम्मान में उठाए सदैव चित्रित किए जाते हैं। राजकीय शक्ति और समृद्धि के हिन्दू प्रतीक तो गज-राज ही हैं। हिन्दू-देव गणेश जी का तो गज-मस्तक ही है। यदि इतिहास-कारों ने अपनी सहज, साधारण व्यावसायिक क्षमता का सदुपयोग किया होता तो आगरे के लालकिले में हाथी-दरवाज़ा होने की इस एक विशिष्टता ने ही उनको इस किले के हिन्दू मूलक होने के पर्याप्त प्रमाण प्रस्तुत कर दिये होते।

उस स्थान पर अब हाथी नहीं हैं। किन्तु चबूतरे पर बने हुए वे साँचे

अब भी दृश्यमान हैं जिनमें हाथियों के पैर टिके हुए थे। उनके अभाव ने भी यह अन्य प्रमाण प्रस्तुत कर दिया होता कि हिन्दू किले पर आधिपत्य करने वाले मुस्लिम लोग अपनी धर्मान्ध असहनशीलता में निर्जीव मूर्तियों पर भी प्रतिरोध की अग्नि बरसाए बिना न रहे। यह तर्क देना कि मुस्लिम अकबर ने मूर्तियाँ स्थापित कीं, किन्तु उसके बेटों अथवा पोतों अथवा पड़पोतों ने उनको गिरा दिया था, अनुसंधान सारल्य का अन्य मतिभ्रंश है जो भारतीय इतिहास की प्रचलित पाठ्य-पुस्तकों में प्रविष्ट हो गया है।

हाथीपोल एक विशाल संरचना है जिसके पार्श्व में दो ऊँचे अष्ट-कोणात्मक स्तम्भ हैं। जैसा पहले स्पष्ट किया जा चुका है, अष्टकोणात्मक आकृति एक पुनीत हिन्दू परम्परागत आकृति है। हिन्दू देवत्व अथवा राजवंश से सम्बन्धित सभी भवनों को अष्टकोणात्मक होना पड़ता है। हिन्दू परम्परा में ही सभी आठों दिशाओं के लिए आठ आधिदैविक संरक्षक माने जाते हैं। वे संरक्षक अष्ट-दिक्पाल अर्थात् आठ दिशाओं के पालक, संरक्षक कहलाते हैं।

हाथीपोल के पीछे दो कमरे हैं जो ब्रिटिश आधिपत्यकर्ताओं ने गिरजा-घरों के रूप में इस्तेमाल किए थे—एक को इंगलैंड के गिरजाघर के प्रति आस्था रखने वालों के लिए और दूसरे को कैथोलिकों के लिए।

श्री हुसैन लिखते हैं :[१५] "दरवाज़े के नीचे दाईं ओर एक रक्षक-गृह की पूर्वी-दीवार पर एक फारसी-शिलालेख है जिसमें १००८ हिजरी (१५९९-१६०० ई०) की तारीख लिखी होने के कारण कुछ विद्वानों ने कल्पना कर ली है कि फतहपुर-सीकरी का परित्याग करने के बाद अकबर ने दिल्ली दरवाजा बनवाया था। इसी के नीचे एक अन्य शिलालेख है जो हिजरी सन् १०१४ (१६०५ ई०) में जहाँगीर के गद्दी पर बैठने की स्मृति में है।"

उपर्युक्त अवतरण भारतीय ऐतिहासिक अनुसंधान की हृदय-विदारक शोचनीय अवस्था का परिचायक है। किसी निरुद्देश्य व्यक्ति ने यदि किसी भवन पर कुछ लिख-लिखा दिया है, तो उसका यह अर्थ तो नहीं है कि तत्कालीन शासक ने उस भवन का निर्माण करवाया था। उस भवन का

१५. आगरे का किला : लेखक श्री एम० ए० हुसैन, पृष्ठ ४०।

निर्माण-श्रेय इस तथ्य से और भी अधिक स्पष्टता से बेहूदा सिद्ध हो जाता है कि सन् १५६६ एवं १६०५ की दो तारीखों का संबंध दो विभिन्न बादशाहों से है। अभी तक जिस दोषपूर्ण अन्वेषण-तर्क से कार्य हुआ है, उसी का अनुसरण करते हुए हम भी निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि अकबर ने भवन का मात्र ऊपरी भाग बनवाया था जो हवा में ही लटकता रहा और बाद में निचले भाग को उसके पुत्र तथा उत्तराधिकारी ने पहले भाग के नीचे खिसका दिया, जिससे पूरा भवन तैयार हो गया। हमें आश्चर्य है कि यह कौन-सी तर्क-पद्धति है? किसी भी इतिहासकार नामक व्यक्ति को क्या अधिकार है कि वह किसी भवन का निर्माण-श्रेय उस शासक को दे दे जो मात्र एक तारीख का उल्लेख कर देता है, किन्तु भवन निर्माण करने का कोई दावा, उल्लेख नहीं करता। यह तो सर्वाधिक भयावह और उत्तेजक प्रकार की अनुसंधान-अकर्मण्यता, असमर्थता है।

एक कब्र

हाथीपोल की बाईं ओर वाले तोरणपथ के उत्तरी छोर पर लगे फाटक से गुज़रने और प्रांगण के ध्वंसावशेषों से कुछ सीढ़ियाँ नीचे उतरने पर एक कब्र मिलती है। यह जंगी सैयद नाम के एक मुस्लिम व्यक्ति की कब्र कही जाती है। श्री हुसैन ने लिखा है कि :[१६] "कहा जाता है कि यह कब्र किले का निर्माण प्रारम्भ होने से पहले भी यहीं बनी हुई थी।" यह इस बात का एक और बड़ा भारी प्रमाण है कि किला किसी भी मुस्लिम शासक द्वारा बनवाया नहीं गया था। अकबर, सलीमशाह सूर और सिकन्दर लोधी के काल से भी पहले की इस्लामी-कब्र हमारी इस धारणा को पुष्ट करती है कि आगरा स्थित हिन्दू लालकिला अपने ध्वंसावशेषों में मुस्लिम हताहतों को तब से देखता रहा है जबकि ग्यारहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में मोहम्मद (महमूद) गज़नी ने इस पर प्रथम आक्रमण किया था। यही कारण है कि किले के काल्पनिक मुस्लिम निर्माताओं से पहले काल की एक कब्र इस किले की दीवारों में अब भी विद्यमान है।

---

१६. वही, पृष्ठ ४०।

त्रिपोलिया

श्री हुसैन लिखते हैं : ''दिल्ली दरवाज़े के बाहर एक अष्टकोणात्मक प्रांगण था जिसे इतिहास में त्रिपोलिया के नाम से पुकारा जाता है। परम्परा का कहना है कि इसमें एक बारादरी थी, जिसमें राजवंशीय संगीत बजा करता था······किंतु अब उस भवन का कोई नाम शेष नहीं है, उस क्षेत्र का उत्तरी भाग रेलवे अधिकारियों के आधिपत्य में है।''

उपर्युक्त अवतरण में आगरा स्थित लालकिले के हिन्दू-मूलक होने के असंख्य प्रमाण समाविष्ट हैं। सर्वप्रथम इसमें कहा गया है कि पूर्वकालिक त्रिपोलिया और हाथीपोल के बीच का प्रांगण अष्टकोणात्मक था। तीन-द्वारों का द्योतक 'त्रिपोलिया' शब्द संस्कृत भाषा का है और हिन्दू विचार-धारा है, जैसा पहले ही स्पष्ट किया जा चुका है। स्वयं हाथीपोल भी संस्कृत-शब्द और हिन्दू धारणा है। बारह द्वारों अथवा मेहराबों के द्योतक 'बारादरी' शब्द (जो आजकल किसी भी, कितने भी मेहराबदार बरामदे के लिए प्रयुक्त होता है) भी हिन्दू परंपरा का विशिष्ट संस्कृत शब्द है। किले के प्रवेशद्वार के ऊपर नागड़खाना के अस्तित्व से भी एक और सबल द्योतक तत्त्व प्रत्यक्ष होता है कि किला हिन्दू-मूलक और हिन्दू-संपत्ति थी। साथ ही, यह तथ्य भी कि त्रिपोलिया और उसकी संगीत-शाला (नगाड़खाना) नष्ट कर दिए गए हैं, इस बात का स्पष्ट प्रमाण है कि हिन्दू परम्पराओं और मुख्य प्रवेशद्वार पर गणेश जैसे देवताओं और अन्य हिन्दू लक्षणों से सुशोभित हिन्दू दरवाज़ों को सहन न कर सकने वाले मुस्लिम विजेताओं ने अनेक कमरों, रक्षक-गृहों और नगाड़-खाने सहित संपूर्ण त्रिपोलिया को नष्ट कर देने के अपने धर्मान्ध इस्लामी जोश को दबा पाना अशक्य असम्भव पाया था।

चित्तौड़ दरवाज़ा

पश्चिम में अमरसिंह दरवाज़े से त्रिपोलिया तक और (नदी की ओर) पूर्व में दर्शनी दरवाज़े तक किले का एक चक्कर लगा लेने के बाद, हम अब पाठक और दर्शक का ध्यान एक अन्य स्मृति-चिह्न की ओर आकर्षित करते हैं जिसका सम्बन्ध वास्तव में आगरे के लालकिले से नहीं है, किन्तु जिसको

विदेशी शासक अकबर ने लालकिले में जमा करा दिया है। वह स्मृति-चिह्न ग्यारह फीट चौड़ा एक दरवाज़ा है जो कदाचित् चित्तौड़ के कुंभ-श्याम मन्दिर का है।[१७] यह दरवाज़ा पीतल का है, श्री हुसैन कहते हैं।

भारत के धर्मान्ध मुस्लिम बादशाह अकबर ने, जिसके दिल में सभी देशी शासकों को अपने सम्मुख नतमस्तक करने और उनकी महिलाओं को अपने हरम में दाखिल करने के लिए असमाधेय आग जल रही थी, सन् १६६७-६८ ई० में चित्तौड़ को घेर लिया, जो राजस्थान का एक प्रसिद्ध किला था तथा बहादुर सीसोदिया-वंश की राजधानी रहा था। एक बहुत लम्बे और संख्या में श्रेष्ठ मुस्लिम-राक्षसों के समूह के विरुद्ध अति दुःसह युद्ध के बाद जब किला समर्पित किया गया, तब अकबर ने बदले की भावना से भीषण अत्याचार किए। अकबर ने वे सब कहर ढाए, जिनकी कल्पना कोई भी अशिक्षित बर्बर आदमी कर सकता हो।

भूखी और अत्यन्त क्षतिग्रस्त गढ़-रक्षक सेना ने अन्तिम साग्रह और निर्णायक संघर्ष करने के लिए चित्तौड़-दुर्ग के द्वार खोल देने से पूर्व, राजपूतों की हज़ारों महिलाओं ने—जो दुर्ग-रक्षकों की पत्नियाँ, पुत्रियाँ और बहनें थीं—शीलभंग, अपमान और यातनाओं से बचने के लिए सामूहिक रूप में अग्नि-कुंड में प्रवेश कर—जौहर कर लिया था, अपने प्राण दे दिए थे। मध्यकालीन इतिहास में आक्रमणकारी, हिंस्र और विध्वंसक अरब, तुर्क, अफगान, फारसी और मुगल राक्षसों का कुयश इसी प्रकार का था कि हिन्दुस्तान की प्रायः प्रत्येक लड़ाई में जहाँ भी कहीं विजयश्री हिन्दुओं के हाथों से दूर जाती दिखाई देती थी, वहीं हिन्दू महिलाएँ लम्पट विदेशी सेना द्वारा अपमान, तिरस्कार, लज्जा और कठोर यातनाओं का जीवन व्यतीत करने की अपेक्षा कुछ क्षणों की दारुण यंत्रणाएँ सहन करके अपना जीवन सदैव के लिए समाप्त कर देने के उद्देश्य से विशेष अग्नि-कुंडों की प्रज्वलित चिताओं में जीवित प्रविष्ट हो जाया करती थीं।

अकबर द्वारा चित्तौड़ के विनाश का वर्णन करते हुए 'महाराष्ट्रीय ज्ञानकोश' ने उल्लेख किया है कि :[१८] "अकबर ने ३०,००० आदमियों का

१७. श्री एम० ए० हुसैन कृत 'आगरे का किला', पृष्ठ २६।
१८. महाराष्ट्रीय ज्ञानकोष, खंड IX, पृष्ठ यू, ३२।

वध किया। मन्दिरों और राजमहलों को धूल में मिला दिया गया था तथा मस्जिदें बनाई गई थीं। मुख्य देवता का मन्दिर लूटा गया था और वहाँ के ढोल-नगाड़े, दीप, दीपस्तंभ, आभूषणों तथा द्वारों को दिल्ली ले जाया गया था।"

इतिहासकार कर्नल टाड ने कहा है कि :[१९] "उस (अकबर) की तलवार से लड़ाकू जातियों (अर्थात् राजपूतों या क्षत्रियों) की पीढ़ियों को काट डाला गया था; उसकी विजयों की पर्याप्त पुष्टि जब तक नहीं हो जाती थी, तब तक समृद्धि की चमक धूल चाटती रहती थी। उसको शाहबुद्दीन (गोरी), अल्ला (अलाउद्दीन खिलजी) और विध्वंस के अन्य रूपों के समान समझा गया था और प्रत्येक ऐसा दावा सही था; और इन्हीं के समान (राजपूत योद्धाओं के देवता) एकलिंग जी की यज्ञवेदी से कुरान के लिए एक मुम्बार का निर्माण किया गया था।"

आगरे के किले में प्रदर्शित पीतल का दरवाज़ा उसी लूट सामग्री का एक भाग है जो अकबर ने चित्तौड़ के किले के समय मंदिरों को लूटकर एकत्र की थी। यदि राजस्थान के लोगों में राणा प्रताप की भावना का लेष-मात्र भी अवशिष्ट है, तो उनको माँग करनी चाहिए कि चित्तौड़ के प्रसिद्ध किले के उस पवित्र मंदिर के द्वार को वापस ले जाया जाना चाहिए और उसको उसके पुराने स्थान पर ही पुनः लगा देना चाहिए। चित्तौड़ का द्वार आगरे के किले में गलने और जंग लगने के लिए क्यों छोड़ा जाय? क्या उपर्युक्त कार्य से इसे इसके उपयुक्त स्थान पर और स्थिति में नहीं पहुँचा दिया जाएगा? इस प्रकार, उस द्वार के पुनः स्थापित करने मात्र से उस महान् देवता और बहादुर जाति के लोगों का बिदेशी विध्वंसक द्वारा किए गए अपमान की आंशिक क्षतिपूर्ति नहीं होगी? इस द्वार को इसके पूर्व-कालिक पवित्र स्थल पर पुनः स्थापित करते समय इसके अपहरण का इतिहास भी एक ताम्र-पत्र पर लिख दिया जाकर द्वार पर खूँटी के साथ टाँक दिया जाना चाहिए ताकि भारतीय जनता को यह एक चेतावनी के रूप में काम आए और वे अपने चौके-चूल्हे, मंदिर और राजमहल, पत्नी और

१९. एनल्स एंड एंटीक्वीटीज़ ऑफ राजस्थान, खंड-I, पृष्ठ २५९।

भगिनी, नहरों और दुर्गों के सम्मान को बचाने, सुरक्षित रखने के लिए सदैव सतर्क रहें, क्योंकि इतिहास को तो उसकी कटुतम नग्नता में ही बिल्कुल ज्यों-का-त्यों बनाए रखना ही चाहिए। यदि यह राष्ट्रीय लज्जा की बात है, तो यह एक चेतावनी के रूप में काम करेगी; यदि यह यश की बात है तो यह अनुकरण के योग्य यशस्वी उदाहरण होगा। किन्तु, कुछ भी हो, इतिहास को कभी भी आच्छादित, रूप-परिवर्तित, भ्रामक, झूठा, गलत, तोड़ा-मरोड़ा या उलटा-पुलटा नहीं होने देना चाहिए। दुर्भाग्य से, भारतीय इतिहास आज विश्व भर में जिस प्रकार से पढ़ाया और प्रस्तुत किया जा रहा है, वह इन सभी बातों से परिपूर्ण है। यह स्थिति अवश्य बदली जानी चाहिए। जिस प्रकार देशभक्तों का कर्तव्य है कि वे खोई हुई सीमाओं को, भूमि को पुनः अपने अधिकार में ले आएँ, उसी प्रकार देशभक्त इतिहासकारों का कर्तव्य है कि वे देश के उन भवनों को पुनः वापस ले लें, जिन पर विदेशी आक्रमणकारियों द्वारा झूठे दावे किए गए हैं। विदेशी आक्रमणकारियों को, विजेताओं को झूठे ही निर्माण-श्रेय दिए गए हिन्दू भवनों का लेखा-जोखा करना भारतीय इतिहास में अभी भी शेष है। विदेशी आक्रमण के, शिकार उन भवनों का हिसाब-किताब कम-से-कम शैक्षिक पुनर्विजय द्वारा ही हो सकता है।

अध्याय १०

मूल्य-सम्बन्धी भ्रान्तियाँ

आगरा-स्थित लालकिले के निर्माण-सम्बन्धी मुस्लिम दावों की असत्यता इसके संरचनात्मक व्यय के बारे में प्रलेखों के पूर्ण अभाव से भी सिद्ध होती है।

इतिहासकारों ने विभिन्न मुस्लिम तिथिवृत्तों में उल्लिखित मूल्यों पर विश्वास जमाकर गलती की है क्योंकि ये तिथिवृत्त तो दरबारी चाटुकारों और शाही खुशामदियों द्वारा लिखे गए हैं। ये दावे उसी प्रकार हैं जिस प्रकार कोई व्यक्ति अपनी दैनन्दिनी में लिखकर रख ले कि उसने स्वयं अथवा उसके पिता-प्रपिता ने जिब्राल्टर बन्दरगाह का निर्माण कराया था, और उसी स्थान पर मनचाही लागत भी उल्लेख कर दे। क्या किसी व्यक्ति के लिए उस उत्तेजक, आह्लादकारी दावे पर मात्र इसलिए विश्वास करना बुद्धिमत्ता का कार्य होगा कि यह किसी धर्मान्ध आत्माभिमानी व्यक्ति द्वारा लिख लिया गया है? इस प्रकार के उत्तेजक, आह्लादकारी दावों को अन्य परिस्थिति-साक्ष्यों से सत्यापित, पुष्ट करना आवश्यक होता है। इसी प्रकार, मध्यकालीन तिथिवृत्तों के उग्रवादी दावों का तब तक विश्वास नहीं किया जाना चाहिए जब तक कि उनका समर्थन अन्य स्वतन्त्र साक्ष्यों से न हो जाय।

अत: हम, आगरे के लालकिले के सम्बन्ध में सर्वप्रथम यह प्रश्न पूछना चाहते हैं कि यदि सिकन्दर लोधी और सलीमशाह सूर ने यह किला बनवाया ही था तो उसके नमूने-रूपरेखांकन, निर्माणादेश तथा परियोजना के परिव्यय-लेखादि के कागज-पत्रादि कहाँ हैं? वे कहीं अस्तित्व में हैं ही नहीं। आश्चर्य की जो बात है वह यह है कि व्यय-राशि का उल्लेख तो स्थूल रूप में भी नहीं

किया गया है, फिर भी हमारे इतिहासकारों ने उन दावों में बाल-सुलभ विश्वास स्थापित किया है और इतिहास की पुस्तकों में यह उल्लेख करना जारी रखा है कि आगरे का लालकिला एक बार सिकन्दर लोधी ने बनवाया था, और फिर उसी स्थान पर सलीमशाह सूर ने किले को दुबारा बनवाया था। किन्तु इस बात को कोई नहीं बताएगा अथवा कोई चर्चा नहीं करेगा कि कब, कैसे और कितनी लागत में यह सब सम्पूर्ण हुआ था।

अकबर का स्वयं-निर्दिष्ट तिथिक्रम-वृत्तकार अबुलफजल इस किले की कुल लागत[1] ७,००,००,००० टंका बताता है, चाहे उसका जो भी अर्थ या मंतव्य हो। आधुनिक इतिहासकार उसका अर्थ रु० ३५,००,०००/- लगाते हैं।

किन्तु अन्य मुस्लिम इतिहासकार खफी खान[2] इस कीमत को रु० २०,००,०००/- पर ले गया है।

बादशाहनामा[3] अबुलफजल की दी हुई राशि का समर्थन करता है। जहाँगीरनामा[4] भी अबुलफजल की दी हुई राशि का समर्थन करता है।

चूंकि इन दावों की किसी भी दरबारी अभिलेख द्वारा पुष्टि नहीं होती है, इसलिए हम इन दावों को असत्य और अविश्वसनीय ठहराकर अस्वीकार करते हैं।

रु० ३५,००,०००/- की राशि कई तिथिवृत्तों में समान रूप से उल्लेख की गई है। किन्तु इनमें से मात्र अबुलफजल का तिथिवृत्त ही बादशाह अकबर के काल में लिखा गया था। अकबर की क्रमशः एक और दो पीढ़ियों बाद लिखे गए अन्य दोनों तिथिवृत्तों में अबुलफजल की कही गई राशि को ही प्रतिध्वनित किया है, अतः उनको कानूनी, वैध साक्ष्य मानकर स्वीकार नहीं किया जा सकता है।

जहाँ तक अबुलफजल की रु० ३५,००,०००/- की राशि का सम्बन्ध है, किसी अन्य समर्थनकारी साक्ष्य के अभाव में इसे स्वीकार नहीं किया जा

---

१. ब्लोचमन द्वारा अनूदित, आईने-अकबरी, खण्ड-१, पृष्ठ ३८०।

२. मुंतक बाबुल लुबुत, फ़ारसी पाठ, खण्ड-१, पृष्ठ १६५।

३. बादशाहनामा, फारसी पाठ, खण्ड-१, पृष्ठ १५५।

४. तज़ुके जहाँगीरी, फारसी पाठ, पृष्ठ २।

सकता है क्योंकि उसकी पुष्टि करने के लिए अन्य किसी साक्ष्य का एक टुकड़ा-मात्र भी शेष नहीं है। इस प्रकार का अन्य समर्थन तब और भी महत्त्वपूर्ण हो जाता है जब इसकी आवश्यकता अबुलफज़ल के साग्रह कथनों से होती है क्योंकि लगभग सभी लोगों ने उसे 'निर्लज्ज चाटुकार' की संज्ञा दी है।

खफी खान द्वारा लागत की उल्लिखित राशि का कोई वैध मूल्य नहीं है क्योंकि वह अकबर के बाद कई पीढ़ियाँ गुजरने पर लिखी गई थी। किन्तु इसने यह तथ्य अवश्य सब लोगों के सम्मुख प्रस्तुत किया है कि मुस्लिम तिथिवृत्त पूरी तरह काल्पनिक रचनाएँ हैं जो लेखक की अपनी तत्कालीन चित्तवृत्ति के अनुसार लिखी गई हैं जबकि वे उन भारी तिथिवृत्तों के किसी विशेष अवतरण की रचना किया करते थे।

अबुलफज़ल की साक्षी को उसकी अपनी टिप्पणियों की सहायता से अथवा उसके अभाव के कारण रद्द, अस्वीकृत किया जा सकता है। उदाहरण के लिए, उसने इस बात का कहीं, कोई उल्लेख नहीं किया है कि किले के ध्वस्त होने की पूर्व-कल्पना में ही अकबर ने बिस्तर-बोरिये समेत कभी किले का परित्याग किया था। वह कभी ऐसे किसी वैकल्पिक स्थान का उल्लेख नहीं करता है जिस अवधि में अकबर ने वहाँ ठहरने की व्यवस्था की हो जिस अवधि में कल्पना की जाती है कि आगरे का लालकिला निर्माणाधीन था। अबुलफज़ल किला गिराने के बाद भी अर्थात् इसे गिराने में कितने वर्ष लगे, कोई विवरण प्रस्तुत नहीं करता। इसके विपरीत वह कहता है कि वहाँ पर बंगाल और गुजरात शैली की ५०० भव्य, देदीप्यमान, शानदार इमारतें थीं। यह तथ्य, कि वहाँ ५०० भवन थे, स्पष्टतः प्रदर्शित कर देता है कि उनका (अकबर द्वारा) निर्माण नहीं किया गया था। यह सिद्ध करता है कि वे भवन अकबर-पूर्व युग के हैं। मात्र किले के भीतर ही ५०० भवनों का निर्माण करवाने के लिए अकबर को कितनी बार जन्म लेना होगा। इतना ही नहीं, मध्यकालीन इस्लामी शब्दावली में 'बंगाली' शब्द हिन्दू भवनों का अर्थद्योतन करता था। यदि अकबर कोई व्यावसायिक ठेकेदार रहा होता; तो भी उसके लिए ५०० भवनों का निर्माण करना असम्भव कार्य था, अपने शासनकाल में अनेक युद्धों को लड़ने और विद्रोहियों का दमन करने के साथ-

साथ यह कार्य करने की तो बात ही दूर है। उसे अपने हरम की ५००० महिलाओं और वन्य पशु-संग्रह के १००० जंगली जन्तुओं की देखभाल के लिए भी विशाल धन-राशियाँ व्यय करनी होती थीं।

रु० ३५,००,०००/- की धन-राशि से अबुलफजल का भाव यह है कि आगरे के लालकिले की मरम्मत करने, साज-सजावट करने और रंग-रोगन कराने के लिए अकबर ने अपनी प्रजा पर भारी कर लगाया और रु० ३५,००,०००/- वसूल किए। झूठे मध्यकालीन मुस्लिम तिथिवृत्तों से इसी प्रकार के ऐतिहासिक निष्कर्ष निकालने चाहिए।

अबुलफजल ने अधीक्षक के रूप में, अनिश्चय मन से मोहम्मद कासिम खाँ का नामोल्लेख[५] किया है। वह अधीक्षक मीरे-बहर अर्थात् बन्दरगाह का प्राधिकारी कहा जाता था। सम्भव यह है कि मोहम्मद कासिम खाँ ने किले की संरचना का अधीक्षण नहीं किया, क्योंकि किला तो पहले ही बना-बनाया था, अपितु कर के रूप में वसूल किए गए पैंतीस लाख रुपयों की निगरानी की होगी। यदि उसने वास्तव में किले के निर्माण-कार्य का पर्यवेक्षण किया था, तो अबुलफजल के तिथिवृत्त में सब लोगों का उल्लेख छोड़कर मात्र उसी का नाम क्यों समाविष्ट किया गया? यदि कोई निर्माण-कार्य वास्तव में हुआ होता, तो स्वयं अकबर और अन्य बहुत सारे दरबारियों की किले के स्थान तक की विभिन्न यात्राओं में उसका स्वयं ही अधीक्षण-कार्य हुआ होगा। सबसे अधिक महत्त्व का तो वह व्यक्ति है जिसने ५०० भवनों सहित उस विशालकाय किले का रूपरेखांकन किया। उसका नाम लिखा जाना चाहिए था। इसी प्रकार उस कारण का पता लगाना सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है कि उन भवनों को उसने हिन्दू शैली में क्यों बनाया था, तथा उनके शीश-महल, दर्शनी दरवाजा और अमरसिंह दरवाज़ा जैसे हिन्दू नाम क्यों रखे गए थे?

'मीरे-बहर' पद तो विचार प्रकट करता है कि मोहम्मद कासिम खाँ तो किले की दीवार के साथ-साथ बहने वाली नदी पर रखी नावों के बेड़े का प्रभारी था। [६]"अकबर के शासन काल के २३वें वर्ष में (सन् १५७८ में)

५. श्री एम० ए० हुसैन लिखित 'आगरे का किला', पृष्ठ २।

६. श्री एस० एम० लतीफ़ कृत 'आगरा—ऐतिहासिक और वर्णनात्मक', पृष्ठ ९८।

कासिम खाँ को आगरे का राज्यपाल बनाया गया था। उसने कश्मीर जीता, और उसे ३४वें (सन् १५८६ ई०) वर्ष में काबुल का राज्यपाल नियुक्त किया गया था। उसे काबुल में सन् १५९३ ई० में कत्ल कर दिया गया था।"

अपने जीवनयापन से मोहम्मद कासिम खाँ दरबारी-सेनापति प्रतीत होता है, न कि इंजीनियर-निर्माता। उसे कत्ल किए जाने की घटना भी इस बात की द्योतक है कि उसे कितनी घृणा की दृष्टि से देखा जाता था। किन्तु वह कोई अपवाद नहीं था। मुस्लिम शासक-वर्ग के प्रत्येक व्यक्ति के असंख्य शत्रु थे।

श्री लतीफ दावा करते हैं कि "किले के निर्माण-कार्य में ३००० से ४००० कारीगर और शिल्पी नियुक्त किए गए थे। इसे बनाने में आठ वर्ष लगे थे।" चूँकि वह किसी प्राधिकारी का उल्लेख नहीं करता है, इसलिए पाठक उसे काल्पनिक लिखावट के रूप में अमान्य कर सकता है क्योंकि मध्यकालीन मुस्लिम इतिहास की वे रचनाएँ कल्पनाओं के अतिरिक्त अपने अनुमानों का और कोई आधार रखती ही नहीं हैं।

अबुलफज़ल ने जो कुछ कहा है वह केवल इतना है : [7]"बादशाह शहंशाह ने लाल पत्थर का एक किला बनाया है, जिसके समान दूसरा किला प्रवासियों ने कोई लिखा नहीं है। इसमें ५०० से अधिक कलात्मक भवन हैं जो बंगाल और गुजरात के सुन्दर नमूनों पर बने हैं। पूर्वी दरवाज़े पर पत्थर के दो हाथी, अपने सवारों सहित बने हुए हैं...सुल्तान सिकन्दर लोधी ने आगरा को अपनी राजधानी बनाया था, किन्तु वर्तमान शहंशाह ने इसे सजाया-सँवारा।"

उपर्युक्त अवतरण गूढ़, शठ तिथिवृत्त लेखन का एक विशिष्ट उदाहरण है। क्या उस दरबारी तिथिवृत्तकार को, जिसका ग्रन्थ सैंकड़ों पृष्ठों का है, उस किले के सम्बन्ध में मात्र आधा दर्जन पंक्तियाँ ही लिखनी चाहिए जिसमें ५०० भवन थे! एक मात्र सार्थक वाक्य है : "बादशाह शहंशाह ने लाल पत्थर का एक किला बनवाया है", शेष सब निरर्थक है। इसमें कहा

---

७. ब्लोचमन द्वारा अनूदित आईने-अकबरी, पृष्ठ १९१।

गया है कि दो हाथियों सहित किले का एक दरवाज़ा था और उसके अन्दर ५०० भवन थे। इन सबका उल्लेख वर्तमान काल-क्रिया में किया गया है, न कि उस भावना में कि अकबर उन सबका निर्माता था। अबुलफज़ल स्वीकार करता है कि ५०० भवन और किले का दरवाजा अकबर के समय में विद्यमान थे। हाथी-दरवाजा विशिष्ट हिन्दू-लक्षण होने के कारण एक धर्मान्ध मुस्लिम अकबर बादशाह ऐसे दरवाज़े की कभी कल्पना भी नहीं कर सकता था। वह कभी ५०० भवन—वे भी गुजरात और बंगाल शैली में—नहीं बनाता। वह तो अफगानिस्तान, ईरान, तुर्की, अरेबिया, कज़ाकस्तान और उजबेकस्तान के सर्वाधिक धर्मान्ध मुल्लाओं, काज़ियों और मुस्लिम दरबारियों की मण्डली से सदैव घिरा रहता था। (अशिक्षित विदेशी आक्रमणकारियों के झुण्ड में यदि कोई थे तो) वे और उनके मुस्लिम कारीगरों, वास्तुकलाविद तथा रूपरेखांकनकार अपने शहंशाह के किले के बाहर दो गजारोहियों सहित हाथियों की मूर्तियाँ निर्माण करने का विचार भी नहीं कर सकते थे। इस बात पर बल देना अनर्थबोधक है कि अकबर ने एक हाथी-दरवाज़े और हिन्दू शैली के ५०० भवनों सहित एक किला बनवाया था। अबुलफज़ल की गूढ़ और अनिश्चित टिप्पणी से यह अर्थ नहीं निकलता। यह निष्कर्ष ऐतिहासिक दृष्टि से भी अयुक्त है क्योंकि भारत में मुस्लिम शासकों का तथा उनके १००० वर्षीय अवधि के असंख्य आक्रमणों का कारण प्रतिमाओं और भवनों, देव-मूर्तियों और प्रस्तर-चित्रों को तोड़ना, न कि उनका निर्माण करना मुस्लिम धर्मान्धता का सर्वप्रिय रुझान रहा है। उनका सम्पूर्ण जीवन और शासन विध्वंस-कार्य में रत रहा है, न कि निर्माण-कार्य में संलग्न। और फिर भी, उन्हीं के शासन काल की एक हज़ार वर्षीय अवधि में तथा ब्रिटिश शासन के अन्य दो सौ वर्षों में लिखी गई इतिहास-पुस्तकों में उन अकारणीय व्यापक विनाश-कार्यों को दबाया जाकर, मुस्लिम शासकों को विरोधाभासी रूप में महान् निर्माताओं की भाँति प्रस्तुत किया जा रहा है। यह तो इतिहास का अवपतन और विपथगमन है जो लगातार विदेशी शासन का अवश्यम्भावी परिणाम है। यदि अकबर ने कहीं भवनों का निर्माण किया होता, तो वे भवन बुखारा और समरकंद की शैली में होते, न कि गुजरात और बंगाल की शैली में।

अबुलफज़ल का यह स्वीकार करना कि अकबर के गद्दी पर बैठने से मात्र कुछ समय पूर्व ही आगरा सिकन्दर लोधी की राजधानी था और कि अकबर ने इसे केवल 'सजाया-सँवारा' था—चाहे उसका जो भी अर्थ हो—, इस बात का स्पष्ट द्योतक है कि किला पहले ही विद्यमान था, अस्तित्व में था। इस प्रकार का दुर्ग ही ऐसा एकमात्र स्थान था जहाँ विदेशी जनता से घिरा हुआ एक विदेशी बादशाह कुछ सुरक्षा और अलगाव की भावना से हिन्दुस्थान में रह सकता था।

अध्याय ११

निर्माण-कर्ता सम्बन्धी भ्रान्तियाँ

एक सर्वाधिक विचित्र, अद्भुत तथ्य यह है कि यद्यपि कहा जाता है कि सिकन्दर लोधी, सलीमशाह शूर और अकबर जैसे कई मुस्लिम शासकों ने आगरे में किले का निर्माण और पुनर्निर्माण कराया था किन्तु उन शासकों द्वारा नियुक्त रूपरेखांकनकारों और मुख्य कारीगरों का कहीं भी कोई उल्लेख नहीं मिलता है।

ऐसी घोर विसंगतियों को अन्य विचित्र कल्पनाओं द्वारा अनदेखा कर दिया जाता है कि हुमायूँ, अकबर और शाहजहाँ ने स्वयं ही अपने राज-महलों, मस्जिदों और अपने मकबरों के रूपरेखांकन भी तैयार कर लिए थे। घोरतम बर्बर अत्याचारों में लिप्त, आकंठ शराब और मादक द्रव्यों के सेवी और पाँच हजार महिलाओं के हरमों में रंगरेलियाँ करने वाले सभी ऐसे विदेशी अशिक्षित अथवा अर्धशिक्षित शासकों को निपुण वास्तुकार मानना इस बात का ज्वलन्त उदाहरण है कि भारतीय इतिहास, विश्व भर में शताब्दियों से, किस प्रकार अन्धाधुंध पढ़ाया, प्रस्तुत किया जा रहा है और उसीका पिष्ट-पेषण किया जा रहा है। इतिहासकारों को भारतीय ऐतिहासिक शोध और अध्ययन की इस भयंकर विसंगति की ओर अब अधिक जागरूकता प्रदर्शित करनी चाहिए।

एक और बड़ी भ्रान्ति भी है जो ध्यान से चूक गई है। चूँकि सभी मध्यकालीन दुर्ग, राजमहल, राजप्रासाद, भवन, मस्जिद और मकबरे मुस्लिम-पूर्वकाल की हिन्दू-संरचनाएँ हैं जिनको हड़पा गया और मुस्लिम-उपयोग में लाया गया, इसलिए यह तो अवश्यम्भावी था कि वे सब हिन्दू साज-सजावटों, अलंकृतियों से परिपूर्ण हों। अतः उन तथाकथित मुस्लिम मकबरों

और मस्जिदों की हिन्दू अलंकृति एवं अन्य विशिष्टताएँ प्रदर्शित करने वाली विविध दृश्यमान असंगति का समाधान करने के प्रयोजन से भारतीय इतिहास के आंग्ल-मुस्लिम वर्ग ने इस असत्य कथा, गप्प का आविष्कार कर लिया कि चूँकि उन भवनों के रूपरेखांकनकार और निर्माता स्पष्टत: हिन्दू थे, इसलिए उन्होंने मुस्लिम अधिपतियों द्वारा आदेशित भवनों को हिन्दू शैली में, पूर्णत: अलंकृत, निर्बाध रूप में बना दिया। इस कथन में एक नहीं, कई बेहूदगियाँ हैं। ध्यान रखने की पहली बात यह है कि किसी भी मुस्लिम ग्रन्थ में किसी भी हिन्दू को किसी भी भवन का रूपरेखांकन तैयार करने का श्रेय नहीं दिया गया है। उदाहरण के लिए, ताजमहल के रूपरेखांकन का श्रेय एक काल्पनिक ईस्सा अफन्डी या एहमद महन्दिस या स्वयं शाहजहाँ को दिया जाता है। आगरे में बने हुए लालकिले के सम्बन्ध में, किसी मोहम्मद कासिम नाम के व्यक्ति का उल्लेख, चलते-चलते अनिश्चयपूर्वक कर दिया जाता है। इस प्रकार, जब मुस्लिम वर्णन-ग्रन्थों के अनुसार सभी रूपरेखांकनकार और और मुख्य कारीगर मुस्लिम ही थे, तब उनके द्वारा निर्मित सभी भवनों की साज-सजावट हिन्दू क्यों हो? दूसरी बात यह है कि भवन का निर्माता ही इस बात का निर्णायक होता है कि भवन किस प्रकार का बनाया जाय। किराए के कारीगर, मजदूर को कुछ कहने-करने का अधिकार नहीं होता। फर्ग्युसन और पर्सी ब्राउन जैसे भयंकर भूल करने वाले पश्चिमी लेखकों ने अनेक बार कल्पनाएँ कर ली हैं और इस बात को साग्रह कहा है कि मुख्य रूपरेखांकनकार तो किसी भी भवन का स्थूल-रेखांकन किया करते थे और उनके सूक्ष्म विवरण वास्तविक कारीगरों और श्रमिकों द्वारा निश्चित किए जाने के लिए छोड़ दिया करते थे। यह एक अन्य बेहूदगी है। अपने नाम की प्रतिष्ठा रखने वाला कोई भी छोटा-मोटा रूपरेखांकनकार हज़ारों कारीगरों को उनकी अपनी-अपनी सौन्दर्य अभिरुचि, मनपसन्दगी, स्तर और प्रेरणा के अनुसार, अनुपयुक्त रूप में पूर्ण करने के लिए उन सूक्ष्म विवरणों को उनके ऊपर छोड़ेगा नहीं। यदि कोई इस प्रकार की अव्यावहारिक बेहूदगी करेगा, तो उसका फल यह होगा कि भवन समरूप सुन्दरता का प्रतीक होने के स्थान पर अनेक पसन्दगियों और कारीगरों की विभिन्न कुशलताओं के स्तर का विचित्र वास्तुकलात्मक वीभत्स चित्र प्रस्तुत करेगा। साथ ही, विभिन्न

कारीगरों को उस भवन निर्माण के कार्य में कोई प्रगति करनी कठिन होगी क्योंकि उनमें प्रेरणा और कल्पना का सर्वथा अभाव रहेगा। अन्य बेहूदगी यह है कि जब तक किसी भवन का आदि से अन्त तक सूक्ष्मतम विवरण प्राप्त, तैयार नहीं हो जाता, अभीष्ट पत्थरों के विभिन्न आकारों-प्रकारों व छायाओं तथा उनकी मात्रा का आदेश तब तक कैसे दिया जा सकता है ?

इससे भी बढ़कर उपहासास्पद बेहूदगी यह कल्पना और धारणा है कि एक निर्धन, दलित, हतोत्साह, पीड़ित और दमनात्मक मध्यकालीन हिन्दू कारीगर/श्रमिक यह आग्रह करके कि वह किसी भी मुस्लिम मकबरे या मस्जिद को हिन्दू-चिह्नों से कलंकित किए बिना नहीं छोड़ेगा, एक महान् मध्यकालीन मुगल अधिपति का अपमान और क्रोध प्रज्वलित करने का दुराग्रह और धृष्ठता करेगा। क्या कोई साधारण गृहस्थी व्यक्ति भी इसे सहन करेगा कि कोई भाड़े का कारीगर भवन की साज-सजावट मनमानी करने का आग्रह अथवा दुराग्रह करे। क्या मध्यकालीन मुगलों को वह निरंकुश-सत्ता प्राप्त नहीं थी कि वे ज़रा-सा भी निरादर करने वाली अपनी निरीह जनता को पीस डालें ?

विचारणीय अन्य बात यह भी है कि जब कोई निर्धन कारीगर अपने उपकरणों के थैले सहित काम की तलाश में किसी मालिक-मकान के पास जाता है, तो क्या वह यह कहने अथवा मनवा सकने की स्थिति अथवा चित्तवृत्ति में होता है कि चूँकि वह हिन्दू है, अत: काम मिलने की स्थिति में वह अपनी इच्छानुसार उस मकबरे या मस्जिद को हिन्दू शैली में बनाएगा ! यदि वह उपर्युक्त बात कहता है तो उसको काम मिलना तो दूर रहा, उसका चाम ही खींच लिया जाएगा। साथ ही, कोई कारीगर जीविकोपार्जन में अधिक रुचि लेगा अथवा अपने भावी स्वामी अधिकारी को अपनी शर्तें मनवाने में लगेगा ? इस प्रकार के आग्रह में उसकी रुचि क्यों होगी ? यदि उसने ऐसा किया तो वह अपना या अपनी पत्नी तथा पुत्र का पेट भी नहीं पाल पाएगा ! ऐसी धृष्ट और बेहूदी बातें कहने का साहस तो उसे किसी साधारण व्यक्ति के सम्मुख भी नहीं होगा, सर्वशक्ति-सम्पन्न, निष्ठुर विदेशी बादशाह से वाचालता करने का तो प्रश्न ही अलग है। क्या कोई साधारण व्यक्ति—कारीगर—किसी ताकतवर फौज के और गणमान्य व्यक्तियों के

समक्ष ऐसी प्रगल्भता कर सकता है ! इतना ही नहीं, कल्पना को पूरी छूट देते हुए यह भी मान लिया जाय कि किसी एक कारीगर की इन धृष्ट और उपहासास्पद शर्तों को स्वीकार कर लिया जाएगा तो भी सैकड़ों पीढ़ियों तक हज़ारों हिन्दू कारीगर किस प्रकार मुस्लिम सुलतानों एवं नवाबों से इन शर्तों को मनवाते रहे हैं कि उनके मकबरों और मस्जिदों को हिन्दू मन्दिरों और राजमहलों की आकृतियों में ही बनाया जाएगा ? इस प्रकार के कथन का एक बेहूदा निष्कर्ष यह निकलता है कि महान् मुगल या क्रूर मुस्लिम सुलतान लोग हिन्दू कारीगरों से आदेश लिया करते थे। अतः इतिहास के विद्यार्थियों, रचयिताओं, लेखकों आदि को उपर्युक्त बेहूदी कल्पनाओं और धारणाओं द्वारा अपनी विचारशील बुद्धि को जड़ीभूत संज्ञाशून्य नहीं होने देना चाहिए।

अब आगरा स्थित लालकिले की समीक्षा करते हुए हम देखते हैं कि किले का निर्माण-श्रेय सिकन्दर लोधी, सलीम शाह सूर या अकबर को देने वाले किसी भी वर्णन में यह उल्लेख करने का कष्ट नहीं किया गया है कि उन बादशाहों के लिए बारम्बार किले का रूपरेखांकन और निर्माण-कार्य किन लोगों ने किया था।

अकबर के बारे में हमें बताया जाता है कि किला[1] "मोहम्मद कासिम खाँ, मीरे-बहर (बन्दरगाह अधिकारी) के अधीक्षण में बना था।"

आइए, हम उपर्युक्त दावे की सूक्ष्म-समीक्षा करें। सर्वप्रथम बात यह है कि आगरे का विशालकाय, विराट लालकिला क्या इतनी नगण्य वस्तु है कि इसका निर्माणोल्लेख मात्र एक पंक्ति में कहकर समाप्त कर दिया जाय, मानो यह कोई पल भर में बन जाने वाला जादुई महल हो। इस प्रकार की विशालाकार राज्य परियोजना के दरबारी प्रलेख तथा अन्य संगत विवरण कहाँ हैं ? यदि कोई अभिलेख नहीं हैं, तो उनके लुप्त, अप्राप्य होने के कारण क्या हैं ? अकबर को जिन सैकड़ों भवनों का निर्माण-श्रेय दिया जाता है, उनमें से एक के बारे में भी प्रलेख की एक धज्जी भी उपलब्ध नहीं है। यदि कोई प्रलेखादि न भी हों, तो भी उनके पूर्ण विवरण देने वाले विशद्

१. श्री एम० ए० हुसैन कृत 'आगरे का किला', पृष्ठ २।

विवरणात्मक लेखा, वर्णनादि तो होने ही चाहिए। उनका भी सर्वथा अभाव है।

'अधीक्षण' का जहाँ तक सम्बन्ध है, उसका कोई अर्थ नहीं है। निर्माण-स्थल के समीप खड़ा हुआ या इधर-उधर टहलता हुआ व्यक्ति अधीक्षक समझा जा सकता है, चाहे वह हिजड़ा हो अथवा बादशाह। हमें वास्तव में जिस बात की आवश्यकता है वह खाई, विशाल दीवार, उच्च स्तंभ, द्वार, भव्य हाथी, शानदार ५०० भवन और अत्युत्तम साज-सजावट के निपुण-रूपरेखांकनकार का नाम। इसके बाद हम उस व्यक्ति का नाम जानना चाहेंगे जिसने वह स्थल विशेष पसन्द किया, इसका भूतपूर्व स्वामी कौन था, इसे किस प्रकार अधिग्रहण किया गया था, मुख्य शिल्पकार, कारीगर, कलाकार और चित्रकार कौन-कौन थे ? इन विवरणों के सम्बन्ध में मुस्लिम आंग्ल वर्णन ग्रंथ पूर्णतः चुप्प, गूँगे, अवाक् और निःशब्द हैं। यह शान्त रहना स्वयं ही प्रतिफलदायक है। एक अपहरणकर्ता किसी राजमहल के निर्माण के बारे में विवरण दे ही क्या सकता था ? इसके लिए हमें किले के २००० वर्ष पुराने युग के मूल हिन्दू निर्माताओं की ओर अभिमुख होना पड़ेगा किन्तु वे सब मृत और प्रस्थान कर चुके हैं और उनकी सम्पत्ति पर उन विरोधी विदेशियों का शताब्दियों तक आधिपत्य रहा है जो एक विचित्र भाषा बोलते थे और जो अफगानिस्तान व अबिस्सीनिया जैसे दूर-दूर तक स्थित देशों की विदेशी संस्कृतियों का अनुसरण करते थे।

अतः हम निष्कर्ष निकालते हैं कि मोहम्मद कासिम का नाम तो इतिहास के आँग्ल-मुस्लिम वर्ग ने मात्र ढकोसला करने अथवा प्रलोभन के लिए प्रस्तुत कर दिया है। चूँकि उसका नाम वहाँ दिया ही गया है, अतः हम स्वीकार करते हैं और यह सार निकालते हैं कि मोहम्मद कासिम को अकबर द्वारा यह काम सौंपा गया था कि वह अकबर का सारा साज-सामान ऊँटों, गधों, बैलों, घोड़ों और हाथियों पर लदवाकर किले तक ले जाए, वहाँ उतरवाए और किले के विभिन्न बड़े-बड़े भागों में ठीक-ठाक रखवा दे। यही उसका अधीक्षण कार्य था जो उसने किया। चूँकि हिन्दू किला पहले ही विद्यमान था, इसलिए निर्माण कुछ करवाना नहीं था और इसीलिए पर्यवेक्षण का, अधीक्षण का तत्सम्बन्धी कोई कार्य था ही नहीं।

किन्तु यह भी कथा का अन्त नहीं है। भारतीय इतिहास के प्रत्येक आंग्ल-मुस्लिम भाष्य की भाँति इस क्षेत्र में भी मोहम्मद कासिम एकमात्र व्यक्ति नहीं है। अकबर की ओर से किले का निर्माण करवाने के बाद स्वयं यश-प्राप्ति की इच्छा से होड़ करने वाले अनेक प्रतियोगी हो सकते हैं। उदाहरण के लिए हम महाराष्ट्रीय ज्ञानकोश में दिया गया वर्णन लेखा प्रस्तुत करते हैं। इसका कहना है : "करौली का शासक गोपालदास अकबर का प्रिय पात्र था। अकबर के कहने पर उसने आगरे के किले की नींव रखी थी।" इस वर्णन में मोहम्मद कासिम का कहीं नाम-निशान भी नहीं है। हमें एक प्रतियोगी दावेदार मिल जाता है जो इस बार हिन्दू है।

आइए, हम उपर्युक्त कथन की सूक्ष्म जाँच-पड़ताल करें। सभी व्यक्तियों में से गोपालदास एक हिन्दू शासक को ही किले की नींव रखने के लिए अकबर द्वारा क्यों कहा जाय ? उसमें कौन-सी विशेषताएँ थीं ? यह आदेश देने के समय अकबर कहाँ ठहरा हुआ था ? क्या गोपालदास अपने लिए कोई किला नहीं बनाता, यदि उसने अकबर के लिए किला बनाया था ? उसके लिए धन किसने दिया ? क्या इसके लिए धन अकबर ने दिया था अथवा अकबर के रहने के लिए बनाए गए किले का सारा व्यय भी गोपाल-दास को वहन करना ही अभीष्ट था ? यदि गोपालदास ने धन व्यय किया था तो फिर अकबर को यश क्यों दिया जाए ? यदि गोपालदास ने किले का मात्र रूपरेखांकन ही तैयार किया था तो उसे इस कार्य के लिए कितना धन दिया गया था ? और किले का रूप-रेखांकन तैयार करने के लिए उसकी क्या विशेष योग्यता थी ? ऐसे सभी प्रश्न सहज रूप में उपस्थित हो जाते हैं।

यह ज्ञानकोश का वर्णन भी लागत, निर्माणावधि और आवासीय-योजनाओं के सम्बन्ध में गम्भीर चुप्पी लगाए है।

यहाँ यह भी ध्यान रखना चाहिए कि ज्ञानकोश का दावा मात्र यह है कि गोपालदास ने अकबर के आदेश पर किले की 'नींव रखी थी'। वह नहीं कहता है कि उस व्यक्ति ने स्थल का सर्वेक्षण किया था उसे ग्रहण किया या खाई बनवायी या विशाल दीवार खड़ी की अथवा किले के भीतर भव्य भवनों का निर्माण किया था। इसी बात में एक कहानी छुपी हुई है।

हम इस अवसर पर 'नींव रखी' शब्दों के भ्रम-जाल के प्रति सभी इतिहास के विद्यार्थियों और शोधकर्त्ता विद्वानों को सतर्क, सावधान करना चाहते हैं। उन मध्यकालीन मुस्लिम तिथिवृत्तकारों द्वारा प्रयोग में लाई गई यह सर्वाधिक छल-कपट वाली शब्दावली है जो पूर्वकालिक हिन्दू शासकों के अपहृत भवनों, राजमहलों, राजप्रासादों आदि के निर्माण का श्रेय अपने संरक्षक शाही बादशाहों को देने के लिए बारम्बार उपयोग में लाई गई है। वे लोग अपने स्वामियों को झूठा निर्माण-श्रेय देना चाहते थे। शाहजहाँ के एक कर्मचारी मुल्ला अब्दुल हमीद लाहौरी ने, जिसने यह आप स्वीकार किया और माना है कि (जयपुर के शासक) राजा मानसिंह के पौत्र जयसिंह के विस्मयकारक अति विशाल उद्यान राजप्रासाद में शाहजहाँ ने अपनी पत्नी मुमताज़ को दफनाया था, अकस्मात् लिख दिया है कि शाहजहाँ ने मकबरे की 'नींव रखी'। शब्दावली का शब्दशः अर्थ लगाने पर इतनी निपुणतापूर्वक यह शब्द समूह तैयार किया गया प्रतीत होता है कि इसमें धोखा देने के सभी प्रयत्नों का प्रतिवाद किया गया लगता है, फिर भी यह झूठे दावे करने में अति सरलता से सफल हो गया है। कम-से-कम इतिहासकारों को तो पूरा विश्वास हो गया है और वे 'नींव रखी' का अर्थ 'बनाया' लगाते रहे हैं। 'मुमताज के मकबरे की नींव रखी' शब्दावली का कुल अर्थ इतना ही था कि उस महान् हिन्दू मन्दिर राजप्रासाद संकुल के केन्द्रीय-कक्ष में एक गड्ढा खोदा गया था और मुमताज़ को उसमें दबा दिया गया था। चूँकि किसी भी नींव में एक खाई खोदने और उसे भरने का काम सन्निहित है, अतः मुल्ला अब्दुल हमीद लाहौरी यह कहने में शब्दशः सही है कि शाहजहाँ ने एक गड्ढा खुदवाया था और मुमताज़ बेगम का पिण्ड उसमें रख देने के बाद उसे बन्द करवा दिया था, उसे भरवा दिया था। इस प्रकार मकबरे अर्थात् कब्र की 'नींव' सत्य ही एक राजकीय हिन्दू मन्दिर राजप्रासाद संकुल के केन्द्रीय-कक्ष में रखी गई थी।

अतः पाठक को सदैव स्मरण रखना चाहिए कि आंग्ल-मुस्लिम तिथिवृत्तों तथा वर्णन-ग्रन्थों में जब भी कभी 'नींव रखी' अस्पष्ट, अनिश्चित और दुर्बोध शब्दावली मिले तब तुरन्त यह समझ लेना चाहिए कि किसी दरबारी चाटुकार द्वारा पूर्वकालिक हिन्दू भवन को शठता और उग्रवादितापूर्वक

मुस्लिम स्वामी द्वारा निर्मित किए जाने की भावना को फैलाने का भ्रमजाल मात्र है। अटलांटिक सागर से प्रशांत महासागर और बाल्टिक समुद्र से भारतीय (हिन्द) महासागर तक के सभी भवनों पर इस्लामी दावे प्रस्तुत करते समय उसी भ्रामक 'की नींव रखी' शब्दावली को उदारतापूर्वक व्यवहार में लाया गया, मुक्त-हृदय से इधर-उधर प्रयोग किया गया, चुन-चुनकर सही दिशा देने के लिए प्रयोग किया गया और अनेक मुस्लिम तिथि-वृत्तों में प्रायः इस्तेमाल किया गया देखा जा सकता है। भारत में की गई इस हमारी खोज से कदाचित् स्पेन और इज़रायल जैसे देशों के इतिहास लेखक भी मध्यकालीन भवनों पर मुस्लिम निर्माण और स्वामित्व के दावों को सहज, सरल रूप में स्वीकार न करने की प्रेरणा ग्रहण कर पाएँगे। अधिकांश मामलों में वे भवन मुस्लिम आक्रमणों से पूर्व विद्यमान भवन ही होते हैं जो ज़बरन हथिया लिए गए निकलते हैं। यह बात सहज रूप में ग्राह्य, स्वीकार्य होनी चाहिए। जब व्यक्ति इस पर विचार करता है कि एक आक्रमणकारी की धृष्टता यदि यह होती है कि वह दूसरे की भूमि और देश को अपना कह सकता है तो वह यह दावा करने की उद्दण्डता भी कर सकता है कि उस देश के सभी भवन उससे अथवा उसके पिता से सम्बन्धित उनका निर्माण उन्हीं लोगों के द्वारा किया हुआ था।

हिन्दुस्थान के मध्यकालीन मुस्लिम आक्रमणकारियों के मामले में तो यह एक पूर्वनिश्चित निष्कर्ष ही था कि जब उन्होंने हिन्दुस्थान को अपनी सम्पत्ति घोषित किया, तब उन्होंने स्वाभाविक रूप में ही उत्तेजित होकर सभी पूर्वकालिक हिन्दू भवनों को हड़प लिया और बड़े परिश्रम से उन सबों पर अपने ही होने के दावे किए। उसी कहानी को आगरा-दुर्ग के बारे में भी दोहराया गया है। अपनी विजय के कारण आगरे पर सर्वप्रथम अपना अधिकार जताने वाले मध्यकालीन मुस्लिम शासकों ने बाद में ये झूठी कथाएँ भी प्रचारित कर दीं कि उन्हीं लोगों ने स्वयं आगरा शहर की स्थापना की थी, और स्वयं ही वहाँ के सभी भवनों और राजमहलों का निर्माण किया था। सभी आक्रमणकारियों की यह साधारण कमजोरी है। यदि धौंसियों का एक दल किसी भवन के स्वामी को उससे बाहर निकाल पाने में सफल हो जाता है तो वह दल कभी स्वीकार नहीं करता कि उसने

अवैध कब्जा कर रखा है। वे अहंकार और निर्लज्जता के स्वर में यही कहते हैं कि सम्पूर्ण सम्पत्ति पर अधिकार वास्तव में उसका ही था और वास्तव में बाहर निकाला गया स्वामी ही इस भवन में अनधिकारपूर्वक प्रविष्ट हो गया था।

यही कहानी आगरा-स्थित प्राचीन हिन्दू लालकिले के सम्बन्ध में सिकन्दर लोधी, सलीमशाह सूर और अकबर के नाम से झूठे दावे प्रस्तुत करते समय दोहराई गई है, जैसा हम पूर्व में ही देख चुके हैं तथा इसके दो काल्पनिक रूपरेखांकनकारों सहित किले के सभी पक्षों पर विवेचन करते समय प्रदर्शित कर चुके हैं।

अध्याय १२

आँग्ल-मुस्लिम इतिहासकारों की समस्या

अनवरत विदेशी शासन की पराधीनता की १००० वर्षीय लम्बी अवधि में भारत दो प्रकार के विदेशियों की दासता में आबद्ध रहा। पहला प्रकार यद्यपि अरबों, अबिस्सीनियनों, तुर्कों, ईरानियों, उजबेकों, कजाकों और अफगानों के विशाल, बहुविध वर्गीकरण में था, परन्तु उन सब लोगों ने आतंक, भीषण यातनाएँ और विध्वंश करने तथा सभी स्थानों पर इस्लाम का सामान्य आधिपत्य स्थापित करने में अपने रुझान को सगर्व घोषित किया था। चाहे वह व्यक्ति मोहम्मद बिन कासिम, गजनी, गोरी, अला-उद्दीन, तैमूरलंग, नादिरशाह, अहमदशाह अब्दाली अथवा बाबर से प्रारम्भ करके कोई-सा भी अन्य मुगल सरदार रहा हो, उन सभी ने उच्च स्वर से घोषणाएँ की थीं कि उनका जीवन-उद्देश्य पृथ्वी से इस्लाम के अतिरिक्त सभी धर्मों, विश्वासों और सभी 'काफिरों' (सभी गैर-मुस्लिमों) को साफ कर देना था।

अन्ततोगत्वा सफल होने वाला दूसरा विदेशी प्रकार ब्रिटिश लोगों का था, जो भारतीय साम्राज्य का निर्माण करने में संलग्न अनेक यूरोपीय शक्तियों में से एक था। प्रथम वर्ग से बिल्कुल भिन्न, यह वर्ग न तो अशिक्षित बर्बरों का था और न ही धर्मान्ध-व्यक्तियों का। सर्वप्रथम बात तो यह थी कि इस वर्ग ने यह विश्वास नहीं किया था कि सन् ६२२ ई० में ही धर्म, नागरिक-शास्त्र, आधि-तात्त्विकी, नैतिकता, कानून और न जाने किन-किन बातों के बारे में सम्पूर्ण बातें, सब कुछ कहा जा चुका था। वे तर्क और प्रगति का स्वागत करते थे। वे इनमें विश्वास नहीं करते थे कि प्रत्येक वस्तु को बुर्के या परदे से आवृत रखा जाय। भारत के विदेशी शासकों में इस

प्रकार का घोर अन्तर विद्यमान था। किसी भी इतिहास लेखक को उन दोनों को विदेशी की समान श्रेणी में नहीं रखना चाहिए और न ही वह ऐसा कर सकता है। वह दोनों को अपने पराधीन करने वाले अच्छे या बुरे विदेशी नहीं कह सकता। आदमी-आदमी और विदेशी-विदेशी में अन्तर है। यही कारण है कि ब्रिटिश लोगों को तो लगभग बातचीत करके ही भारत से बाहर कर दिया गया। उन लोगों ने भारत को मध्यकालीन अराजकता और विधिहीनता की स्थिति से बाहर निकाला और न्यायिक-व्यवस्था, सार्वजनिक डाक-प्रणाली, दूर-संप्रेषण, रेल-प्रबंध, आधुनिक प्रशासन तथा सामान्य राष्ट्रीय दृष्टिकोण जैसी सामान्य आधुनिक सुविधाएँ प्रदान कीं।

किन्तु अपनी सम्पूर्ण विद्वत्ता और ग्रहणशील मस्तिष्क होने पर भी ब्रिटिश लोग मध्यकालीन मुस्लिम तिथिवृत्तों में समाविष्ट इतिहास की असत्यता की गहराई को भाँप पाने में असफल रहे। उनके लिए तो मूल-निवासी हिन्दू और विदेशी अरबों अथवा तुर्कों में कोई अन्तर न था, दोनों ही विदेशी थे। अतः उन्होंने यह अनुभव नहीं किया कि भारत में दिखाई देने वाले राजमहलों और भवनों का स्वामी और निर्माता हिन्दू था तथा तुर्क, अफगान और फारसी लोग तो मात्र लुटेरे और विध्वंसक थे। इस बात की अनुभूति न कर लेने के कारण, उन लोगों ने मध्यकालीन मुस्लिम तिथि-वृत्तों को, बिना उसमें समाविष्ट छल-कपट को समझे ही अनुवाद करना प्रारंभ कर दिया। उन ग्रन्थों में छपी हुई गलत बातों को ढूँढ़े बिना ही उन लोगों ने उनका भाषान्तरण कर दिया। यदा-कदा, सर एच० एम० इलियट अथवा इतालवी टैस्सिटरी ने इसे अनुभव किया और टिप्पणी भी की कि भारत में मुस्लिम-युग का इतिहास 'एक अत्यन्त रोचक व जान-बूझकर किया हुआ धोखा' है। किन्तु वह अनुभूति भी मात्र अस्पष्टता ही थी। वे उनको सुनिश्चित न कर सके तथा तथ्यों की तोड़-मरोड़ और विध्वंस का अंदाज न लगा सके। यही कारण है कि हमें कीन जैसे कई ब्रिटिश लेखक मिलते हैं जो मध्यकालीन तिथिवृत्तों की विसंगतियों पर असन्तोष और आश्चर्य व्यक्त करते हैं, तथापि यह बताने में विफल रहते हैं कि वास्तव में गलती कहाँ, कौन-सी और कितनी थी। अतः हम आगरा-स्थित लालकिले के बारे में पश्चिमी इतिहासकारों को भी मुस्लिम-ग्रन्थों की वही तोतली

भाषा बोलते हुए तथा उसमें सभी प्रकार के 'यदि' और 'किन्तु-परन्तु' लगाते हुए पाते हैं।

आगरे के लालकिले के सम्बन्ध में उन्हीं असंगत, भ्रामक, परस्पर विरोधी और विसंगत मत-मतान्तरों को स्वयं हिन्दू विद्वानों ने भी दोहराया है। किन्तु चूंकि उनकी शिक्षा-दीक्षा आंग्ल-मुस्लिम शैक्षिक-प्रणाली द्वारा हुई और उन्हीं की विचारधारा उनके दिमागों में ठूंस-ठूंसकर भर दी गई थी तथा ये उस प्रणाली के अनुसेवी थे, अतः उनको स्वतन्त्रतापूर्वक विचार करने अथवा बोलने की मानसिक क्षमता, छूट नहीं थी। उनके विदेशी शासक बिना किसी नू-नच किए सेवा चाहते थे। इसलिए, उनकी अनिवार्यतावश उन लोगों की तार्किक-शंकाएँ सदैव के लिए शान्त कर दी गई थीं। अतः हम जब कभी आगरे के लालकिले के सम्बन्ध में आंग्ल-मुस्लिम व्याख्याओं का सन्दर्भ प्रस्तुत करते हैं, तब हमारा प्रयोजन मुस्लिम (विदेशी) शासन के अधीन भारत में प्रचलित परम्परागत मतों और शिक्षा की विदेशी प्रणाली के अन्तर्गत प्रचारित वादों से है।

हम इस अध्याय में उपर्युक्त परिभाषा के अनुसार आंग्ल-मुस्लिम वर्ग की पुस्तक के बाद पुस्तक का उद्धरण प्रस्तुत करना और यह प्रदर्शित करना चाहते हैं कि आगरे के लालकिले के मूल के सम्बन्ध में प्रत्येक मामले पर वे सब निरुत्तर हो जाते हैं और अस्पष्ट तथा अनिश्चित भाषा का प्रयोग करते हैं। वे प्रत्येक स्थल पर, "विश्वास किया जाता है, सम्भव है, ऐसा हो सकता है, यह सम्भावना है, यह बताया जाता है, यह अनुमान है, आम धारणा है, किसी को मालूम नहीं, विचार किया जाता है, यह प्रायिक है" आदि शब्दावली का प्रयोग करते हैं।

हम सर्वप्रथम पाठक के सम्मुख श्री एम० ए० हुसैन की पुस्तक से सन्दर्भ प्रस्तुत करेंगे। वे भारत सरकार की सेवा में पुरातत्वीय कर्मचारी थे और इसलिए उनको ज्ञान होना ही चाहिए। वे कहते हैं: [1]"मुगलों से पूर्व आगरा में एक किला था यह तो स्वतः स्पष्ट है...किन्तु निश्चयपूर्वक यह नहीं कहा जा सकता कि यह...बादलगढ़ था।"

---

१. श्री एम० ए० हुसैन कृत 'आगरे का लालकिला', पृष्ठ १।

[२]"परम्परा साग्रह कहती है कि बादलगढ़ के पुराने किले को, जो सम्भवतः प्राचीन तोमर अथवा चौहान (हिन्दू शासनकर्त्ता राजवंश) का सुदृढ़ दुर्ग था, अकबर ने अपनी आवश्यकताओं के अनुसार परिवर्तित और अनुकूल बना लिया था। किन्तु जहाँगीर द्वारा इसकी पुष्टि नहीं हो पाती…।"

[३]"वर्तमान किला अकबर द्वारा लगभग आठ वर्ष में बनाया गया था… परम्परागत रूप में किले की रचना के लिए सन् १५६७ से १५७१ तक की विभिन्न तारीखों का उल्लेख किया जाता है। तुजुके-जहाँगीरी रचनाकाल १५ या १६ वर्ष बताती है किन्तु बादशाहनामा और आईने-अकबरी सम्भवतः यह कहने में सही हैं कि इस किले को आठ वर्ष की अवधि में पूरा कर दिया गया था…। आईने-अकबरी इसका मूल्य लगभग रु० ३५०० लाख के बराबर बताती है। खफ़ी खान ने व्यय का अनुमान रु० २००० लाख लगाया है। भवनों का क्रम मोटे तौर पर ऐसा है : अकबर ने इसकी दीवारों, दरवाज़ों और अकबरी महल को बनवाया, जहाँगीर ने जहाँगीरी महल और सम्भवतः सलीमगढ़ को तथा औरंगजेब ने दुर्ग-प्राचीर, पाँच दरवाज़े और बाहरी खाई का निर्माण कराया था।"

[४]"अन्त में उल्लेख किया गया (उत्तर-पूर्वी) दरवाज़ा सम्भवतः पूर्व की ओर प्रवेश करने के लिए सार्वजनिक प्रवेश द्वार था…जबकि जल-द्वार अष्टकोणात्मक स्तम्भ के दक्षिण में बने प्रांगण के लिए पहुँच-मार्ग प्रतीत होता है। यह सम्भवतः शाही हरम के लिए सुरक्षित रखा गया होगा, जिसके लिए यह किसी समय सुन्दर ढंग से अलंकृत रहा होगा।"

[५]"परम्परा रूप में साग्रह कहते हैं कि (लाल बालुकाश्म खम्भे पर) निशान राव अमरसिंह की विधवा के कंकणों से हुए थे…किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि वे पहियों की रगड़ से अथवा विशाल दरवाज़े के कुछ नुकीले कीलों के खुलने-बन्द होने से हो गए थे।"

---

२. वही।
३. वही, पृष्ठ २।
४. वही, पृष्ठ ३।
५. वही, पृष्ठ ४-५।

[६]"अमरसिंह दरवाज़ा किसी बाद के काल में शाहजहाँ द्वारा बनवाया गया सामान्यतया विश्वास किया जाता है···किन्तु वास्तुकलात्मक दृष्टि से इसे दिल्ली दरवाज़े से भिन्न नहीं किया जा सकता और यह सन्देह करने के लिए कोई कारण नहीं है कि ये दोनों ही प्रवेशद्वार अकबर द्वारा बनाए गए थे।"

[७]"सलीमगढ़ को परम्परागत रूप में सलीमशाह सूर द्वारा बनाए गए राजमहल के स्थल का द्योतक समझा जाता है, किन्तु उसे कदाचित् शाहज़ादे सलीम द्वारा बनाया गया था···। भवन का निर्माण-प्रयोजन ज्ञात नहीं है। तथापि, यह अकबरी महल से लगा हुआ संगीत-कक्ष (नौबतखाना) नहीं कहा जा सकता, जैसा कीन ने अनुमान लगाया है ··। किन्तु यह कल्पना की जा सकती है कि इसे दीवाने-आम से लगे हुए नौबतखाने के रूप में उपयोग में लाया गया होगा।"

[८]"हौज़े-जहाँगीरी (एक हलके रंग के पत्थर के एक ही खंड से काटकर बनाए गए चषक (प्याले) के आकार के जल-कुंड) पर लगे शिलालेख से कल्पना होती है कि इस कटोरे का सम्बन्ध बादशाह जहाँगीर की नूरजहाँ से उस वर्ष सन् १६११ ई० में हुई शादी से है और यह पात्र वर या वधू की ओर से विचित्र उपहार रहा होगा।"

[९]"आईने-अकबरी का लेखक (अर्थात् अकबर का अपना दरबारी-तिथि-वृत्तकार अबुलफ़ज़ल) विचार करता है कि बंगाली महल (अर्थात् अकबरी महल) सन् १५७१ में पूरा हुआ था। परिस्थितियों में, लगभग वही तिथि अकबरी महल की संरचना को देना भी अयुक्तियुक्त नहीं होगा, जिसका सम्भवतः यह कभी भाग था।"

[१०]"(अकबरी बाओली अर्थात् कूप के निकट का) कमरा गर्मी के दिनों

---

६. वही, पृष्ठ ५।
७. वही, पृष्ठ ५-६।
८. वही, पृष्ठ ६-७।
९. वही, पृष्ठ १।
१०. वही, पृष्ठ ८।

में शाही परिवार के सदस्यों के लिए शीतल विश्रामघर का काम देता रहा होगा।"

[११]"जहाँगीरी महल…फतहपुर-सीकरी स्थित जहाँगीरी महल के अत्यधिक समरूप होने के कारण विश्वास किया जाता है कि अकबर द्वारा अपने पुत्र जहाँगीर के लिए बनवाया गया था। किन्तु यह कल्पना करना अयुक्तियुक्त है कि बादशाह ने दक्षिण में बने हुए अपने राजमहल को अपने शाहज़ादे के महल के लिए गिरा दिया, जिससे कि पूर्वकालिक महल ध्वस्त और अननुरूप हो गया। यह सम्भवतः जहाँगीर द्वारा निर्मित हुआ था… कुछ कमरों सहित, जो सम्भवतः सेवकों की कोठरियाँ थीं, एक संकुचित प्रांगण, केन्द्रीय प्रांगण की दक्षिणी दीवार के पिछवाड़े के साथ-साथ चला गया है।"

[१२]"(जोधबाई के श्रृंगार-कक्ष के) ऊपर छोटा गलियारा सम्भवतः रक्षकों (महिलाओं और हिजड़ों) द्वारा उपयोग में लाया जाता था जो मुगल राजमहलों में रक्षक और गुप्तचर, दोनों ही प्रकार से नियुक्त थे। चतुरांगण के पश्चिम में एक कमरा है…परम्परा का अनुमान है कि इस कमरे को जहाँगीर की माँ और पत्नी द्वारा मन्दिर के रूप में उपयोग में लाया जाता था। वे दोनों राजपूत राजकुमारियाँ थीं।…दक्षिण की ओर एक छोटा कमरा है…जो कदाचित् नौकरों के उपयोग हेतु बना हुआ था।"

[१३]"शाहजहाँनी महल को कहा जाता है कि शाहजहाँ बादशाह द्वारा अपनी रुचि और आवश्यकताओं के अनुकूल बना लिया गया था…स्तम्भ-दीर्घा सम्भवतः वह बुर्ज थी जो नदी पर प्रलम्बी थी और जिसको सन् १६४० में टेवरनियर ने देखा था।"

[१४]"खास महल सन् १६३७वें वर्ष के लगभग शाहजहाँ द्वारा बनवाया गया था जिसने निश्चित ही इस भवन के स्थान के लिए अपने बाप या दादा द्वारा बनवाए गए भवनों में से कुछ को अवश्य ही गिराया होगा…और

११. वही, पृष्ठ ६।
१२. वही, पृष्ठ १०-११।
१३. वही, पृष्ठ ११-१२।
१४. वही, पृष्ठ १४।

सम्भवतः उत्तरी और दक्षिणी दर्शक-मण्डपों सहित मुख्यतः संगमरमरी संरचना का था।"

[15]"इस (दक्षिणी दर्शक-मण्डप) भवन का अभिज्ञान भी विवादेय है।"

[16]"शीशमहल सन् १६३७वें वर्ष में बना था और खास महल के हमाम (स्नानघर) के रूप में प्रयोग में आता था···उनमें अत्युत्तम चित्रकारियों के लक्षण तथा उनमें से कुछ में संगमरमरी आवरण की उपस्थिति से कोई व्यक्ति यह निष्कर्ष निकाल सकता है कि ये प्रकोष्ठ परिचारिकाओं द्वारा नहीं, जैसाकि प्रचलित परम्परा का आग्रह है, अपितु सम्भवतः शाही हरम की महिलाओं द्वारा आवासीय प्रकोष्ठों के रूप में व्यवहृत हुए थे···इन आवासीय प्रकोष्ठों के बारे में कुछ लोगों का अनुमान है कि ये अकबर के समय के हैं।"

[17]"अष्टकोणात्मक स्तम्भ शाहजहाँ द्वारा बनवाया गया···अपने पिता द्वारा बनवाए गए संगमरमरी भवन के स्थान पर ही···कीन, हेवेल और अन्य लोग शैली के गुणों पर आधारित फर्ग्युसन के विचार का समर्थन करते हैं कि राजमहल जहाँगीर द्वारा बनवाया गया था···महिलाएँ वहाँ बैठकर नीचे पूर्व प्रांगण (पच्चीसी प्रांगण) में खेल देखा करती थीं।"

[18]"इस (मीना मस्जिद) की जानकारी, इसका पूर्व-इतिहास अज्ञात है। यह परम्परागत धारणा कि इसका निर्माण औरंगज़ेब द्वारा अपने कारावासी पिता शाहजहाँ के लिए किया गया था···यद्यपि किसी अभिलेख द्वारा समर्थित नहीं है, तथापि अविश्वास्य नहीं है।"

[19]"यह प्रश्न विवादास्पद है कि नगीना मस्जिद का निर्माण किसने किया था। यद्यपि मार्ग-दर्शिकाओं के अधिकांश लेखकों ने विचार प्रकट किया है कि इसका निर्माण औरंगज़ेब द्वारा हुआ था, फिर भी अधिक सम्भाव्य यह है कि इसे शाहजहाँ ने बनवाया था···।"

---

१५. वही, पृष्ठ १७।
१६. वही, पृष्ठ १८-१९।
१७. वही, पृष्ठ २०-२१।
१८. वही, पृष्ठ २३।
१९. वही, पृष्ठ २७-२८।

[20]"जहाँ यह (मीना बाज़ार) लगा करता था वह भवन समाप्त हो गया प्रतीत होता है जब तक कि इसे 'मच्छी भवन' के रूप में ही न मान लिया जाए। मच्छी भवन शाहजहाँकालीन कला का एक अच्छा नमूना है, यद्यपि इसका निर्माण-श्रेय कुछ लोगों द्वारा अकबर को भी दिया जाता है···मन्दिर राजा रतन सम्भवतः राजा रतन का निवास-स्थान था जो महाराजा पृथी इन्द्र का फौज़दार था······इस प्रश्न ने कि दीवाने-आम का निर्माण किसने किया था, भारी विवाद खड़ा कर दिया है। कुछ लोग इसका निर्माण-श्रेय अकबर या जहाँगीर को तथा अन्य लोग औरंगज़ेब को देते हैं। यह भी तर्क-वितर्क किया जाता है कि अकबर के दीवाने-आम को शाहजहाँ ने अपनी इच्छानुसार थोड़ा-बहुत परिवर्तित, परिवर्धित कर लिया था।"

[21]"दर्शनी दरवाज़ा और पूर्व-प्रांगण सम्भवत अकबर द्वारा सन् १५६५ से १५७३ के वर्षों में बने थे।"

इस बात का उल्लेख करने में क्या सार्थकता है जबकि माना जाता है कि उसी अवधि में सम्पूर्ण किला अकबर द्वारा बनवाया गया था। यह बारम्बार दोहराया जा रहा दावा स्वयं इस बात का द्योतक है कि आगरा-स्थित लालकिले के निर्माण-सम्बन्धी मुस्लिम दावे में कितना दम है, वह कितना—पूरा—जाली है।

[22]"(दिल्ली) दरवाज़े के दोनों ओर दो मंच हैं जिन पर किसी समय लाल बालुकाश्म के दो महान्, विशालाकार हाथी अपने आरोहियों सहित बने हुए थे जिनके बारे में कुछ लोग विश्वास करते हैं कि उनको अकबर ने सन् १५६८ ई० में अपनी चित्तौड़-विजय के उपलक्ष में और अपने द्वारा पराभूत राजपूत विरोधियों की स्मृति को स्थायी बनाने के लिए स्थापित करवाया था। उनके नाम जयमल और पत्ता थे ·····अबुलफज़ल ने (हाथी पोल) दिल्ली दरवाज़े की बात तो की है किन्तु जयमल और पत्ता का कोई उल्लेख नहीं किया है। उसकी चुप्पी महत्त्वपूर्ण है और उस कारण कोई भी व्यक्ति निष्कर्ष निकाल सकता है कि बादशाह कदाचित् राजमहलों के सामने शुभ

२०. वही, पृष्ठ २८-३४।
२१. वही, पृष्ठ ३६।
२२. वही, पृष्ठ ३९-४०।

लक्षण वाले हाथियों की स्थापना करने की राजपूति पद्धति का अनुसरण कर रहा था।……द्वार के नीचे एक फ़ारसी-शिलालेख है जिसमें हिजरी सन् १००८ (सन् १५९९-१६०० ई०) लिखा है जिसके कारण कुछ विद्वानों ने कल्पना कर ली है कि दिल्ली दरवाज़े को अकबर द्वारा फतहपुर-सीकरी का परित्याग करने के बाद बनवाया गया था। उसी के नीचे जहाँगीर की सन् १०१४ हिजरी (सन् १६०५ ई०) में गद्दी पर बैठने की स्मृति दिलाने वाला एक अन्य शिलालेख है।"

[२३]"अमरसिंह दरवाज़े के उत्तर में पत्थर का घोड़ा बना हुआ है, किले की ढाल से देखने पर अब जिसका सिर और गर्दन ही दिखाई देते हैं। इसका इतिहास अज्ञात है।" अश्व-प्रतिमा की उपस्थिति किले के हिन्दू-मूलक होने का स्पष्ट प्रमाण है।

श्री एम० ए० हुसैन की पुस्तक में बड़ी मात्रा में समाविष्ट अनुमानों, अटकलबाजियों की स्थिति देख लेने के बाद हम अब पाठक का ध्यान आगरा के बारे में लिखी गई श्री ई० बी० हैवेल की पुस्तक की ओर आकर्षित करना चाहते हैं। वे कहते हैं :

[२४]"इस (नगीना मस्जिद) का अगला छोर एक छोटे कमरे में खुलता है, मार्गदर्शक-लोग जिसे उस कारागार की संज्ञा देते हैं जहाँ शाहजहाँ को बन्दी रखा गया था। दर्शक अपनी इच्छानुसार इसे स्वीकार या अस्वीकार कर सकता है। जब विशिष्ट आधिकारिता का अभाव हो, तब इस बातूनी जन-समूह की कहानियों में से वास्तविक परम्परा और विशुद्ध कल्पनाओं को अलग-अलग कर पाना अति कठिन कार्य है।"

हैवेल ने देखने वालों को सरकारी मार्ग-दर्शकों की बाल-सुलभ भोली-भाली बातों में अत्यधिक विश्वास रखने के प्रति सावधान करके सही कार्य किया है किन्तु इस मामले में जो बात मार्ग-दर्शक कहते हैं, वही सही है। शाहजहाँ को अष्टकोणात्मक स्तम्भ में नहीं रखा जा सकता था क्योंकि वह किले का एक सर्वश्रेष्ठ प्रकोष्ठ होने के कारण औरंगज़ेब ने स्वयं के उपयोग

२३. श्री एम० ए० हुसैन कृत 'आगरे का किला', पृष्ठ ४१।

२४. श्री ई० बी० हैवेल कृत 'ए हैंड बुक टु आगरा…', पृष्ठ ५४।

के लिए रख लिया और अपने पदच्युत बंदी-पिता को देकर उसे 'व्यर्थ' नहीं किया था।

[२५]"काले संगमरमर का सिंहासन······सम्भवत: अकबर द्वारा अपने पुत्र के राजगद्दी पर बैठने के अधिकार को मान्यता देने के उपलक्ष में बनाया गया था···(अष्टकोणात्मक स्तम्भ में) पच्चीकारी की शैली फर्ग्युसन की इस अटकलबाजी की पुष्टि करती है कि यह जहाँगीर द्वारा बनवाया गया था। उस स्थिति में यह भाग उसकी बेगम का ही रहा होगा।"

[२६]"परम्परा इस (सलीमगढ़) राजमहल का सम्बन्ध उस (जहाँगीर) के साथ जोड़ती है। तथापि फर्ग्युसन ने कहा है कि उसके काल में शेरशाह अथवा उसके पुत्र सलीम द्वारा निर्मित एक राजमहल का अद्वितीय, अत्युत्तम भाग वहाँ विद्यमान था। दिल्ली स्थित सलीमगढ़ का नाम शेरशाह के पुत्र सलीमशाह सूर के नाम पर रखा गया है जिसने इसे बनवाया था; और इस बारे में कुछ सन्देह है कि दोनों सलीमों में से किस सलीम ने आगरा-स्थित सलीमगढ़ का नाम रखा था, किसने इसे बनवाया था · सलीमशाह सूर द्वारा निर्मित (बादलगढ़ कहलाने वाले) एक पुराने किले के स्थान पर अकबर का किला बनाया गया जाना जाता है, किन्तु यह पूरी तरह सम्भव है कि राजमहल का एक भाग छोड़ दिया गया हो और इसके संस्थापक के नाम में ही रहने दिया गया हो···।"

एक मार्गदर्शक-पुस्तिका ने आगरे के लालकिले के मूल के बारे में व्याप्त, प्रचलित संभ्रम का पूरा सार यह पर्यवेक्षण करके प्रस्तुत किया है कि[२७] : "तथ्य की बात तो यह है कि किला आज जिस रूप में विद्यमान है वह अनुवर्ती बादशाहों के संयुक्त प्रयासों का प्रतिफल है। अकबर द्वारा रूप-रेखांकित और निर्मित इस किले में जहाँगीर और शाहजहाँ द्वारा परिवर्धन किए गए थे।" कौन-सा भाग किस व्यक्ति द्वारा बनाया गया था—इसका स्पष्ट उल्लेख न कर पाने की समस्या से छुटकारा पाने के लिए लेखक का यह कूटनीतिक ढंग है। किन्तु चूँकि उसकी मूल धारणा ही गलत है, अतः

२५. वही, पृष्ठ ५६-५७।

२६. वहीं, पृष्ठ ६८।

२७. श्री ए० सी० जैन कृत 'ताजनगरी की यात्रा', पृष्ठ २०।

उसका अस्पष्ट सामान्यीकरण भी लक्ष्य से भटक गया है। यह किला किसी भी मुस्लिम-शासक द्वारा नहीं बनाया गया था, चाहे वह मुगल हो अथवा मुगल-पूर्व। दर्शकों को आज २०वीं शताब्दी में दिखाई देने वाला यह किला हिन्दू शासकों द्वारा उस युग में बनाया गया था जब न तो ईसाईयत की और न ही इस्लाम की कल्पना भी की गई थी।

आइए, हम अब एक और पुस्तक की समीक्षा करें। उस पुस्तक में भी अनुमानों का सहारा लिए बिना आगे चलना कठिन हो गया। उसमें अनुमानादि करने से पूर्व यह स्वीकार कर लिया गया है कि :

[२८]"यह महत्त्वपूर्ण है कि (सन् १२०६ से १४५० तक दिल्ली के पठान शासक) इन बादशाहों के अनेकों इतिहासकारों में से एक ने भी इस किले के निर्माण का उल्लेख नहीं किया है। अतः यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि विचाराधीन किले की प्राचीनता सिद्ध करने की इच्छा रखते हुए अबुलफज़ल इसके मूलोद्गम के सम्बन्ध में असावधानी-वश भूल कर बैठा।"

कीन ने यह विश्वास करने में गलती की है कि किले की प्राचीनता की ओर संकेत करने में अबुलफ़ज़ल ने गलती की है। प्रश्न केवल अबुलफ़ज़ल की मायावी उग्रवादी टिप्पणी को ठीक से समझने का है। जब अबुलफ़ज़ल आगरे के लालकिले को पठानी किला कहता है, तब उसका तनिक भी भाव यह कहने का नहीं है कि किले को विदेशी पठान शासकों ने बनवाया था। उसका एकमात्र आशय यह है कि यह किला विजयोपरांत मुगलों के हाथों में पड़ने से पूर्व इसके स्वामी तो पठान लोग ही थे। अतः अबुलफ़ज़ल के पक्ष में हम इतना ही कह सकते हैं कि उसने बिना किसी छल-कपट के एक झूठी धारणा प्रस्थापित करने में सफलता प्राप्त की है।

[२९]"उस (सिकन्दर लोधी) को भी आगरा में एक किला बनवाने का श्रेय दिया जाता है जिसका सम्भवतः अर्थ यह है कि सन् १५०५ में आए उल्लेखनीय भयंकर भूकम्प ने, जिसने आगरा में बने अधिकांश भवनों को ध्वस्त कर दिया था, बादलगढ़ को इतनी अधिक क्षति पहुँचाई थी कि उसने इसे सम्भवतः दोबारा बनवाया था, अनुमानतः श्रेष्ठतर मोर्चाबन्दी और हो

२८. कीन्स की हैंड बुक, पदटीप, पृष्ठ ५।

२९. वही, पृष्ठ ६।

सकता है भीतरी राजमहलों सहित ही। अकबर के समय तक बादलगढ़ ही एकमात्र किला है जिसका उल्लेख इतिहासकारों द्वारा किया गया है; और यदि सिकन्दर लोधी ने कोई किला बनवाया होता तो निश्चय ही उसके कुछ चिह्न तो प्रमाणस्वरूप मिलते ही।"

हम भूकम्प का विवेचन पहले ही कर चुके हैं। मध्यकालीन मुस्लिम तिथिवृत्तकारों की शिक्षा, विवेकशीलता और उनकी यथातथ्यता का स्तर अत्यन्त निम्न श्रेणी का था। अशिक्षित अथवा अर्ध-शिक्षित व्यक्तियों की भाँति वे लोग भूकम्पों, बाढ़ों और ग्रहणों जैसी प्राकृतिक लीलाओं को अत्यधिक बढ़ा-चढ़ाकर वर्णन करने के अभ्यस्त थे और उनके द्वारा हुए 'सर्वनाश' की काना-फूसी करते रहते थे। इसी मानव विफलता के कारण उन्होंने भूकम्प का उल्लेख 'सर्वनाशक' के रूप में किया है। तथ्य तो यह है कि लालकिले का ईसा-पूर्व हिन्दू गरिमा के साथ ज्यों-का-त्यों बने रहना इस बात का स्पष्ट प्रमाण है कि कम-से-कम किले को तो कोई क्षति नहीं पहुँची थी। यदि इसकी एक या दो दीवारों को थोड़ा-बहुत कुछ हो भी गया था तो इसको प्रलय या सर्वनाश की संज्ञा नहीं दी जा सकती।

[३०]"यह अनुमान है कि उस (सलीमशाह सूर ने) बादलगढ़ के अन्दर एक राजमहल बनाया था, इस तथ्य से लगाया जा सकता है कि उस किले के भीतर का एक स्थान सलीमगढ़ कहलाता है तथापि इस काल के अन्य कोई भवन अब विद्यमान नहीं हैं।"

केवल इसलिए कि कुछ अस्पष्ट उग्रवादी दावे सलीमशाह सूर की ओर से किए गए हैं कि उसने आगरा में लालकिला बनवाया था, यह मान लेना कि उसने इसी सीमा में एक राजमहल तो बनवाया ही होगा, इतिहासकारों की एक करुणाजनक त्रुटि है। जब किसी भवन के साथ किसी व्यक्ति का नाम जुड़ा हो, तब यह कल्पना करना अधिक सुरक्षित है कि उसने इसका निर्माण कभी नहीं किया होगा। आगरा के लालकिले जैसे मामलों में तो विशेषकर, जहाँ सभी मुस्लिम दावे मात्र किंवदन्तियाँ हैं और पग-पग पर उनका स्पष्टीकरण अत्यन्त विदग्धतापूर्वक ऊल-जलूल कल्पनाएँ करने के

३०. वही, पृष्ठ ७।

बाद किया जाता है। इतिहासकारों को चाहिए था कि किले को मूलोद्गम के रूप में इस्लामी मान लेने की अपेक्षा इस विषय पर प्रारम्भ से ही विचार करते। उपर्युक्त अवतरण में हम देखते हैं कि सलीम शाह सूर द्वारा निर्मित किसी भी किले या राजमहल की विद्यमानता सिद्ध करने में असम्भाव्य स्थिति होने पर, इतिहासकारों ने मनमौजी रूप में कल्पना कर ली है कि उसने जो भी कुछ बनाया था, वह सब विनष्ट हो गया और अब उसका कोई भी चिह्न अवशिष्ट नहीं है।

[३१]"पूर्वी प्रांगण के स्मृति-चिह्नों में, जो संभवतः अकबरकालीन हैं, एक बाओली (कमरे-युक्त कूप) है।"

[३२]"दीवाने-आम को अनुमान किया जा सकता है कि यह अपने लगभग वर्तमान रूप में अकबर के समय से ही चला आ रहा है। सम्पूर्ण सिंहासन-कक्ष ही संभवतः शाहजहाँ द्वारा जोड़ा गया था।"

कीन का यह विश्वास करना ठीक है कि दर्शक को दीवाने-आम आज जैसा दिखाई देता है, वैसा ही अकबर के समय में भी विद्यमान था। हमारी भी सम्पूर्ण लालकिले के बारे में यही धारणा है, यही दावा है, न केवल दीवाने-आम के सम्बन्ध में। किन्तु इसी कारण यदि कीन सोचता है कि अकबर ने दीवाने-आम का निर्माण कराया था, तो उसे भ्रम है, वह गलती पर है। स्वयं अकबर ने भी दीवाने-आम को वैसा ही देखा था, जैसा हम आज उसे देखते हैं। दीवाने-आम सहित सम्पूर्ण किला उसे विजय के फलस्वरूप ही उपलब्ध हो गया था।

[३३]"चमेली-स्तम्भ शाहजहाँ द्वारा बनाई गई कही जाती है, किन्तु इसकी पुष्टि शिलालेख द्वारा नहीं होती······। चमेली-स्तम्भ का निर्माता जहाँगीर होने की सम्भावना को पर्याप्त बलवती माना जाना चाहिए···परम्परा है कि चमेली-स्तम्भ की सुन्दर अलंकृति बहुमूल्य पत्थरों में नूरजहाँ द्वारा दिए गए नमूनों के आधार पर की गई थी।"

चमेली-स्तम्भ शाहजहाँ द्वारा निर्मित होने के दावे को किसी अन्य

३१. वही, पृष्ठ १०६।
३२. वही, पृष्ठ ११२।
३३. वही, पृष्ठ १२७।

शिलालेख (अथवा अन्य साक्ष्य) द्वारा समर्थित न होने के आधार पर अस्वीकार करके कीन ने ठीक ही किया है। अतः उसने यह सम्भावना प्रस्तुत करके गलती की है कि शाहजहाँ के पिता जहाँगीर ने उस स्तम्भ का निर्माण किया होगा। स्वयं जहाँगीर का दावा भी अस्वीकार्य है। और यह सुझाना तो मात्र श्रृंगारिक बेहूदगी है कि सुन्दर, रूपवती नूरजहाँ ने ही सुन्दर-अलंकृत नमूना दिया होगा, क्योंकि यह उपन्यासकार को तो चाहे कितना ही अच्छा क्यों न लगे, किसी इतिहासकार को तो शोभा देता नहीं। क्या कोई सुन्दर हाथ और लुभावना मुखड़ा होने से रेखा-चित्रण में और वह भी उसमें निपुण, हो सकता है? हम सबको ज्ञात ही है कि नूरजहाँ एक अनपढ़ी महिला ही थी जो असामाजिक, बुर्के के सम्प्रेषणहीन एकान्तवास और सर्वव्यापी इस्लामी पर्दे के जूते चाटने में व्यस्त थी।

[३४]"वह विचाराधीन लघु रूप सम्भवतः एक मोहम्मदी फकीर की कब्र है, जैसा कि इसकी देखभाल करने वाले मोहम्मदी चपरासी ने कुछ समय तक दर्शकों को बताया था, यद्यपि वही व्यक्ति इसको पहले 'काबा' का प्रतिदर्श, नमूना, प्रतीक बताता था। वही व्यक्ति अब इसे वह स्थल कहता है जो किले के निर्माण-पूर्व किसी शहीद (बलिदानी) का 'स्थान' था। यह प्रकटीकरण स्पष्टतः उर्वर कल्पना की ऊँची उड़ानें ही हैं। वह लघु रूप किसी मोहम्मदी (मुस्लिम) फकीर से सम्बन्धित नहीं है—इस तथ्य का प्रदर्शन तो इसी बात से हो जाता है कि दीप-आला दक्षिणाभिमुख होने की बजाय पश्चिमाभिमुख है; क्योंकि मोहम्मदी (मुस्लिम) लोग तो अपने मृतक को सुनिश्चित रूप में इस प्रकार दफनाते हैं कि उनका सिर उत्तर की ओर, पैर दक्षिण की ओर तथा दीप-स्तम्भ इस प्रकार रखे जाते हैं कि वे शीर्ष-भागों को प्रकाशित करें।"

उपर्युक्त अवतरण में पर्याप्त सदुपदेश इतिहास के विद्यार्थियों और ऐतिहासिक स्थलों की यात्रा करने वाले दर्शकों के लिए सन्निहित हैं। सर्वप्रथम तो इसने उन ढकोसलों, धोखों का पर्दाफाश किया है जिनसे मध्य-कालीन मुस्लिम इतिहास भरा पड़ा है, जिसे आज मध्यकालीन मुस्लिम

३४. वही, पृष्ठ १३३।

इतिहास समझा जाता है। मध्यकालीन मुस्लिम इतिहास का अधिकांश भाग चपरासियों, फकीरों, मकबरों का परिपालन करने वाले ऐरे-गैरे नत्थू-खैरों और अन्य नगण्य बातें फैलाने वाले लोगों द्वारा प्रचारित धोखों और गप्पों पर आधारित है। ये झूठी बातें स्थिर, दृढ़ रूप में प्रचारित की जाती रही हैं। इस प्रकार की झूठी बातों को लेखकों के आंग्ल-इस्लामी वर्ग द्वारा धार्मिक आज्ञा के रूप में पुस्तकों में अंकित कर दिया जाता है। ज्यों-ज्यों समय बीतता गया और सरकारी संरक्षण मिलता गया, ये झूठी बातें ही विद्वत्तापूर्ण अमिट बातें मानी जाने लगीं, यद्यपि यह सब निपट, निराधार, कूड़ा-करकट ही है। उपर्युक्त अवतरण में इस प्रपंच का भण्डाफोड़ करने के लिए हम कीन को बधाई देते हैं। भारत में बने प्रत्येक मकबरे और मस्जिद को काबा, मक्का या दमिश्क के किसी-न-किसी नमूने पर बना हुआ कहा जाता है। इस प्रकार की काना-फूसी, किंवदन्ती पर कभी विश्वास नहीं किया जाना चाहिए। पहले ही अनेक पीढ़ियों को ठगा जा चुका है, जिससे शैक्षिक प्रलय हो चुकी है। हम पहले ही विवेचन कर चुके हैं कि आगरे के लालकिले के भीतर यदि कोई मुस्लिम कब्रें, मकबरे हैं तो वे उन विदेशी आक्रमणकारियों के हैं जो प्राचीन हिन्दू किले के प्रतिरक्षकों द्वारा मौत के घाट उतार दिए गए थे। इस बात पर बल देना कि ये किला बन जाने के बाद अज्ञात मुस्लिमों की अथवा किले द्वारा परिवेष्टित भूमि में पहले ही विद्यमान थीं, मात्र भ्रांति विवेचना है। यदि शोकसूचक ईंटों के उस अम्बार को खोदा जाय, तो इसमें हिन्दू तुलसीघरा, शिवलिंग या निक्षिप्त कोश मिल सकने की सम्भावना है। ऐसी जाली, झूठी कब्रें, मजारें बनाने का प्रयोजन जनता को उन स्थलों की खुदाई करने से दूर रखने का यत्न करना था। कीन ने यह भण्डाभोड़ करके भी इतिहास की महान् सेवा की है कि उसी एक चपरासी ने भिन्न-भिन्न समय पर किस प्रकार भिन्न-भिन्न बातें प्रचारित की हैं। यदि एक मुस्लिम चपरासी एक स्मारक के सम्बन्ध में दो अफवाहें फैला सकता था, तो हम भलीभाँति अनुमान कर सकते हैं कि कई पीढ़ियों में कितने असंख्य व्यक्तियों ने कितनी असंख्य असत्य बातें इसी प्रकार प्रचारित की होंगी। उस सब निकृष्ट, कूड़ा-करकट को अब शाश्वत इतिहास माना जाता है। बड़े-बड़े क्षेत्रों को कब्रों, मजारों, मकबरों जैसी

संरचनाओं के रूप में अस्त-व्यस्त करना, गड़बड़ करना सम्पूर्ण मध्यकालीन इतिहास में मुस्लिम छल-प्रपंच की सामान्य नित्य-विधि रही है। इन स्थानों को इस्लाम के लिए चिरस्थायी रूप में 'सुरक्षित' रखने का यह उपाय विदेशी तुर्कों, अरबों, अफगानों, ईरानियों और मुगलों द्वारा अत्यन्त सरल रूप में व्यवहार में लाया गया था।

कौन से बातचीत करते समय उस मुस्लिम व्यक्ति द्वारा प्रयुक्त यह 'अस्थान' शब्द एक संस्कृत शब्द है। 'स्थान' के रूप में इसका अर्थ एक विशाल स्थल या जगह होगा। 'अस्थान' के रूप में इसका अर्थ एक महाकक्ष है जहाँ शाही दरबार लगता है। दोनों ही मामलों में यह स्पष्ट दर्शाता है कि इस्लामी आधिपत्य की पाँच शताब्दियाँ व्यतीत होने पर भी हिन्दू लाल-किले से संस्कृत शब्द किस प्रकार अभी तक जुड़े हुए हैं।

[३५]"शाहजहाँनी महल को गलती से अकबर के महल की संज्ञा दी जाती है। यह तो सम्भवतः जहाँगीर ही था जिसने अपने पिता अकबर के कार्य को समूल विनष्ट किया था।"

उपर्युक्त उद्धरणों में दर्शायी गई प्रत्येक भवन के मूलोद्गम सम्बन्धी अनिश्चितता के अतिरिक्त मुस्लिम इतिहास के पाठकों की अन्य दुर्बलता का भी यह एक उदाहरण है। जिस सरलता, सुगमता से इन गप्पों में कि शेरशाह या जहाँगीर या शाहजहाँ ने अपने पूर्ववर्ती द्वारा निर्मित पूरे नगरों और राजमहलों को पूरी तरह ध्वस्त किया और मात्र मन की मौज में ही उनके स्थान पर स्वयं नगर और राजमहल बनवाए, विश्वास किया जाता है, वह अत्यन्त भयावह है। क्या खिलवाड़ मात्र के लिए ही अकबर सारा हिन्दू किला गिरवा देता और जहाँगीर या शाहजहाँ अपने पिता या दादा द्वारा निर्मित ५०० भव्य भवनों को गिरवा देता? इतिहास के विद्वानों द्वारा प्रस्तुत ऐसी असम्भाव्य बातों में विश्वास करना नितान्त बाल-विश्वास ही है। यह विशदतापूर्वक सांसारिक बुद्धिमत्ता का अभाव दिग्दर्शित करती है।

निस्सार बातों, बहानों के आधार पर ही मुस्लिम इतिहास में पूर्व-

३५. वही, पृष्ठ १३६-१३७।

कल्पित निष्कर्ष निकालने का एक ज्वलन्त उदाहरण कीन की इस टिप्पणी में है कि अमरसिंह दरवाज़ा अकबर द्वारा अवश्य ही निर्मित हुआ होगा क्योंकि यहाँ पर 'अल्ला हो अकबर आला' शिलालेख लगा हुआ है। वह लिखता है :[३६] "यह शानदार दरवाज़ा चमकदार पत्थरों से अलंकृत है, जिनमें से मेहराब की दोनों ओर लगे हुए दो पत्थरों पर 'अल्ला हो अकबर आला'—ईश्वर महान् और सर्वव्यापक—शिलालेख लगा है। सर्वशक्तिमान् ईश्वर के साथ अपना नाम जोड़ना अकबर की प्रिय दुर्बलता थी और निःसन्देह रूप में उसी के द्वारा बनाए गए किले के एक दरवाज़े पर इस शिलालेख-युग्म की विद्यमानता उसके व्यक्तित्व के साथ इतनी पुष्टिकर रूप में समरूप हो गई है कि इसके मूलोद्गम के सम्बन्ध में सभी प्रकार के सन्देह दूर हो जाते हैं।"

यदि ऐसे निस्सार आधारों पर भवनों का स्वामित्व और उनकी निर्मिति का श्रेय विधि-न्यायालय स्वीकार करना प्रारम्भ कर दें, तो प्रत्येक व्यक्ति एक पत्थर का छोटा टुकड़ा या कील या खड़िया-मिट्टी या कोयला लेकर सुन्दरतम भवनों पर लिखना शुरू कर देगा। क्या इस प्रकार की अनधिकृत लिखावट का परिणाम विद्रूपण और अनधिकार प्रवेश चेष्टा के लिए दण्ड होना चाहिए अथवा अनुप्रविष्ट, घुसपैठिए को भवन दे देने का पुरस्कार मिलना चाहिए? एक विदेशी विध्वंसक और आक्रमणकारी को भवन को क्षति पहुँचाने के लिए दोषारोपण करने के स्थान पर भवन का स्वामित्व और निर्माण-श्रेय दे देना विचित्र उपहासास्पद न्याय है।

दूसरी ओर निरर्थक शिलालेख इस बात का स्पष्ट प्रमाण है कि अकबर का किले पर आधिपत्य मात्र विजयश्री का परिणाम था। भवन का निर्माता-स्वामी किसी निरर्थक, असंगत शिलालेख को लगवाने की अपेक्षा संरचना का विवरण, स्वामित्व, भवन का प्रयोजन तथा तिथि को अंकित करवाएगा। अकबर द्वारा ऐसा कोई विवरण प्रस्तुत न करना ही इस बात का तथ्यात्मक प्रमाण है कि उसने अनधिकार-प्रवेष्टा की लापरवाही के समान ही किसी अन्य की सम्पत्ति को विद्रूप किया था। वास्तविक स्वामी तो अपने भवन

३६. वही, पृष्ठ १४७।

को किसी भी लिखावट से तथा पर्चे चिपकाने से मुक्त रखता है अथवा मात्र संगत शिलालेखों से ही उसकी शोभा बढ़ाता है। किसी भी भवन पर निरर्थक लिखावट इस बात का प्रमाण है कि लिखने वाला भवन का स्वामी न होकर विदेशी, बाहरी अपहारक है।

आगरा का पुरातत्वीय समाज भी, अन्य लोगों के समान ही, किले के मूलोद्‌गम के बारे में दुविधा में है। इसका मत है[३७] : "तोपखाने की बैरकों के सामने और दीवाने-आम के विशाल प्रांगण के ऊपर एक अकेला और स्पष्टतः निष्प्रयोजन वर्गाकार भवन है। यह (सलीमगढ़) लगभग ३५ फीट का तथा लगभग २८ फीट ऊँचा है, पूर्णतः लाल बालुकाश्म का बना है और जहाँगीरी महल के समान ही हिन्दूकृत शैली में अलंकृत है। इसके नाम के अतिरिक्त, परम्परा इस संरचना के बारे में कोई सूत्र प्रदान नहीं करती। इसके निर्माताओं में से तीन सलीम रहे होंगे, किन्तु वह वास्तविक सलीम कौन था, उसका परिचय अपर्याप्त ही है।"

तथाकथित सलीमगढ़ और जहाँगीरी महल दोनों का ही हिन्दूकृत भवन होना उनके हिन्दू मूलोद्‌गम का स्पष्ट प्रमाण होना चाहिए था। इसके स्थान पर सलीम और जहाँगीर के मात्र नामों ने ही इतिहासकारों को उन भवनों का निर्माण-श्रेय उन नाम वाले व्यक्तियों को देने का भ्रामक कार्य किया है। यह एक गम्भीर शैक्षिक व्याधि है जो भारतीय इतिहास के लेखकों और छात्रों में संक्रामक रूप धारण कर चुकी है। इसका शल्योपचार आवश्यक है। इतिहास के विद्यार्थियों को सावधान कर दिया जाना आवश्यक है कि वे सड़कों, पुलों, और भवनों को दिए गए नामों से तुरन्त निष्कर्ष निकालने का यत्न न करें।

[३८]"कुछ लोगों का विचार है कि बादलगढ़ या तो आधुनिक किले के स्थान पर ही अथवा उसके आस-पास ही रहा था। स्पष्टतः बादलगढ़ मूल रूप में हिन्दुओं द्वारा ही स्थापित किया गया होगा, किन्तु बाद में लोधी सत्ताधिकारियों द्वारा अपहृत, परिवर्धित और मजबूत किया गया था।"

---

३७. आगरा के पुरातत्वीय समाज का जुलाई से दिसम्बर, १८७५ ई० का विवरण, पृष्ठ १४।

३८. कनिंघम-प्रतिवेदन, खंड IV, पृष्ठ ९८।

उपर्युक्त अवतरण में भी इसके पूर्ववर्तियों के समान ही ऊल-जलूल कल्पनाएँ की गई हैं। लोधियों ने हिन्दू बादलगढ़ को अपना बना लिया था, हथिया लिया था, यह तो पूर्णतः ठीक है, जैसा कि इसी पुस्तक में पहले विवेचन किया जा चुका है, किन्तु यह जोड़ना कि आक्रमणकारियों ने किले में परिवर्धन किया और उसको सुदृढ़ता प्रदान की, उन अयुक्तियुक्त धारणाओं में से एक है जिसने भारतीय इतिहास के अध्ययन को भयंकर रूप में ग्रस्त कर रखा है। आंग्ल-मुस्लिम वर्ग को यह अनुमान कहाँ से हुआ कि हिन्दू किला एक छोटा-सा जर्जर निर्माण था जिसको विस्तृत और सुदृढ़ करने की आवश्यकता थी। यदि इसकी एक हिन्दू परिधीय प्राचीर थी तो इसमें उतना क्षेत्रफल अवश्य परिवेष्टित रहा होगा जिसमें इसकी रक्षक-सेना और राजकुलीन व्यक्तियों के आवास की व्यवस्था तो हो सके। परिणामतः इसमें अन्य भवनों को और बढ़ाने की, उनकी वृद्धि करने की कोई गुंजाइश ही प्रतीत नहीं होती। इतना ही नहीं, हिन्दू लोग तो निपुण-निर्माता और योद्धा-गण थे जिनकी परम्परा महाभारत और रामायण काल तक है। इसकी तुलना में अरेबिया, ईरान, इराक, तुर्की, अफगानिस्तान, कज़ाकस्तान और उज़बेकस्तान के मुस्लिम आक्रमणकारी लोग अशिक्षित बर्बर व्यक्ति थे जिनको निर्माण-कला की कोई जानकारी नहीं थी। इतना ही नहीं, किसी अतिक्रमण और आक्रमण की मूल प्रेरणा ही पीड़ित व्यक्ति के भवनों को हड़प करना है। यदि किसी आक्रमणकारी को भी भवनों का निर्माण करने की तकलीफ ही उठानी पड़ती है, तो फिर वैध स्वामी और आक्रमणकारी में अन्तर क्या है?

[३९]"सिकन्दर लोधी सन् १५१५ में आगरा में ही मर गया। अतः यह कल्पना की जा सकती है कि वह आगरा में दफनाया गया था, किन्तु मुझे उसकी कब्र खोज लेने में सफलता नहीं हुई। उसने बादलगढ़ को मज़बूत किया और बादलगढ़ के किले में बढ़ोत्तरी की थी, ऐसा कहा जाता है।"

यह धारणा, कि सिकन्दर लोधी ने आगरा-स्थित हिन्दू किले को मज़बूत किया था और उसमें कुछ बढ़ोतरी की थी, अयुक्तियुक्त और निराधार है।

३९. वही, पृष्ठ ९८।

उस सिकन्दर लोधी का सम्मान या क्षमता स्वयं ही विचार कर लें, जिसकी स्वयं कब्र ही अज्ञात है।

[४०]"लोधी वंश का आगरा सम्भवत: सिकन्दरा में था या सिकन्दरा और लोधी खाँ का टीला के बीच में था (यदि बाद का स्थान सचमुच ही लोधियों के शाही परिवार के अधिवास का स्थान था)।"

यह इस बात का एक अन्य उदाहरण है कि किस प्रकार भारत में मुस्लिम शासन के आंग्ल-मुस्लिम वर्णन-ग्रन्थ ऊल-जलूल कल्पनाओं पर आधारित हैं। यह सुझाव देना या अनुमान करना गलत है कि लोधी खाँ का टीला या सिकन्दरा की स्थापना लोधियों द्वारा की गई थी। वे तो पूर्वकालिक हिन्दू-स्थल थे जिन पर लोधियों ने आधिपत्य कर लिया था। यदि लोधी लोग हिन्दुस्तान-प्रदेश को अपनी जगह कह सके तो क्या वे हिन्दुलान में बने सभी भवनों को अपनी सृष्टि नहीं कह सकते थे। लोधियों के सम्बन्ध में जो बात सत्य है, वही बात भारत के सभी मुस्लिम आक्रमणकारियों के बारे में भी सत्य है। उन्होंने सम्पूर्ण भारतीय महाद्वीप पर अपनी सम्पत्ति के रूप में ही अपना दावा किया और उसीके परिणामस्वरूप यहाँ के सभी राजमहलों, प्रासादों, पुलों, नहरों और झीलों को बनवाने का भी दावा किया। इस साधारण सत्य की अनुभूति न होने से ही घोर शैक्षिक सत्यानाश हुआ है। इतिहास के विद्यार्थियों और ऐतिहासिक स्थलों के दर्शकों की पीढ़ियों को उन भवनों के काल्पनिक मुस्लिम निर्माण के बारे में गलत आँकड़ों की घूंट पिलाई जाती रही है, जो तथ्यत: पूर्वकालिक हिन्दू भवन हैं। यह स्मरण रखना चाहिए कि भारत में सभी भवन पूर्णत: हिन्दू-मूल, निर्माण और स्वामित्व के हैं, चाहे वे आज इस या उस सुलतान या बादशाह द्वारा निर्मित मस्जिदों और मकबरों या किलों तथा भवनों के परिवर्तित रूप में खड़े हों। हम उस उपलब्धि को, जहाँ तक भारत में ऐतिहासिक भवनों का सम्बन्ध है, दूसरे शब्दों में यों कह सकते हैं कि निर्माण-कार्य हिन्दुओं का है, विनाश-कार्य मुस्लिमों का।

४०. वही, पृष्ठ ११२।

अध्याय १३

गज-प्रतिमा सम्बन्धी भयंकर भूल

जैसा हम पहले ही दिग्दर्शित कर चुके हैं, आगरे के लालकिले के दिल्ली दरवाज़े के दोनों पार्श्वों में दो हाथियों की प्रस्तर-प्रतिमाएँ थीं। उन प्रतिमाओं के कारण वह दरवाज़ा 'हाथी पोल' के नाम से पुकारा जाता था क्योंकि (संस्कृत भाषा के 'हस्ति') हाथी का अर्थ गज होता है। 'पोल' शब्द संस्कृत के रक्षक शब्द 'पाल' का अपभ्रंश है। अतः यह दरवाज़ा, जिसके पास हाथी रक्षक के रूप में खड़े हैं, हाथी-पोल अर्थात् हस्ति-पाल, जिसका अपभ्रंश रूप 'हाथी पोल' है, कहलाता है।

हम इस बात का स्पष्टीकरण भी पहले ही कर चुके हैं कि मुस्लिम व्यक्ति मूर्ति-भंजक होने के कारण, कभी देव-मूर्तियों, प्रतिमाओं, छायाओं, अथवा आकृतियों का निर्माण नहीं करते। इसी प्रकार, वे रहस्यवादी अथवा पवित्र नमूनों का रेखा-चित्रण भी, कठोर प्रतिबन्धनात्मक नियमों के कारण नहीं करते। इसलिए, जिस भी किसी भवन में ऐसी आकृतियाँ या नमूने हैं या उन भवनों पर हैं, तो वे सभी भवन हिन्दू भवन हैं। यह एक सामान्य दृश्यमान परीक्षण इस तथ्य को सिद्ध करने के लिए पर्याप्त है कि जिन बहुत सारे भवनों को मुस्लिम मकबरे या मस्जिदें होने का दावा किया जाता है, वे तथ्यतः विजित, हथियाए गए हिन्दू मन्दिर और भवन हैं। दिल्ली के हुमायूँ के मकबरे, निमामुद्दीन और अब्दुर्रहीम खानखाना के मकबरे और अहमदाबाद की जामा-मस्जिद में विभिन्न हिन्दू नमूने उत्कीर्ण हैं।

इसी प्रकार हम इस पुस्तक में पहले ही प्रदर्शित कर चुके हैं कि राजमहलों और किले के दरवाज़ों पर हाथी बनवाने की अति सामान्य और सुदृढ़ हिन्दू प्रथा और परम्परा रही है। यही एक तथ्य है कि आगरा-स्थित लाल-

किले में ऐसे हाथियों की प्रतिमाएँ थीं और अन्य तथ्य है कि इन प्रतिमाओं को अपनी धर्मान्ध इस्लामी असहिष्णुतावश एक मुस्लिम (मुगल) बादशाह ने विनष्ट कर दिया था। किसी भी इतिहासकार को यह बात पूर्णत: स्वीकार करवाने के लिए पर्याप्त थे कि आगरे का लालकिला हिन्दू-मूलक था।

किन्तु आंग्ल-मुस्लिम वर्ग के इतिहासकारों ने इस अत्यन्त सामान्य किन्तु महत्त्वपूर्ण तथ्य को भुला देने के कारण अनजाने में ही स्वयं को त्रास-उपहास की जटिलता में फँसा लिया है।

इन गुम, अनुपलब्ध हाथियों की समस्या का समाधान करने के प्रयत्न में उन लोगों ने अयुक्तियुक्त पूर्व अनुमानों और धारणाओं, अटकलबाजियों के ऐसे जटिल फन्दों में स्वयं को बाँध लिया कि अन्त में विन्सेंट स्मिथ जैसे सभी लेखकों को अपनी पूर्ण असफलतावश पाप स्वीकार करना पड़ा कि वे उस समस्या का आदि-अन्त, सिर-पैर पता कर पाने में पूरी तरह असफल रहे थे। इस अध्याय में हम यह स्पष्ट करेंगे कि वह समस्या क्या है और क्यों व कैसे आंग्ल-मुस्लिम वर्ग के इतिहासकार इसको सुलझाने में बुरी तरह असफल हुए हैं।

सामान्य तथ्य यह था कि आगरे के लालकिले के हिन्दू निर्माताओं ने अपनी प्राचीन पुनीत परम्परा के अनुसार ही किले के दिल्ली-दरवाजे के सामने हाथियों की दो प्रतिमाएँ स्थापित की थीं। किन्तु मुस्लिम दावों से भ्रमित हो जाने के कारण पश्चिमी प्रवासियों और इतिहासकारों ने यह अयुक्तियुक्त धारणा बना ली कि हिन्दू किला तो नष्ट हो गया था और किसी मुस्लिम शासक, सम्भवत: अकबर द्वारा, वर्तमान किला यथातथ्य पुरानी परिरेखा पर ही बनवाया गया था।

उस दोषपूर्ण धारणा से प्रारम्भ करके उन्होंने एक अन्य दोषपूर्ण अनुमान यह भी लगा लिया कि उन हाथियों को वहाँ प्रस्थापित किए जाने का आदेश भी अकबर द्वारा ही दिया गया होगा।

उन हाथियों पर पूर्ण राजचिह्नों सहित दो हिन्दू राजपुत्र सुशोभित थे। कम-से-कम इस एक विवरण ने आंग्ल-मुस्लिम वर्ग के इतिहासकारों को अपनी मान्यता पर सन्देह करने और अपनी मान्यता की वैधता की पुन: परीक्षा करने के लिए सावधान कर देना चाहिए था। पहली बात यह है कि

मुस्लिम अकबर कभी भी किसी गज-प्रतिमा के निर्माण किए जाने की बात का विचार नहीं कर सकता था। दूसरी बात यह है कि यदि उसने यह कार्य किया भी होता तो वह उनके ऊपर पूर्ण राजचिह्नों सहित हिन्दू राजपुत्रों को कभी आसीन न करता।

इसी स्थल पर वे फिर, एक फ्रांसीसी प्रवासी टेबरनियर के असत्यापित लिखित कूट वाक्यों द्वारा पथ-भ्रष्ट हो गए थे। यह प्रवासी शाहजहाँ के शासनकाल में भारत में आया था। हम इस बात का स्पष्टीकरण आगे चल-कर करेंगे कि किस प्रकार उसकी लिखी बातें उग्रवादी मुस्लिम दरबारी-असत्य बातों पर आधारित थीं। यहाँ हम इतिहासकारों को अप्रशिक्षित, आकस्मिक प्रवासियों की दैनन्दिनी में लिखी हुई बातों पर अन्धानुविश्वास करने के प्रति सावधान करना चाहते हैं। बरनियर की टिप्पणियाँ इसी कोटि की हैं। श्री पी० एन० ओक कृत 'ताजमहल राजपूती राजमहल है' पुस्तक में यह भलीभाँति स्पष्ट कर दिया गया है कि किस प्रकार ताजमहल के बारे में टेबरनियर के सन्दर्भ ने इसके पूर्ववृत्तों के सम्बन्ध में समस्त संसार को दिग्भ्रमित किया है। इस अध्याय में हम स्पष्ट करेंगे कि किस प्रकार टेवर-नियर की मूर्खतापूर्ण, असत्यापित दरबारी गप-शप ने इतिहास के उद्देश्य को अगण्य क्षति पहुँचाई है। प्रायः होता यह है कि बरनियर या टेबरनियर जैसे सरकारी अतिथि दरबारी कूटनीतिकता के कारण सामान्य जनता से अलग-थलग ही रह जाते हैं। वे जो भी कुछ अपनी निजी दैनन्दिनियों में लिखते हैं, वह सब सरकारी कूड़ा-करकट ही होता है। यह मध्यकालीन युग में विशेष रूप से सत्य था जब एक ईसाई अनजाने आगन्तुक ने हिन्दुओं के बारे में अपना सर्वज्ञान संग्रह किया, वह भी उस अशिक्षित अरबों, अफगानों, तुर्कों, फारसियों और मुगलों के दुराचारी समूह से जानकारी प्राप्त करके जिसने हिन्दुस्तान में हिन्दुवाद पर बलात् अनुचित लाभ उठाने का कार्य किया था।

बरनियर ने नासमझी में लिख दिया कि उन दो हाथियों पर चढ़े हुए दोनों हिन्दू राजपुत्र जयमल और पत्ता नामक वे दो राजपूत योद्धा थे जो चित्तौड़-दुर्ग को घेरे हुए अकबर के नर-राक्षसों से जूझ रहे थे। अकबर ने चित्तौड़ का भीषण विनाश किया था—मात्र प्रतिशोध की अग्नि से विदग्ध

होकर जब उसने प्रात:काल से सायंकाल तक कत्लेआम का आदेश दिया था जिसमें ३० हज़ार व्यक्तियों की मृत्यु हुई थी। फिर उसने किले के सभी मन्दिरों को अपवित्र करने और उनको मस्जिदों का रूप देने का आदेश दिया। टेबरनियर का यह कहना नितान्त बेहूदा और मूर्खतापूर्ण है कि उस बर्बर व्यक्ति ने उस किले की सुरक्षा में संलग्न सहस्रों व्यक्तियों में से दो व्यक्तियों की शूरता की सराहना की और पूर्ण राजोचित चिह्नों से युक्त उनकी प्रतिमाएँ स्थापित कीं।

इस सम्बन्ध में हम पहले ही देख चुके हैं कि अकबर के अपने दरबारी इतिहासकार अबुलफज़ल ने इन गजारोहियों के परिचय के सम्बन्ध में सतर्कतापूर्वक चुप्पी साध ली है। वह नहीं कहता कि वे दो गजारोही, वे दो राजपूत राजकुमार जयमल और पत्ता थे जो अकबर के विरुद्ध लड़ते हुए मृत्यु को प्राप्त हुए थे।

क्या व्यक्ति अपने शत्रुओं की प्रतिमाएँ बनवाता है? अथवा अपने यशस्वी सम्बन्धियों-मित्रों का मूर्तिकरण करता है? यदि कभी करे ही, तो विजेता को पराभूत शत्रु का तिरस्कार प्रदर्शित करना होता है; उदाहरणार्थ विजेता के चरणों में घिघियाए, औंधे मुँह के बल लेटे, नाक रगड़े या किसी हाथी के पैर के नीचे रौंदा जाय। विजेता व्यक्ति अपने पराजित शत्रु को उसके शाही ध्वज और अन्य साज-सामान के साथ-साथ शाही हौदे में बैठा हुआ कभी प्रदर्शित नहीं करेगा। इस प्रकार यह बात बनाते जाना दुगुनी बेहूदगी है कि अकबर ने, जो एक मुस्लिम और विजेता व्यक्ति था, अपने पराभूत और तलवार के घाट उतारे गए शत्रुओं की प्रतिमाएँ बनाई थीं क्योंकि मुस्लिम लोग कभी प्रतिमाएँ नहीं बनाते।

अत:, इस प्रकार की बेहूदी अटकलबाज़ियों के साथ जब आंग्ल-मुस्लिम वर्ग के इतिहासकारों ने समस्या का अध्ययन प्रारम्भ किया, तब उन्होंने स्वयं को अधिकाधिक दलदल में और नीचे-ही-नीचे धँसते हुए पाया।

चूँकि वे प्रतिमाएँ अब वहाँ नहीं हैं, इसलिए उन्होंने कह दिया कि शाहजहाँ या औरंगज़ेब ने उन प्रतिमाओं को विखंडित करवा दिया होगा। तब उनके सम्मुख एक और असंगति, असम्बद्धता उपस्थित हो गई। उनको विश्वास दिलाया गया था कि दिल्ली का लालकिला शाहजहाँ द्वारा बनवाया

गया था। इसके भी एक दरवाज़े पर हाथियों की दो प्रतिमाएँ हैं। इसलिए उन्होंने एक अन्य बेहूदा निष्कर्ष निकाल लिया कि शाहजहाँ ने आगरा-स्थित लालकिले से हाथियों की विशाल-प्रतिमाओं को उनके स्थान से नीचे हटवाया, उनको आगरे से दिल्ली मँगवाया और उनको दिल्ली के लालकिले के एक दरवाज़े के सामने स्थापित करवा दिया।

यह कल्पना भी नितान्त बेहूदी है। सर्वप्रथम बात यह है कि इस बात का कोई प्रमाण नहीं है कि शाहजहाँ ने दिल्ली का लालकिला बनवाया था। दूसरी बात यह है कि यदि उसने आगरे के लालकिले से इनको हटवाया था तो वह इसलिए नहीं कि वह उनको दिल्ली में स्थापित करवाना चाहता था, अपितु इसलिए कि धर्मान्ध मुस्लिम होने के कारण अपने निवास-स्थान आगरे के किले में उनकी उपस्थिति को सहन नहीं कर सकता था, वे दोनों प्रतिमाएँ उसकी आँखों में खटकती थीं। तीसरी बात यह है कि यदि वह वास्तव में दिल्ली के किले की शोभा दो हाथियों की प्रतिमाओं से बढ़ाना चाहता था तो आगरे में लगे हुए प्रस्तर-हाथियों की प्रतिमाओं को उखड़वा-कर दिल्ली लाने की अपेक्षा दिल्ली में ही दो गज-प्रतिमाएँ बनवा लेना अधिक सस्ता पड़ता। क्या वे आगरे में उखड़ते-धरते, दिल्ली ले जाते हुए और फिर वहाँ पर स्थापित करने की उठा-धरी में टूटते-फूटते नहीं ?

इतनी सारी विशाल कल्पनाओं, अनुमानों के बाद भी एक गुत्थी सुलझाने को रह गई। दिल्ली की गज-प्रतिमाओं पर उनके सवार नहीं हैं। इसलिए यदि शाहजहाँ आगरे के हाथियों की विशालाकार मूर्तियों को दिल्ली ले आया था तो उसने क्यों और कैसे उन पर बैठी मानवाकार मूर्तियों को स्थान-च्युत कर दिया ? वैसा करने पर क्या हाथियों को कोई क्षति नहीं पहुँची थी ?

बाद में उन गजारोहियों की प्रतिमाएँ स्वयं आगरे के लालकिले के तहखानों में खोद निकाली गई थीं। उनकी जानकारी होने पर ज्ञात हुआ कि वे दिल्ली के हाथियों के आकार के समरूप नहीं हैं।

इतिहासकार विन्सेंट स्मिथ ने इस उलझन का स्पष्टीकरण करते हुए अन्त में अपराध स्वीकार कर लिया है कि वह चरमान्त पर पहुँच गया है। समस्या की जटिलता पर उसका सिर चकराने लगा था। आंग्ल-मुस्लिम

इतिहासकारों के वर्ग ने इतिहास का जो गुड़-गोबर कर दिया है, गोरख-धन्धा बना दिया है, उपर्युक्त तथ्य उसका एक विशिष्ट ज्वलन्त उदाहरण है। उन लोगों ने स्वयं को और उनकी शैक्षिक क्षमता में अन्धविश्वास रखने वाले इतिहास के समस्त विश्व को ऐसी गुत्थियों में बाँध दिया है, ऐसे जाल में उलझा दिया है कि अब प्रत्येक व्यक्ति लगभग प्रत्येक महत्त्वपूर्ण विषय पर सर्वाधिक असंगत, विसंगत, विरोधी और बेहूदी धारणाओं की तोतली बोली ही बोलता रहता है।

इस प्रत्यक्षतः विभ्रमकारी समस्या का समाधानकारी सामान्य, सीधा-सादा हल यह है कि न तो आगरे का लालकिला और न ही दिल्ली का लालकिला किसी भी मध्यकालीन मुगल द्वारा बनाया गया था। ईसा-पूर्व युगीन प्राचीन हिन्दू किले होने के कारण इन दोनों ही किलों में हाथी-द्वार थे। आगरे के किले के दरवाजे पर बने हाथियों को किले की असहिष्णु मूर्तिभंजक मुस्लिम आधिपत्यकर्त्ताओं द्वारा नीचे हटाया गया, चकनाचूर किया गया, ठोकरें मारी गईं और दफना दिया गया। दिल्ली की गज-प्रतिमाएँ भाग्य से इस प्रकार के मूर्ति-विनाश का शिकार न हो पाईं अथवा सम्भव है कि जब मराठों ने दिल्ली के लालकिले पर मुगलों को पराजित करने के बाद अधिकार किया था, तब इनको खोदकर निकाला और उनके सही स्थान पर फिर से लगवाया था।

इस समस्या का स्पष्टीकरण कर चुकने के बाद हम अब उपर्युक्त बातों की सत्यता को सिद्ध करने के लिए ऐतिहासिक प्रमाणों का उल्लेख करेंगे।

आइए, हम सर्वप्रथम देखें कि बादशाह अकबर के अपने दरबारी इतिहास लेखक अबुलफ़ज़ल ने इन हाथियों के सम्बन्ध में क्या कहा है। वह लिखता है : [1]"पूर्वी दरवाजे पर पत्थर के दो हाथी बने हुए हैं, जिन पर उनके सवार भी हैं···।"

श्री हुसैन ने ठीक ही पर्यवेक्षण किया है : [2]"अबुलफजल हाथी-पोल की बात करता है किन्तु जयमल और पत्ता का उल्लेख नहीं करता। उसकी चुप्पी महत्त्वपूर्ण है।"

१. कर्नल एच० एस० जरेट द्वारा अनूदित आईने-अकबरी, खंड II, पृष्ठ १९१।
२. श्री एम. ए. हुसैन कृत 'आगरे का किला', पृष्ठ ४०।

यह तथ्य है कि अपने किले के द्वार पर एक या दो या अधिक गज-प्रतिमाएँ स्थापित करना एक पवित्र हिन्दू रीति-नीति थी। ईसाई पादरी मनसर्रट की उस टिप्पणी से स्पष्ट है जो उसने फतहपुर-सीकरी स्थित अकबर के दरबार से गोआ जाते हुए ग्वालियर की अपनी यात्रा पर की थी।

मनसर्रट ने अपनी दैनंदिनी में लिखा है: [3]"ग्वालियर शहर एक चट्टानी पहाड़ी के शिखर पर बने एक बहुत सुदृढ़ किले से सुशोभित है। द्वारों (इसके दरवाज़ों) के सामने एक विशालकाय हाथी की प्रतिमा बनी हुई है।" उसी पुस्तक के पदटीप में कहा गया है: "हाथी की प्रतिमा उस दरवाज़े के ठीक वाहर लगी थी जिसे हाथी पोल या गज-द्वार कहते थे। यह तोमर नरेश[4] "राजा मानसिंह ने बनवाया था जिसने सन् १४८६ से १५१६ ईस्वी तक राज्य किया। इस हाथी की पीठ पर दो मानव-आकृतियाँ थीं जो ऐसा प्रतीत होता है कि उस समय विद्यमान नहीं थीं जब पादरी मनसर्रट ने लिखा—अर्थात् राजा और महावत की आकृतियाँ (पहले मुगल बादशाह) वाबर ने अपने स्मृति ग्रन्थों में और अबुलफज़ल ने आईन में प्रतिमा का उल्लेख किया है (जर्रट II, पृष्ठ १८१)।"

उपर्युक्त अवतरण प्रमाण है कि हिन्दू लोग किले के दरवाज़ों पर, अवश्यम्भावी रूप से, गज-प्रतिमाएँ स्थापित किया करते थे। इसके विपरीत अरेबिया, ईरान या तुर्कों के अपने राजमहलों में या दुर्गों के दरवाज़ों के सामने मुस्लिम शासकों ने ऐसी प्रतिमाएँ बनाई हों—ऐसी कहीं जानकारी नहीं है। भारतीय (हिन्दू) प्रभाव के सभी क्षेत्रों में, यथा स्याम और हिन्द-चीन में, उनके मन्दिरों और महलों के सामने प्रायः कुछ मूर्तियाँ होती हैं। ये प्रतिमाएं यक्षों जैसी अलौकिक या मानवी अथवा पशु-पक्षियों की आकृतियों की हो सकती हैं। अतः आगरा-दुर्ग, जिसके दरवाज़े पर हाथी की

---

३. मनसर्रट पादरी का भाष्य : पृष्ठ २३।

४. हम यहाँ प्रसंगवश यह लिख देना चाहते हैं कि हमारे मत में तथाकथित मानसिंह राजमहल भी किले के समान ही प्राचीन होगा और अवश्य ही ईसा पूर्व युगीन होगा। इतिहासकार लोग इसके मूल की खोज करें किन्तु हमारी राय में, मात्र इसके नाम के कारण इसको उस मानसिंह द्वारा निर्मित नहीं कहना चाहिए जिसने सन् १४८६ से १५१६ ई० तक राज्य किया।

प्रतिमाएँ थीं, हिन्दू मूलक होने का स्पष्ट द्योतक है।

उपर्युक्त अवतरण में एक नकारात्मक—उल्टा—प्रमाण भी समाविष्ट है। इसमें कहा गया है कि गजारोहियों की प्रतिमाएँ उस समय प्राप्य नहीं थीं जिस समय मनसरंट ने (सन् १५८१ ई०) ग्वालियर-भ्रमण किया था। इस बात का यह एक द्योतक-प्रमाण है कि आधिपत्यकर्ता लोग उन हिन्दू-मूर्तियों के प्रति इतने अधिक असहनशील थे कि उन्होंने उन मूर्तियों को समाप्त कर दिया।

इस बेहूदे अनुमान के कारण स्मिथ को अनुताप करना पड़ा क्योंकि जैसा उसने स्वयं स्वीकार किया है, आगरे में मिले आधार दिल्ली के हाथियों के आकार में ठीक—समरूप—नहीं बैठे। यह इस बात का श्रेष्ठ उदाहरण है कि गणित के प्रश्नों की ही भाँति, ऐतिहासिक प्रश्नों की गुत्थी भी किसी प्रकार सुलझती नहीं है यदि प्रारम्भ में ही गलत आधार और अनुमान स्वीकार कर लिए जाते हैं। उनको जितना अधिक हल करने का यत्न किया जाता है, व्यक्ति की बुद्धि उतनी ही अधिक चकराने लगती है।

प्रवंच्य यूरोपीय प्रवासियों ने भारत के मुस्लिम दरबारों की उग्रवादी इस्लामी गप-शप में अन्धविश्वास करके अपनी दैनन्दिनियों में कुछ औपचारिक टिप्पणियाँ की हैं, उनको आधुनिक इतिहासकार मध्यकालीन इतिहास के तथ्यों को एक स्थान पर जोड़ने के लिए आधार-सामग्री के रूप में उपयोग करने का प्रयत्न करते हैं। किन्तु ऐसा करते समय आधुनिक इतिहासकार को यह बात नहीं भूलनी चाहिए कि भारत में मध्यकालीन मुस्लिम दरबारों में आने वाले यूरोपीय प्रवासियों की भी कुछ सीमाएँ थीं। वे प्रवासी लोग भारत के लिए बिल्कुल अपरिचित, अजनबी थे। उनको उन दिनों भारत में प्रचलित भाषाओं में से अधिकांश की जानकारी नहीं थी। उनका जन-सम्पर्क कुछ मुस्लिम दरबारियों तक ही सीमित था। वे लोग उस गहन वैर-भाव और निरादर-वृत्ति से प्रायः असावधान, अनजाने थे जो मुस्लिम शासक-वर्ग को हिन्दुस्तान की जनता के बहुमत हिन्दू-वर्ग से था। उनको यह बात मालूम नहीं थी कि मध्यकालीन मुस्लिम शिलालेखों, दरबारी-टिप्पणियों तथा गप-शप में सत्य का अंश नहीं के बराबर था।

विन्सेंट स्मिथ द्वारा उद्धृत वान दर ब्रोके के पर्यवेक्षण से स्पष्ट हो गया

है कि यूरोपियनों को ज्ञान नहीं था कि वे लिख क्या रहे हैं। ब्रोके द्वारा तयमल पठान का उल्लेख एक विचित्र मिश्रण है। यदि कोई ऐसा नाम होता ही तो उसका अन्तर्भाव हिन्दू व्यक्ति से ही ध्वनित होता है। 'पठान' ध्वनिक अन्य शब्द सामान्यतः अफगानिस्तान की एक मुस्लिम जन-जाति का द्योतक है। इस प्रकार यह हिन्दू/मुस्लिम नामों का एक विचित्र काल्पनिक मनघड़न्त संयोग है। दूसरी बात यह है कि वह जो शब्दावली उपयोग में लाया है, उससे ऐसा जान पड़ता है कि व्यक्ति केवल एक था, जबकि हमें अभी तक पूर्वकाल से प्राप्य वर्णनों के अनुसार आगरे के लालकिले के दिल्ली दरवाज़े के सामने वाले दो हाथियों पर वास्तव में दो आरोही—एक पर एक —थे। भयंकर भूल करने वाले यूरोपीय वर्णनों के अनुसार ये दोनों गजारोही जयमल और पत्ता थे। ये दोनों वे हिन्दू योद्धा थे जो उस समय शहीद हुए थे जब मुगल बादशाह अकबर की घेरा डाली हुई सेनाओं ने चित्तौड़ की रक्षा करते समय उनको मार डाला था। किन्तु ब्रिटिश इतिहासकार विन्सेंट स्मिथ ने इस बात का एक रोचक उदाहरण प्रस्तुत किया है कि इतिहास के विद्वान् मुस्लिम गप-शप, झूठी कथाओं से इस प्रकार विमोहित, प्रलोभित हो चुके थे कि वे तथ्य और कल्पना के एकत्र, मिश्रित, जटिल समूह से कोई सिर-पैर नहीं निकाल पाते थे। श्री स्मिथ ने लिखा है :[५] "दिल्ली और आगरा की मार्ग-दर्शक पुस्तकों तथा प्रचलित इतिहास ग्रन्थों में दिल्ली के हाथियों के गलत वर्णन दिए हुए हैं। उनकी सच्ची कहानी, जहाँ तक सन् १६११ में मालूम हुई है, एफ० एच० ए०, पृष्ठ ४२६ पर दी हुई है। किन्तु उस समय तक मुझे प्रेज़िडेंट वान दर ब्रोके के अवतरण की जानकारी नहीं थी जो इस प्रकार है : वह एक महान् विजय थी जिसकी स्मृति-स्वरूप बादशाह ने दो हाथियों के निर्माण की व्यवस्था की जिनमें से एक पर तयमल पठान बैठाया गया था और दूसरे पर उसकी अपनी सेना के अनेक नायकों में से एक नायक बैठाया गया था। उन दोनों हाथियों को आगरे के किले के दरवाज़े के दोनों ओर स्थापित किया गया था। मूल पुस्तक में सन् १६२८ ई० तक का उल्लेख है। इसका अर्थ है कि यह सन् १६२६ ई० में

५. विन्सेंट स्मिथ : 'अकबर : महान् मुगल' का पदटीप, पृष्ठ ६८-६६।

ही लिखी गई होगी, इससे पूर्व नहीं। यहाँ यह तो स्पष्ट हो गया होगा कि लेखक ने जयमल और पत्ता के नामों को एक कर दिया और उन्हें नाम-भ्रष्ट कर दिया है। यद्यपि उसका विश्वास था कि हाथियों और उनके सवारों का प्रस्तर-निर्माण इकट्ठा, साथ-साथ ही किया था, तथापि विवरण के बारे में उसे सूचना देने वाले को भ्रम हो गया होगा। तथ्यों से स्पष्ट है कि हाथियों का निर्माण तो प्राचीन हिन्दू कलाकृति थी, जबकि उनके सवारों को, जो भिन्न सामग्री और शैली में थे, अकबर के आदेश पर उन हाथियों पर बैठाए गए थे। किन्तु बरनियर द्वारा देखे गए और आगरा में अकबर द्वारा स्थापित हाथियों के जोड़े के दिल्ली के हाथी होने के बारे में मेरी मान्यता में एक समस्या और उत्पन्न हो गई है कि आगरा में अभी हाल में ही मिले गज-आधार दिल्ली के हाथियों के अवशेषों में समरूप—ठीक-ठीक नहीं बैठते। पादरी एच० होस्टन एस० जे० ने इस विषय पर और खोज-बीन की है।"

हमें आश्चर्य इस बात का है कि इतनी सरल बात के लिए स्मिथ, वान-दर ब्रोके, बरनियर, होस्टन और अन्य यूरोपीय विद्वानों को विभ्रम क्यों है! दिल्ली और आगरा, दोनों लालकिले प्राचीन हिन्दू-दुर्ग होने के नाते, दोनों के दरवाज़ों पर हाथियों की मूर्तियों के पृथक्-पृथक् जोड़े स्थापित थे। उन सभी हाथियों पर उनके आरोही भी थे, जैसाकि उस समय का प्रतिदर्श हिन्दू नमूना था, इस प्रकार का दृश्य आज भी राजस्थान की एक हिन्दू रियासत कोटा के नगर-प्रासादीय द्वार के सामने देखा जा सकता है। इसलिए यह धारणा बनाना तो मूर्खतापूर्ण था कि आगरा-दुर्ग के दरवाजे पर देखा गया गजारोहियों का जोड़ा वही जोड़ा होना चाहिए था जिसे एक अन्य यूरोपीय प्रवासी ने दिल्ली के लालकिले के दरवाज़े पर देखा था। यूरोपीय प्रवासियों की टिप्पणियाँ स्पष्टतः मुस्लिम-दरबार के किसी चापलूस और खुशामदी की ऊल-जलूल प्रवंचनाओं पर आधारित थीं—यह इस तथ्य से ही प्रमाणित है कि अकबर का अपना इतिहासकार अबुलफ़ज़ल आगरे के किले के दरवाज़े के पास बनी हुई गज-प्रतिमाओं पर बैठी हुई दो हिन्दू मानवाकृतियों के बारे में रहस्यमयी चुप्पी लगाए हुए है।

अबुलफ़ज़ल की चुप्पी पूर्णतः न्यायोचित है क्योंकि उसे यह जान पाने

का कोई आधार, स्रोत प्राप्त नहीं था कि वे गजारोही वास्तव में कौन थे क्योंकि उनका निर्माण तो ईसा-पूर्व युग में किले के हिन्दू-निर्माताओं द्वारा अबुलफज़ल से शताब्दियों-पूर्व किया गया था और किला अनेक बार भिन्न-भिन्न हाथों में आया-गया था।

यह कल्पना करना कठिन नहीं होना चाहिए कि मुगल दरबारों के आश्रितों ने जिज्ञासु यूरोपीय प्रवासियों को यह कहकर चुप करा दिया था कि दरवाज़े पर बनी गज-प्रतिमाएँ बादशाह अकबर के आदेश पर स्थापित की गई थीं और उन पर बैठे हिन्दू सवार वे व्यक्ति थे जो अकबर द्वारा चित्तौड़ के घेरे के समय मारे गए थे। मुगल दरबारियों की बातूनीपने और धोखे की प्रतिभा से अनभिज्ञ होने के कारण प्रवंच्य यूरोपीय प्रवासियों ने सूचना के अंशों को पूरी गम्भीरता से अपनी-अपनी दैनंदिनियों में अंकित कर लिया। तब से इतिहास के विद्यार्थियों और विद्वानों ने उन टिप्पणियों को अन्य संगत विचारों के साथ अत्यन्त भ्रामक और असमाधेय पाया है।

विन्सेंट स्मिथ उस समय सत्य के अत्यन्त निकट था जब उसने यह लिखा कि "यथ्यों से स्पष्ट है कि हाथियों का निर्माण तो प्राचीन हिन्दू कलाकृति थी।" वह बिल्कुल सही है। किन्तु उसने अर्ध-सत्य का प्रकटीकरण ही किया है क्योंकि उसे यह अनुभूति भी होनी चाहिए थी कि प्राचीन हिन्दू लोग एक ही प्रस्तर-सामग्री से हाथी और उससे आरोही का निर्माण और वह भी सामान्यतः एक ही चट्टान के अंश से किया करते थे। ऐसा नहीं होता था कि हाथियों और उनके सवारों का पृथक्-पृथक् पत्थरों से निर्माण किया जाता था और फिर उनको आरोही-स्थिति में दिखाकर जोड़ दिया जाता हो। वे इस विधि को क्यों अपनाते ? किसी विशेष प्रकार के पत्थरों की कमी थी क्या ? इसलिए यदि हाथी—मूर्तियाँ प्राचीन हिन्दू कलाकृतियाँ थीं तो उनके सवारों की भी यही सत्यता थी। इससे ही स्मिथ को निष्कर्ष निकाल लेना चाहिए था कि बरनियर और वान दर ब्रोके ने मुस्लिम दरबारी पाखण्ड में विश्वास करके और यह लिखकर गलती की थी कि वे दोनों गजारोही जयमल और पत्ता थे।

हम अब एक अन्य सुप्रसिद्ध ब्रिटिश विद्वान्, वास्तुकार और इतिहासकार ई० बी० हेवेल का उद्धरण प्रस्तुत करेंगे। वह भी गज-प्रतिमाओं के

मूलोद्‌गम के सम्बन्ध में सत्यता के अत्यधिक निकट पहुँच गया था, किन्तु सत्यता का दर्शन उसे भी वैसे ही नहीं हो पाया जैसे स्मिथ को नहीं हो पाया था।

ब्रिटिश वास्तुकार-इतिहासकार हेवेल ने आगरे के लालकिले के सामने वाले हाथियों का सन्दर्भ देते हुए लिखा है : "ये गज-प्रतिमाएँ पुरातत्व-शास्त्रियों को अत्यन्त विक्षुब्ध करती रही हैं। बरनियर ने दिल्ली का वर्णन करते हुए किले के दरवाजों के बाहर दो विशालकाय प्रस्तर-गजों का सन्दर्भ दिया है जिन पर दो आरोही थे। वह कहता है कि वे मूर्तियाँ सुप्रसिद्ध राजपूत सरदारों, जयमल और पत्ता की थीं जिनको चित्तौड़ का घेरा डाले हुए अकबर द्वारा मौत के घाट उतार दिया गया था। 'दो योद्धाओं की शूरवीरता से प्रसन्न होकर, उनके शत्रुओं ने उनकी प्रशंसा करते हुए उनकी स्मृति में उनकी मूर्तियाँ स्थापित कर दी थीं।' अब बरनियर यह नहीं कहता कि उन मूर्तियों की स्थापना अकबर ने की थी, किन्तु जनरल कनिंघम ने, यह निष्कर्ष निकालते हुए कि अकबर का यही भाव था, यह धारणा प्रचारित कर दी कि वे दोनों आगरा के किले के सामने थीं जिसे अकबर ने बनाया था और उनको शाहजहाँ द्वारा दिल्ली ले जाया गया था, जब उसने अपना नया राजमहल वहाँ बनाया था। कीन ने जिसने अपनी 'दिल्ली-निर्देशिका' पुस्तक में इस प्रश्न पर विस्तार से विचार किया है, इस सुझाव को स्वीकार किया है। इन दोनों अधिकारियों में से कोई भी आगरा के हाथीपोल के सामने बने हुए चबूतरे पर पैरों के निशानों के अस्तित्व के प्रति सावधान प्रतीत नहीं होता। मैंने इन निशानों की लम्बाई-चौड़ाई की अभी भी दिल्ली में विद्यमान हाथी की लम्बाई-चौड़ाई से तुलना की है और देखा है वे किसी भी प्रकार परस्पर मेल नहीं खाते। दिल्ली वाला हाथी पर्याप्त विशालकाय पशु है और वह किसी भी प्रकार आगरा दरवाज़े के चबूतरे में ठीक नहीं बैठेगा। इस प्रकार जनरल कनिंघम की मान्यता निराधार सिद्ध हो जाती है। यह भी सम्भावना है कि दिल्ली वाले हाथी आगरा में अकबर द्वारा स्थापित हाथियों की हूबहू नकल रहे हों। ऐसा तो प्रतीत होता नहीं कि उन राजपूत-नायकों की स्मृति को सजग रखने के लिए शाहजहाँ ने प्रारम्भिक रूप में ही उनको मूर्ति-रूप दे दिया हो किन्तु आम

धारणा या परम्परा ने बरनियर द्वारा बतायी गई कथा को दिल्ली की भव्य गज-प्रतिमाओं से जोड़ दिया हो। भारतीय राजमहलों और किलों के सामने गजों की मूर्तियों को सामान्य रूप में इतनी अधिक मात्रा में संस्थापित करने की प्रथा थी कि इस कहानी के अतिरिक्त, किसी भी प्रकार आगरा और दिल्ली में लगे हुए हाथियों के बीच कोई सम्बन्ध जोड़ने की आवश्यकता ही नहीं होती। जहाँगीर के शासनकाल में आगरे का भ्रमण करने आए विलियम फिन्च के हवाले से पचीस ने हाथीपोल पर स्थित हाथियों का वर्णन किया है किन्तु उन प्रतिमाओं के मूलोद्गम की भिन्न बात कही है। 'इन दो दरवाज़ों के पार आप एक दूसरा दरवाजा भी पार करो जिस पर दो राजा पत्थर की मूर्तियों में हैं। कहा जाता है कि वे दो राजपूत भाई थे, एक राजकुमार के शिक्षक, उनका भतीजा, जिनको बादशाह ने माँग लिया था। उन्होंने इन्कार कर दिया और बन्दी किया गया। किन्तु वे अधिकारियों पर जा चढ़े, बारह व्यक्तियों को मार डाला, किन्तु अन्त में चूँकि उनके विरुद्ध बहुत बड़ी संख्या में विरोधी आ गए, इसलिए वे भी मार डाले गए। यहाँ वे पत्थर के हाथियों सहित मूर्त-रूप हैं। यहाँ पर का अर्थ 'ऊँचा' है और न कि आज की आधुनिक शब्दावली 'चोटी पर' जैसा कि कीन ने विचार किया था'।"

जिस प्रकार एक बार गज-प्रतिमाओं और उनके आरोहियों के हिन्दू मूलोद्गम की सत्य कथा के अत्यन्त निकट श्री स्मिथ पहुँच गए थे, उसी प्रकार दूसरे ढंग से श्री हेवेल भी उन प्रतिमाओं के हिन्दू मूलोद्गम के सर्वथा समीप पहुँच गए थे। यद्यपि पूर्ण सत्य का स्पर्श वे भी उसी प्रकार नहीं कर पाए जिस प्रकार श्री स्मिथ; तथापि उस जटिल समस्या को सुलझाने की दिशा में वे कई पक्षों को उद्घाटित करने में पूर्णतः सफल हुए हैं।

सर्वप्रथम तो श्री हेवेल ने जनरल कनिंघम की इस धारणा का दोष सिद्ध किया है कि बरनियर ने अकबर द्वारा गज-प्रतिमाओं के निर्माण की बात सिर मढ़ दी है। यह स्पष्टतः प्रदर्शित करता है कि किस प्रकार ब्रिटिश नियन्त्रित भारत सरकार के पुरातत्व विभाग की अध्यक्षता करने वाले जनरल कनिंघम जैसे व्यक्ति अनर्गल अनुमान लगा लेने के दोषी हैं। उनके द्वारा सरकारी मोहर लगने के अभाव में तो अकबर द्वारा लालकिला निर्माण

कर दिए जाने की श्रेष्ठ कहानी स्कूली बच्चों की पुस्तक में समाविष्ट भयंकर त्रुटि ही गिनी जाती···काल्पनिक कथा मानी जाती।

तथ्य रूप में तो बरनियर की यह टिप्पणी भी कई प्रकार से अत्यन्त नेत्रोन्मेषकारी है कि दिल्ली के लालकिले के सामने बने हाथियों के सवारों को भी (मुस्लिम दरबार की बातचीत में) जयमल और पत्ता की संज्ञा ही दी गई थी।

पहली बात तो यह है कि इससे स्पष्ट प्रकट हो जाता है कि अकबर के प्रवंचक-दरबारियों ने जिस प्रकार मनसर्रट पादरी को विश्वास दिला दिया था कि आगरे के लालकिले के बाहर गज-प्रतिमाओं पर हिन्दू सवार जयमल और पत्ता थे, उसी प्रकार दो पीढ़ियों बाद दिल्ली पधारने वाले फ्रांसीसी प्रवासी बरनियर को भी दिल्ली के लालकिले के गजारूढ़ हिन्दुओं को भी जयमल और पत्ता इंगित कर दिया गया। यह सिद्ध करता है कि जब सभी प्राचीन हिन्दू किलों के सामने बने हुए, सर्व-व्याप्त आरोही हिन्दू-आकृतियों का स्पष्टीकरण करने की कठिनाई दरबारी-प्रवंचकों के सम्मुख उपस्थित हुई, तभी उन लोगों ने जिज्ञासु यूरोपीय प्रवासियों को कोई-सा भी हिन्दू नाम बताकर शान्त कर दिया। चूंकि जयमल और पत्ता की वीरता उनके मानस में अभी नई ही थी, अतः मुस्लिम घोर उग्रवादियों ने दरबार में उपस्थित जिज्ञासु यूरोपीयों को बता दिया कि गजारोही व्यक्ति तो दो हिन्दू राजपुत्र जयमल और पत्ता थे।

प्रसंगवश यह एक अन्य भयंकर भूल का संकेतक है। इतिहास के आंग्ल-मुस्लिम वर्ग ने छात्रों और विद्वानों को यह विश्वास दिलाकर पथभ्रष्ट किया है कि दिल्ली में लालकिले का निर्माण (सन् १६२८ से १६५७ ई० तक शासन करने वाले) शाहजहाँ ने करवाया था।

हमने अभी तक जो विषय-विवेचन किया है उससे स्पष्ट हो गया है कि किसी भी किले के सम्मुख हिन्दू गज-प्रतिमाओं का होना उस किले के हिन्दू मूलक होने का अत्यन्त प्रबल प्रमाण है। इसलिए यदि बरनियर लिखता है कि दिल्ली के लालकिले के बाहर भी हाथी-मूर्तियाँ थीं, उसी प्रकार की जिस प्रकार की आगरे के लालकिले के बाहर थीं, तो क्या यह इस बात का स्पष्ट द्योतक नहीं है कि दिल्ली का लालकिला भी आगरे के लालकिले के

समान ही एक प्राचीन हिन्दू किला है? प्रचलित इतिहास-ग्रंथों में और (पर्यटक साहित्य की) मार्ग-दर्शक पुस्तकों में इस कथन को भी भयंकर त्रुटि माना जाना चाहिए कि पाँचवीं पीढ़ी के मुगल बादशाह शाहजहाँ द्वारा ही दिल्ली का लालकिला बनवाया गया था।

हेवेल ने आगरा-स्थित गजाधार पर बने हुए पद-चिह्नों की दिल्ली के लालकिले में स्थापित हाथियों के पैर के आकार से तुलना करके श्रेयस्कर कार्य किया है। इसके द्वारा उसने उस धारणा को बड़ी सफलतापूर्वक असत्य सिद्ध कर दिया है जिसमें कहा गया था कि आगरे के लालकिले से हटाई गई गज-प्रतिमाओं को दिल्ली के लालकिले के बाहर लगा देने के लिए दिल्ली अवश्य ही ले जाया गया होगा। हम पहले ही इस बात का पूर्ण विवेचन कर चुके हैं कि पूर्व-अनुमान की दृष्टि से भी वह विचार कितना बेहूदा है।

भारत में कभी ऐसे पत्थरों की कमी नहीं रही जिनसे मूर्तियाँ, प्रतिमाएँ गढ़ी जाएँ। दूसरी बात यह है कि मुस्लिम लोग तो मूर्ति-भंजक के रूप में कुख्यात हैं, मूर्ति-निर्माता के रूप में विख्यात नहीं। तीसरी बात यह है कि आगरा से पत्थर की प्रतिमाओं को उतरवाना, फिर दिल्ली तक ढोकर लाना और वहाँ उनको स्थापित करने के कार्य में यदि उन प्रतिमाओं में दरार और भंग नहीं होंगे तो कम-से-कम कुछ टूट-फूट तो अवश्य होगी ही। पाँचवीं बात यह है कि आगरे के किले के बाहर लगे हुए हाथियों को नीचे उतरवाकर, दिल्ली लाकर, फिर कहीं लगवाने की अपेक्षा दिल्ली में ही नई प्रतिमाएँ बनवा लेना कम खर्चीला कार्य होता। पाँचवीं बात यह है कि यदि आगरे के किले के सामने वाली प्रतिमाएँ किसी मुस्लिम व्यक्ति द्वारा नीचे उतरवा दी गई थीं तो उसका कारण यह था कि धार्मिक अन्धविश्वासी होने के कारण वह व्यक्ति उनके दर्शनों को फूटी आँख भी सहन नहीं कर पाता था। क्या ऐसा व्यक्ति उनको दिल्ली तक ले जाने और फिर वहाँ उनको स्थापित करके अपनी इस्लामी अतिसंवेदनशीलता को खटकने वाली बात करने की अपेक्षा आगरे में ही विनष्ट नहीं कर देता? इस बात से पाठक को यह भली-भाँति समझ में आ जाना चाहिए कि न तो आगरे का लालकिला अकबर द्वारा बनवाया गया था और न ही दिल्ली का लालकिला शाहजहाँ द्वारा, दोनों ही बहुत पुरानी संरचनाएँ हैं जो विजयोपरान्त मुस्लिमों के

आधिपत्य में पहुँच गईं और चूँकि उन मुस्लिमों को यह जँचता नहीं था कि उन हिन्दू किलों के सामने, जिनको उन्होंने अपने अधिकार और आधिपत्य में ले लिया था, उन्हीं हिन्दुओं के बनाए हिन्दू गजराजों की मूर्तियाँ उनको सदैव सालती रहें, इसलिए उन्होंने उनको आगरा और दिल्ली, दोनों जगह विखण्डित कर दिया। यही कारण है कि वे गजारोही मूर्तियाँ, जिनका उल्लेख दिल्ली और आगरा के प्रवासी यूरोपीय लोगों ने किया था, आज अपनी मूल स्थिति में नहीं हैं। अपने-अपने आरोहियों सहित गज-प्रतिमाएँ, दिल्ली और आगरा दोनों ही स्थानों की, पृथक्-पृथक् कलाएँ थीं। वे प्रतिमाएँ दोनों किलों के सामने स्थापित थीं क्योंकि वे दोनों किले हिन्दुओं द्वारा ईसा-पूर्व युग में अथवा कम-से-कम मध्यकालीन मुस्लिम आक्रमणों से बहुत समय पूर्व ही निर्मित हुए थे। हिन्दू निर्माताओं के लिए यह पुरातन रीति थी कि आरोहियों सहित सुसज्जित गजराज उनके राजमहलों और किलों के दरवाज़ों पर सुशोभित हों, उनकी शोभा बढ़ाएँ।

अब चूँकि पाठक के समक्ष इतिहास के विद्वानों के रूप में ख्याति-प्राप्त व्यक्तियों की हाथियों के सम्बन्ध में भयंकर भूल के बारे में सभी तथ्य उपस्थित हैं, अतः हम उसको ईसाई पादरी मनसर्रट की एक भ्रामक टिप्पणी प्रस्तुत करेंगे। यह व्यक्ति अकबर के दरबार में दो वर्ष रहा था। पादरी मनसर्रट ने अपनी दैनंदिनी में लिखा था : [७]"जलालुद्दीन मोहम्मद अकबर ने बादशाह घोषित होने पर ईसाई-बादशाहों के ज़माने से चली आई सरकार की राजधानी दिल्ली से बदलकर आगरा कर दी, जहाँ वह स्वयं पैदा हुआ था और वहीं पर उसने एक राजमहल और किला बनाए थे जो स्वयं ही बड़े नगर जितने बड़े थे; क्योंकि उसने अपने किले के कमरों में अपने सरदारों के कमरे, बारूदखाना, खज़ाना, शस्त्रागार, घुड़सवारों का अस्तबल, ओषधि-विक्रेताओं की तथा नाइयों और सभी प्रकार के व्यक्तियों की दुकानें और कोठरियाँ सम्मिलित की थीं। (मनसर्रट ने यह गलत अनुमान लगाया था कि मुस्लिम आक्रमणों से पूर्व भारत पर ईसाई राजाओं का राज्य था। साथ ही यह भी गलत है कि अकबर का जन्म आगरा में हुआ था)। इन भवनों के

७. पादरी मनसर्रट द्वारा भाष्य, पृष्ठ ३४ से ३६।

पत्थर इतनी विलक्षणतापूर्वक जोड़े गए हैं कि उनके जोड़ दिखाई नहीं देते, यद्यपि उनको जोड़ने में चूना इस्तेमाल नहीं किया गया था। दरवाज़े के सामने दो छोटे राजाओं की मूर्तियाँ हैं जिनको जलालुद्दीन मोहम्मद अकबर ने स्वयं अपनी बन्दूक से मारा था; ये दोनों व्यक्ति उन जीवित आकार के हाथियों पर विराजमान हैं जिन पर ये राजा लोग जीवितावस्था में बैठा करते थे। ये प्रतिमाएँ बादशाह की शूरवीरता और उसकी सैनिक विजय, दोनों का ही प्रतीक हैं। आगरा चार मील लम्बा और दो मील चौड़ा है…। जब भवन का कार्य पूरा हो गया और बादशाह अपने नए किले व राजमहल में निवास करने के लिए गया तब उसने उस स्थान को प्रेतों से भरा हुआ पाया, जो यहाँ से वहाँ भाग रहे थे, प्रत्येक वस्तु को चकनाचूर कर रहे थे, महिलाओं और बच्चों को भयभीत कर रहे थे, पत्थर फेंक रहे थे और अंतिम स्थिति में उन्होंने हर किसी को चोट पहुँचानी शुरू कर दी थी…।"

मनसर्रट की उपर्युक्त टिप्पणी अनेक अयथार्थताओं से भरी पड़ी है। मूलपाठ में उसने अकबर और दिल्ली के नामों की वर्तनी अशुद्ध की है जो उसकी उपेक्षावृत्ति और पर्यवेक्षण में चूक करने की परिचायक हैं। दूसरी बात यह है कि उसका यह विश्वास करना अशिक्षित गँवार व्यक्ति के स्तर का ही था कि मुस्लिम आक्रमणों से पूर्व भारत पर ईसाई राजाओं का शासन था। विश्व का ज्ञान एवं उसकी समझ का यह अत्यन्त निकृष्ट उदाहरण है। तीसरी बात यह है कि उसका यह विश्वास करना कारुणिक रूप में बेहूदगी है कि सन् १५५६ में गद्दी पर बैठने वाले १३ वर्षीय अकबर ने सन् १५८१ तक (मनसर्रट फतहपुर-सीकरी में प्रवासी के रूप में आया था) आगरा शहर का निर्माण किया था जिसमें एक किला था, उसके दरबारियों और सामान्य प्रजा के लिए हज़ारों आवास थे, उस शहर में आबादी की थी और फिर एक अन्य नगर—फतहपुर-सीकरी की रचना की थी और उसे भी बसाया था। यह उन बड़ी-बड़ी, अतिशयोक्तिपूर्ण गप-शपों का एक विशिष्ट उदाहरण है जो मध्यकालीन भारत की यात्रा करने वाले यूरोपीय प्रवासियों ने अपनी दैनन्दिनी में लिखी थीं। उसका यह कहना भी गलत है कि अकबर आगरा में पैदा हुआ था। अकबर का जन्म तो भारत की सीमा पर सिन्धु के रेगिस्तान में हुआ था। इस बात से, उसकी इस बात पर विश्वास करने का

विचार भलीभाँति किया जा सकता है कि जब वह कहता है कि हाथियों की प्रतिमाओं पर बैठे व्यक्ति वे दो छोटे राजा लोग थे जिनको स्वयं अकबर ने अपनी बन्दूक से मार गिराया था। स्वयं यह विवरण भी गलत है। जब अकबर की सेना ने चित्तौड़ के किले को घेर रखा था तब वह स्वयं उस किले से मीलों दूर डेरा डाले रहता था। मध्यकालीन बन्दूकों से तो मात्र कुछ गज की दूरी तक ही निशाना साधकर गोली मारी जा सकती थी, किसी ऊँची पहाड़ी पर स्थित किले की विशाल दीवार पर अँधेरी रात में, दीपक की रोशनी में काम करवा रहे व्यक्ति पर नीचे मीलों दूर से अकबर द्वारा निशाना लगाकर मार डालने की तो बात ही क्या है। जयमल और पत्ता तो आमने-सामने की लड़ाई में स्वर्गवासी हुए थे। अकबर किले में तब घुस पाया था जब वहाँ से उसका सम्पूर्ण प्रतिरोध समाप्त हो गया था। अन्त में मनसर्रट की यह बात लिखना भी मूर्खतापूर्ण और बेवकूफी है कि अकबर ने प्रेतों वाले आगरा किले को त्याग दिया था और फतहपुर-सीकरी चला गया था। यदि मनसर्रट के कहे अनुसार ही आगरे का लालकिला स्वयं अकबर द्वारा ही नया-नया बना था तो उसमें प्रेतों का वास कहाँ से हो गया? यदि यह मान भी लिया जाय कि प्रेत जैसी कोई वस्तु होती है। प्रेतों का सम्बन्ध तो उन अति प्राचीन भवनों से होता है जहाँ अनेक पीढ़ियाँ रह चुकी हों और अनेक विचित्र घटनाएँ घट चुकी हों। तथ्य रूप में तो यह अत्यन्त सूक्ष्म विवरण भी परोक्ष रूप से सिद्ध करता है कि आगरे का लालकिला अति प्राचीन, स्मरणातीत युग का है। इतना ही नहीं, अकबर एक ऐसा बादशाह था जिसमें सामान्य ज्ञान पर्याप्त मात्रा में विद्यमान था और जो स्वयं असमाधेय वृत्ति का व्यक्ति था। उसके साथ तो सदैव एक बहुत बड़ा हरम, अनेक परिचर और सुरक्षा सैनिक रहते थे। इस बारे में भी कहीं कोई लिखित तथ्य प्राप्य नहीं है कि वह कभी दृष्टि-भ्रम, इन्द्रजाल आदि से पीड़ित हुआ था। इन परिस्थितियों में यदि मनसर्रट लिखता है कि अकबर ने स्वयं अपने द्वारा ही निर्मित आगरा नगर और आगरे के किले का परित्याग कर दिया था, तो स्पष्ट है कि मनसर्रट में पर्यवेक्षण-प्रखरता की अत्यधिक कमी थी और स्पष्टत: उसकी जानकारी का मूल स्रोत मुगल-दरबार का कोई अशिक्षित बुजुर्ग, दकियानूसी, मूर्ख ही रहा होगा। इतना ही नहीं, मनसर्रट ने 'किला'

शब्द प्राचीर-युक्त सम्पूर्ण आगरा नगर के अर्थ में प्रयुक्त किया है।

उपर्यक्त विवेचन में हमने यह स्पष्ट कर दिया है कि जिन लोगों को इतिहास के विद्वानों के रूप में अत्यन्त श्रद्धा-भाव से सादर देखा जाता है, उन्हीं कीन, विन्सेंट, स्मिथ, हेवेल, मनसरंट, बरनियर, जनरल कनिंघम, वान दर ब्रोके और अन्य अनेक लोगों ने अनेकों भयंकर भूलें की हैं तथा इतिहास को इस प्रकार खिचड़ी बना दिया है कि स्कूली छात्र को भी लज्जा अनुभव होने लगेगी। इसमें कोई सन्देह नहीं कि वे लोग मेधावी और परिश्रमशील व्यक्ति थे। ऊँचे-ऊँचे पदों पर भी आसीन थे। उनको महान् तथा सूक्ष्मतर अन्तर्दृष्टि भी प्राप्त थी तथा उन्होंने अपने अन्वेषणकारी पदटीपों और इतिहास-संबंधी तेजस्वी विश्लेषणों में इतिहास में रुचि रखने वाली पीढ़ियों को अत्यधिक मूल्यवान मार्गदर्शन भी प्रदान किया है। तथापि उनकी महत्ता और उनके प्रति श्रद्धा होते हुए भी हमें उनकी विफलताओं के प्रति आँखें नहीं मूँद लेनी चाहिए। हमें उनकी सभी अच्छी बातों के सम्मुख विनम्र होना चाहिए, फिर भी उनकी कमजोरियों के प्रति सजग रहना चाहिए। इतिहास की जो सेवा उन्होंने की है उसकी सराहना करते हुए भी उनके द्वारा इतिहास की कु-सेवा से अपनी आंखें बन्द नहीं करनी चाहिए। इसका अर्थ यह नहीं है कि उन्होंने जान-बूझकर इतिहास में घपला पैदा किया है। हम मानते हैं कि वे असहाय थे। सत्य ने उनको धोखा दिया। किन्तु फिर भी हम भावी पीढ़ियों, इतिहास के समकालीन विद्यार्थियों और स्मारकों के दर्शनार्थियों को सचेत करना चाहते हैं कि वे लोग बड़े-बड़े नामों, उच्च प्रशंसा अथवा शक्ति-सम्पन्न सरकारी पदनामों से भयभीत न हों अथवा उनकी धमकियों में न आएँ। इस अध्याय में हमने यह दर्शाया है कि विशालकाय गजराजों के समान ही यशस्वी तथा शक्ति-सम्पन्न व्यक्तियों ने शब्दशः उन्हीं पशुओं के समान विशाल गलतियाँ की हैं। ऐसे मामलों में गलती को गलती ही और भयंकर भूल को भयंकर भूल ही कहा जाना चाहिए—यह प्रश्न नहीं है कि उसे किसने किया है?

अध्याय १४

साक्ष्य का सारांश

आगरे के लालकिले के मूलोद्गम और निर्माण के सम्बन्ध में कोई भी मार्गदर्शक अथवा पर्यटक या ऐतिहासिक साहित्य, निश्चयपूर्वक कुछ भी नहीं कहते।

यद्यपि वे सभी सामान्य रूप में इस लालकिले के निर्माण का श्रेय तीसरी पीढ़ी के मुगल बादशाह अकबर को देते हैं, फिर भी वे जब पूर्ण विवरण प्रस्तुत करने लगते हैं, तब वे इस भ्रमजाल में फँस जाते हैं कि क्या यह कोई प्राचीन हिन्दू भवन संकुल है अथवा बारम्बार इसे विनष्ट किया गया था तथा बनवाया गया था, सम्पूर्ण या आंशिक रूप में—और इसके निर्माणकर्ता तथा विध्वंसक सिकन्दर लोधी, सलीमशाह सूर और अकबर के पश्चात् भी ऐसा ही प्रतीत होता है कि जहाँगीर और शाहजहाँ ने भी किले के भीतर बने हुए कुछ राजमहलों को विनष्ट किया था और उनके स्थान पर नव-निर्माण करवाए थे।

ऊपर जिन पाँच बादशाहों के नाम पर किला बनवाने या उसके भीतर के ५०० भवनों को विनष्ट करने तथा किले का पुनर्निर्माणादि के भिन्न-भिन्न दावे किए जाते हैं, उनके सम्बन्ध में अभिलेख-साक्ष्य (कागज-पत्रादि का लिखित) प्रमाण की एक पर्ची भी विद्यमान नहीं है।

विधि-प्रक्रिया से भलीभाँति परिचित न होने वाले पाठक, तब यह प्रश्न कर सकते हैं कि क्या इसका भी कोई लिखित प्रमाण उपलब्ध है जिससे सिद्ध होता हो कि यह किला ईसा-पूर्व युग में हिन्दुओं द्वारा बनवाया गया था। इसका उत्तर यह है कि हिन्दू देव-प्रतिमाओं, शिलालेखों और प्राचीन हिन्दू सम्राटों के पुरातत्व-संग्रहालयों में प्रलेखों के रूप में विद्यमान बहुल हिन्दू

साक्ष्य सर्वप्रथम उस समय लूटा और विनष्ट किया गया था जब ग्यारहवीं शताब्दी के प्रथम भाग में महमूद गज़नी ने किले पर आक्रमण किया था, फिर उस समय जब सन् १५२६ से लगभग १७६० ई० तक किला अनवरत मुस्लिम आधिपत्य में रहा था। यदि किसी भवन के स्वामी को उसके भवन से बलपूर्वक बाहर निकाल दिया जाय और अतिक्रमण करने वाला आक्रामक उस भवन पर शताब्दियों तक लगातार अपना कब्जा बनाए रखता है तो क्या यह सम्भव है कि कई शताब्दियों तक उस भवन से बाहर रखकर पुनः उसमें प्रवेश करने वाले स्वामी को अपना साज-सामान उसी प्रकार सुव्यवस्थित मिल जाएगा?

इस प्रकार, यह एक वैध कारण है जिससे स्पष्ट ज्ञात हो जाता है कि किले के हिन्दू मूलोद्गम के सम्बन्ध में कोई प्रलेखात्मक साक्ष्य प्रस्तुत करने की स्थिति में हिन्दू लोग आज क्यों नहीं हैं। फिर भी हमारा विश्वास है कि यदि किले के भीतर ठीक विधि से पुरातत्वीय उत्खनन कार्य किया जाए और यदि इसके अँधेरे तहखानों, तलघरों आदि को खोला और सफाई की जाए तो अब भी उनमें मुस्लिम आधिपत्यकर्ताओं द्वारा विनष्ट और दफनाए गए संस्कृत-शिलालेख तथा देव-मूर्तियाँ उपलब्ध हो सकती हैं। तथ्य तो यह है कि अभी तक जो भी अव्यवस्थित और अनियमित, बे-हिसाब खुदाई की गई है, उसीके परिणामस्वरूप घोड़ों और हाथियों की प्रतिमाएँ तथा कदाचित् अन्य छोटा-मोटा साक्ष्य प्राप्त हुआ है।

फिर भी आज की स्थिति पर विचार करते हुए कोई भी विधि-न्यायालय यह तर्क न्याय-संगत मान जायगा कि किसी भी प्रलेखात्मक प्रमाण प्रस्तुत न कर पाने में हिन्दुओं के पक्ष में वैध कारण उपस्थित है।

न्यायालय तब आंग्ल-मुस्लिम वर्ग से कहेगा कि वे अपने प्रलेख प्रस्तुत करें। उस वर्ग के पास भी किसी प्रलेख की ऐसी कोई धज्जी—रद्दी का टुकड़ा भी नहीं है जो यह सिद्ध कर सके कि किसी भी मुस्लिम बादशाह या बादशाहों ने, शासकों ने इस किले को बनवाया या पुनर्निर्मित करवाया था। किसी दरबारी चापलूस तिथिवृत्तकार द्वारा चलते-चलते उल्लेख करना कोई प्रलेखात्मक साक्ष्य नहीं है। यह तो इसी प्रकार है कि हम और आप अपनी दैनन्दिनियों में लिख लें कि हमने लन्दन का संसद् भवन बनवाया था।

कोई ऐसा वैध कारण प्रतीत नहीं होता जिससे मान लिया जाय कि आंग्ल-मुस्लिम वर्ग किला-निर्माण करने के मुस्लिम-दावों से सम्बन्धित किसी एक प्रलेख को भी प्रस्तुत कर लेने में समर्थ नहीं हो सकता। यदि दावे सत्य होते तो ऐसे प्रलेख तो विपुल मात्रा में उपलब्ध होने चाहिए थे, क्योंकि ब्रिटिश लोगों ने जब मुगल बादशाह को सत्ता-च्युत किया, तब उन्होंने मुगल (पुरा) अभिलेखागार से जब्त की हुई समस्त सामग्री को सुरक्षित और वर्गीकृत करके रखा। उन अभिलेखों में पत्रों के अतिरिक्त कदाचित् ही कोई अन्य वस्तु है।

जब आंग्ल-मुस्लिम वर्ग अपने दावे के समर्थन में एक भी प्रलेख प्रस्तुत करने में विफल होगा, तब न्यायालय कारण-कार्य-न्याय के अनुसार उसके प्रतिकूल निष्कर्ष निकाल लेगा।

फिर भी, प्रतिवादी आंग्ल-मुस्लिम वर्ग के मामले में इस मूलभूत कमजोरी से हम कोई लाभप्रद-स्थिति में होने का दावा नहीं करते। साधारण जीवन में कई बार ऐसे अवसर आते हैं जब किसी भी पक्ष के पास प्रलेखात्मक साक्ष्य उपलब्ध नहीं होते फिर भी अत्यधिक विपुल मात्रा में परिस्थिति-साक्ष्य उपलब्ध होता है जिसके आधार पर न्यायालय अन्य दावों की तुलना में एक दावे को न्यायोचित ठहराने का सद्कार्य कर सकता है।

यही, इसी प्रकार का परिस्थिति-साक्ष्य है जिसे हम सुविज्ञ जनता की राय रूप पूर्ण पीठ के समक्ष प्रस्तुत करना चाहते हैं।

१. ब्रिटिश इतिहास-लेखक कीन के अनुसार आगरे का किला ईसा-पूर्व युग से विद्यमान रहा है। (ईसा-पूर्व तीसरी शताब्दी के) सम्राट् अशोक और (ईसा-पूर्व पहली शताब्दी के) कनिष्क जैसे सम्राट् उस किले में निवास कर चुके थे।

२. ईसवी सन् की ग्यारहवीं शताब्दी में फिर उसी किले का सन्दर्भ फारसी कवि, इतिहासकार सलमा द्वारा प्रस्तुत किया गया है। उस शताब्दी के प्रारम्भ में जब आगरा पर हिन्दू सम्राट् जयपाल का शासन था, तब उस किले पर प्रथम मुस्लिम आक्रमण आक्रामक महमूद गजनी के द्वारा किया गया था।

३. उसके बाद से, कुछ उग्रवादी मुस्लिम वर्णनों में अस्पष्ट, उत्तर-

दायित्वहीन दावे किए गए हैं कि मुस्लिम सुल्तान सिकन्दर लोधी ने हिन्दू किले को ध्वस्त किया था। यह दावा पूर्णतः निराधार पाया गया है।

४. कुछ वर्ष बाद, कुछ अन्य मध्यकालीन मुस्लिम चापलूसों द्वारा एक अन्य दावा किया जाता है कि सुल्तान सलीमशाह सूर ने या तो हिन्दू किला अथवा सिकन्दर लोधी का किला विध्वंस किया था और उसी स्थान पर अथवा किसी अन्य स्थान पर अपना ही किला बनवाया था। वह दावा भी पाखण्डपूर्ण, झूठा पाया गया है क्योंकि उस किले का कोई नाम-निशान, चिह्न भी नहीं मिलता जिसे सलीमशाह सूर द्वारा निर्मित कहा जाता है। भूतपूर्व इतिहासकार स्वर्गीय सर एच० एम० इलियट के अनुसार, मुस्लिम इतिहास ऐसे झूठे दावों से भरा पड़ा है।

५. यह दावा भी निराधार पाया गया है कि अकबर ने इस किले को बनवाया था क्योंकि जब यह कहा जाता है कि उसने सन् १५६५ ई० में किले को गिरवा दिया था, तभी सन् १५६६ ई० में किले के भीतर राज-महल-कक्ष की छत से हत्यारे आधम खाँ को नीचे फेंक दिया जाना इस बात का प्रबल प्रमाण है कि अकबर की ओर से किया जाने वाला दावा भी उसी प्रकार का झूठा, धोखे से पूर्ण है जिस प्रकार इससे पूर्ववर्ती दो मुस्लिम सुल्तानों की ओर से किए गए दावे हैं। तथ्य रूप में तो यह भी स्पष्ट कहा जाता है कि अकबर के समय का एक भी भवन किले में विद्यमान नहीं है।

६. अकबर के बेटे जहाँगीर के बारे में भी कहा जाता है कि उसने पिता के बनवाए हुए महल को गिरवा कर किले के भीतर ही, यहाँ या वहाँ शायद एक राजमहल बनवाया था, किन्तु यह अनुमान भी मात्र कल्पना अथवा निरर्थक, असंगत लिखा-पढ़ी पर आधारित पाया जाता है। हम इस विषय पर पूर्ण रूप से विवेचन कर चुके हैं और देख चुके हैं कि यह दावा किसी गप-शप से इतर कुछ नहीं है।

७. जहाँगीर के बेटे शाहजहाँ के बारे में भी कहा जाता है कि उसने किले के भीतर के ५०० भवन गिराए थे और (उनके स्थान पर) अन्य ५०० भवन बनाए थे। यह दावा तो देखते ही झूठा, बेहूदा प्रतीत होता है। कोई भी व्यक्ति, बैठे-ठाले, अपने पिता या दादा के बनाए हुए ५०० विशाल भवनों को नष्ट नहीं करा देगा। स्वयं यह विध्वंस-कार्य ही व्यक्ति के

सम्पूर्ण जीवन के लिए पर्याप्त कार्य है। वैकल्पिक ५०० राजमहलों का निर्माण भी कई पीढ़ियों तक चलेगा। साथ ही यह बात भी स्मरण रखने की है कि शाहजहाँ को आगरे का अतिव्ययशील ताजमहल, दिल्ली का सम्पूर्ण नया नगर, दिल्ली का ही लालकिला, दिल्ली की जामा-मस्जिद तथा कदाचित् कई अन्य भवनों का निर्माण-श्रेय भी दिया जाता है। इतना ही नहीं, उन भवनों में से किसी भी भवन के निर्माण-सम्बन्धी अभिलेख बिल्कुल भी उपलब्ध नहीं, अपितु शिलालेख भी उनके दावों की पुष्टि नहीं करते। हम इन स्मारकों के दर्शकों को सावधान करना चाहते हैं कि उनको मध्य-कालीन भवनों पर अरबी या फारसी लिखावट की विद्यमानता से भ्रमित नहीं होना चाहिए। इस प्रकार की सम्पूर्ण शब्दावली अधिकांशतः कुरान के उद्धरण हैं या अल्लाह के नाम हैं। ये शिलालेख यदा-कदा ही काल-सम्बन्धी, लौकिक हैं। कुछ उदाहरणों में जहाँ ऐसे लौकिक शिलालेख मिलते भी हैं, उनमें प्रायः उत्कीर्णकर्ता अथवा दफनाए गए व्यक्ति का नाम तथा कुछ अन्य असंगत वर्णन मिलता है। उदाहरण के लिए, ताजमहल में कहीं भी यह उल्लेख नहीं है कि शाहजहाँ द्वारा ताजमहल का निर्माण करवाया गया था। अतः हमें आश्चर्य होता है कि किस प्रकार ३०० वर्षों की लम्बी-अवधि तक विश्व को यह विश्वास दिलाकर धोखा दिया गया है कि ताजमहल को शाहजहाँ द्वारा बनवाया गया था। यही बात आगरा-स्थित लालकिले के बारे में है। वहाँ कहीं भी यह नहीं कहा गया है कि अकबर या उसके बेटे जहाँगीर या जहाँगीर के बेटे शाहजहाँ ने यहाँ कोई भी निर्माण-कार्य किया था।

इस सम्बन्ध में हम मध्यकालीन भवनों के दर्शनार्थियों और इतिहास के विद्यार्थियों व विद्वानों को इस बारे में भी सतर्क, सावधान करना चाहते हैं कि वे अरबी और फारसी शिलालेखों के उन अनुवादों में कोई विश्वास न करें जो उनको पूर्व-पुस्तकों के रूप में तैयार मिलता है। हमने बहुत सारे उदाहरणों में देखा है कि उन शिलालेखों की भाषा को अनुवाद करते समय तोड़ा-मरोड़ा गया है। उदाहरण के लिए, ताजमहल पर शिलालेखक ने अपना नाम 'अमानत खाँ शिराजी' उत्कीर्ण किया है (जो शाहजहाँ बादशाह का अकिंचन, तुच्छ दास था)। आंग्ल-मुस्लिम वर्णनों ने इस शिलालेखक की

बहुत अधिक सराहना की है और उसे विश्व के महान् आश्चर्यजनक वास्तुकारों में से एक वास्तुकार की संज्ञा दी है। इसी प्रकार फतहपुर-सीकरी में जहाँ एक भवन की शोभा सलीम चिश्ती (की उपस्थिति) से बढ़ गई बताई जाती है, वहाँ भी उसका निर्माण-श्रेय मन की मौजी में उसी के नाम कर दिया गया है। इसलिए हम इतिहास के समस्त संसार को सावधान करना चाहते हैं कि वे अब मुस्लिम शब्दावली या प्रलेखों के आंग्ल-मुस्लिम रूपांतरों में विश्वास न करें। जिन किन्हीं शिलालेखों में उनके उग्रवादी दावे विश्वास किए जाते हैं, उनको ऐसे सतर्क भाषाविदों की समिति द्वारा पुनः प्रारम्भ से जाँच-पड़ताल किए जाने की आवश्यकता है, जो अपने पूर्ववर्ती लोगों के समान सहज रूप में प्रवंच्य न हों।

८. हमने लालकिले के शिलालेखों का विवेचन किया है और यह स्पष्टतया दर्शाया है कि उनमें से किसी में भी कोई दावा या कोई वैध स्पष्ट दावा, आगरे के लालकिले में या उससे सम्बन्धित किसी भवन को किसी भी मुस्लिम द्वारा बनवाने के बारे में नहीं किया गया है। हमने तो श्री हुसैन का उद्धरण भी प्रस्तुत किया है जिसमें कहा गया है : "[1](जहाँगीरी महल) भवन में कोई शिलालेख नहीं हैं, किन्तु हेवेल, नेविल और अन्य लोग एक लम्बे फारसी शिलालेख का उल्लेख करते हैं जिसमें इसके निर्माण की तारीख सन् १६३६ अंकित है। लतीफ साहब एक कदम और भी आगे हैं तथा इसका पाठ भी प्रस्तुत करते हैं जिससे व्यक्ति को निष्कर्ष निकालना पड़ता है कि इस शिलालेख को दीवाने-खास वाले शिलालेख से मिला-जुला दिया गया है।" हम श्री हुसैन को इस विसंगति का भंडाफोड़ करने के लिए हार्दिक बधाई देते हैं जो या तो जान-बूझकर किया गया धोखा प्रतीत होता है अथवा निन्दनीय व्यावसायिक उपेक्षा-मात्र है। अतः हम इतिहास के सभी विद्यार्थियों को सलाह देते हैं कि वे मुस्लिम शिलालेखों के अभी तक दिए गए अनुवादों को सही मानकर नहीं चलेंगे, और जब कभी किसी शिलालेख की आवश्यकता होगी, तब वे उसका अनुवाद पुनः करवा लेंगे। न केवल भारत में अपितु समस्त विश्व-भर के मुस्लिम शिलालेखों के अनुवाद और

१. श्री एम. ए. हुसैन कृत 'आगरे का लालकिला', पृष्ठ १५-१६।

व्याख्या का प्रश्न पुनः उठना चाहिए और उस पर पूर्ण रूप में विचार किया जाना अभीष्ट है क्योंकि गैर-मुस्लिमों के सम्मुख उनको अनुवाद के रूप में प्रस्तुत करने में बहुत सारी काल्पनिक बातें प्रविष्ट कर दी गई हैं। तथ्य रूप में तो यह बहुत ही शिक्षाप्रद होगा कि सभी मुस्लिम शिलालेखों और उनके भ्रष्ट अनुवादों तथा अभी तक की गई भ्रामक व्याख्याओं का एक ज्ञानकोश तैयार किया जाए। मध्यकालीन इतिहास के अध्ययन में एक घोर फंदे के उदाहरण के रूप में इस प्रकार का भंडाफोड़ इतिहास के भावी शोधकर्ताओं और छात्रों को चेतावनी देने में अत्यन्त शैक्षिक महत्त्व का सिद्ध होगा।

९. हमने कीन द्वारा उद्धरण प्रस्तुत किया है कि आगरा-स्थित लालकिले का एक अनवरत, अटूट, निर्विघ्न इतिहास ईसा-पूर्व युग से (और इसलिए मुस्लिम-पूर्व युग से) सन् १५६५ ई० तक चला आ रहा है। उस वर्ष कुछ लोगों द्वारा दावा किया जाता है कि अकबर ने किले को गिरवा दिया और उसके स्थान पर एक नया किला बनवाया था। किन्तु उस किले के भीतर बने एक भवन की छत पर से एक हत्यारे को नीचे फेंक कर मार डाला गया था। अकबर किला कैसे छोड़ सकता था, उसे गिरा कैसे सकता था, एक दूसरा ही बनाकर उसमें बस भी सकता था—सब कार्य एक ही वर्ष में। कीन इस बात पर आश्चर्य व्यक्त करता है। किन्तु वह केवल यही लिखकर पूर्णाहुति कर लेता है कि (एक वर्ष क्या) तीन वर्ष में भी किले की दीवारों की नींव नहीं भरी जा सकती। यदि वह कोई असम्बद्ध तृतीय पक्ष—एक अन्य देशीय ब्रिटिश व्यक्ति न होता तो उसने वह अनियमित, अव्यवस्थित, दिल की आधी बात वाला ही वह पदटीप न छोड़ जाता, जैसा अब उसने किया है। उस पदटीप में एक बहुत महत्त्वपूर्ण, निर्णायक वाक्य गायब है। उसे कहना चाहिए था कि चूँकि किले की नींवें भी तीन वर्ष की अवधि में भरी नहीं जा सकतीं, इसलिए यह दावा कि अकबर ने सन् १५६५ ई० में किले को विनष्ट किया था और १२ महीने के भीतर ही किले में बने हुए एक भवन की छत से एक हत्यारे को नीचे फेंका गया था, मात्र विशुद्ध कल्पना है और केवल यही सिद्ध करता है कि अकबर एक हिन्दू किले में ही निवास करता रहा था। चूँकि कीन उस पदटीप को अधूरा

छोड़ गया है, उसे पूर्ण करना हमारा कार्य है। किसी देश का इतिहास विदेशी और मूल-निवासी व्यक्ति द्वारा लेखन-कार्य में यही अन्तर है। इससे यह भी स्पष्ट हो जाता है कि विदेशी अरबों, तुर्कों, फारसियों, अबीस्सीनियनों या मुगलों या सहयात्रियों द्वारा लिखित भारत के इतिहास-ग्रन्थों में क्यों अन्धविश्वास नहीं करना चाहिए।

अकबर के नाम पर किए गए झूठे मुस्लिम दावे की बाधा को एक बार पार कर लेने पर हम देखते हैं कि आगरा में आज दिखाई देने वाला लाल-किला वही किला है जिसके स्वामी अशोक और कनिष्क जैसे प्राचीन हिन्दू सम्राट् रहे थे। हम पहले ही स्पष्ट कर चुके हैं कि अकबर के वाद उस किले के निर्माता के रूप में किसी अन्य मुस्लिम शासक की ओर से कोई गम्भीर, जोरदार दावा नहीं है। जहाँगीर और शाहजहाँ बादशाह की ओर से कुछ भवनों अथवा परिवर्तनों के बारे में किए गए अस्पष्ट और नगण्य, निरर्थक दावों को पहले ही निराधार सिद्ध किया जा चुका है। इसका अर्थ यह है हम आज आगरा में जिस किले को देखते हैं, वह प्राचीन हिन्दू गैरिक (गेरुमय) किला है—उस रंग का जो हिन्दुओं को अतिशय प्रिय है। तथ्य रूप में तो यह गैरिक (भगवा) रंग हिन्दुओं के ध्वज का रंग है—यह वह रंग है जिसके लिए और जिसके नीचे उन्होंने अपने राष्ट्रीय और सांस्कृतिक अस्तित्व और परिचय के लिए सदैव संघर्ष किया है—यह वह रंग है जिसने उनको वीरता, बलिदान, शौर्य, बहादुरी, यशस्विता और जीवट के महान् कार्य करने की सदैव प्रेरणा दी है। क्या उस रंग को मुस्लिमों द्वारा कभी अंगीकार किया जा सकता है। ऐसा करना तो समस्त इतिहास और परम्परा के विरुद्ध बात है।

१०. मुस्लिम आधिपत्य और मुस्लिम निर्माण की झूठी कथाओं की कई शताब्दियों के बावजूद किले के सभी हिन्दू साहचर्य, संगुणन ज्यों-के-त्यों बने हुए है। यह अत्यन्त उल्लेखनीय बात है। कई शताब्दियों तक किले पर आक्रामक विदेशी नाशवाद का पूर्ण, एकछत्र प्रभुत्व रहने के बाद भी किले की साज-सजावट पूरी तरह हिन्दू है, हिन्दू शैली की है। इसकी दीवारों और भीतरी छतों पर उभरे हुए, जटित या रोगन किए हुए चित्रित सर्प, सम्पाति, अन्य पौराणिक हिन्दू आकृतियाँ और पर्णावलियाँ विद्यमान

हैं। अमरसिंह दरवाज़ा, हाथी पोल, दर्शनी दरवाज़ा, त्रिपोलिया, शीश-महल, सम्मान-बुर्ज, बादलगढ़, मन्दिर राज-रत्न, संगीत-दीर्घा, हनुमान-मन्दिर, जोधबाई का शृंगार-कक्ष, बंगाली महल जैसे नाम और त्रिदन्त-कलश, ढालू मन्दिर-जैसी छतें, सूर्य घड़ी, मत्स्य महल आदि अभी तक किले के साथ जुड़े हुए हैं। तथ्य तो यह है कि लालकिले के बारे में कोई मुस्लिम-चिह्न, लक्षण लेशमात्र भी है ही नहीं। स्वयं इसका गैरिक रंग भी—हिन्दू रंग है। हिन्दू पताकाएँ गैरिक-रंग की हैं और यही रंग हिन्दू संन्यासियों के परिधानों का है।

११. हमने अनेक मध्यकालीन लेखकों के उद्धरण प्रस्तुत किए हैं। उनकी रचनाओं का सावधानीपूर्वक किया गया विश्लेषण मात्र यही सिद्ध करता है कि विदेशी मुस्लिम आक्रमणकारियों ने हिन्दू किले को ही अपने आधिपत्य में किया था।

१२. आधुनिक इतिहास-लेखकों की रचनाओं का उसी प्रकार का अध्ययन भी उसी निष्कर्ष की पुष्टि करता है। कीन द्वारा खोज निकाला गया किले का दो हज़ार वर्ष पुराना इतिहास आधिकारिक निकलता है। जो थोड़ी-बहुत शंका और सन्देह उसके सम्मुख उपस्थित हुए थे, उनका स्पष्टीकरण उसके उस अत्यन्त बुद्धिमत्तापूर्ण पदटीप से हो गया है कि यदि किला एक वर्ष पूर्व ही विनष्ट हुआ था, तो किले के अन्दर बने हुए राज-महल की छत से एक हत्यारे को नीचे फेंककर मार डालने वाली घटना घटित नहीं हो सकती।

१३. किले की संरचना प्रारम्भ करने एवं उसकी पूर्ति की तारीखों में सामंजस्यता का अभाव इस तथ्य का प्रमाण है कि किले के मुस्लिम मूलोद्-गम के सम्बन्ध में समस्त विश्व को प्रवंचित किया गया है, धोखा दिया गया है। किसी भी वर्णन ग्रन्थ में किले के निर्माण सम्बन्धी स्थायी या निश्चित तारीखें नहीं मिलती हैं। उनके निहितार्थों से भी यही निष्कर्ष निकलता है कि किला एक वर्ष (सन् १५६५-६६ ई०) में या चार, पाँच, सात, आठ या पन्द्रह से सोलह वर्षों में कभी भी बना होगा। यदि किला वास्तव में ही अकबर बादशाह द्वारा बनवाया गया होता, तो आज हमारे युग में भी विद्यमान उसके दरबारी प्रलेखों में कुछ तो मौलिक और आधिकारिक

अभिलेख प्राप्त हो पाते। इस प्रश्न के कि क्या इसी प्रकार के अभिलेख, हिन्दू स्वामित्व घोषित करने वाले भी प्राप्त हैं, चार उत्तर हैं। हमारा प्रथम उत्तर यह है कि चूंकि आगरे का हिन्दू किला सन् १५२६ से १७६१ ई० तक लगभग निरन्तर मुस्लिम आधिपत्य में रहा, इसलिए सभी हिन्दू अभिलेखों को निर्दयतापूर्वक, निरंकुश और जान-बूझकर नष्ट कर दिया गया। जब किसी भवन पर विदेशी सेना का आक्रमण हो और उनका लगभग २५० वर्षों तक उस भवन पर कब्ज़ा रहे, तो क्या भवन के मूल स्वामी के वंशजों को अपने पूर्वजों के किन्हीं अभिलेखों की पुनः प्राप्ति की आशा हो सकती है? क्या अतिक्रमणकारी आक्रामक अपने अवैध आधिपत्य के सभी साक्ष्यों को समाप्त करने के लिए ही सभी अभिलेखों को विनष्ट नहीं कर देगा? हमारा दूसरा उत्तर यह है कि हिन्दुस्तान के सभी भवन जब मुस्लिमपूर्व काल के सिद्ध कर दिए जाएँ तो उसका अर्थ यह है कि वे सब असंदिग्धरूप में हिन्दू भवन हैं। हिन्दुस्तान में बने हुए उस किसी किले का निर्माता अन्य कौन व्यक्ति हो सकता है जबकि उस किले को मुस्लिम-पूर्व इतिहास वाला किला दर्शाया गया हो (जैसे कीन द्वारा सिद्ध करके दिखाया गया है)! हमारा तीसरा उत्तर यह है कि किले के हिन्दू-स्वामित्व का उत्कृष्ट, प्रत्यक्ष साक्ष्य गज और अश्व प्रतिमाओं, इसकी साज-सजावट तथा किले के साथ संलग्न इसकी हिन्दू नामावली में पहले,ही उपलब्ध हो चुका है। हमारा चौथा उत्तर यह है कि किले की भूमि का सम्यक् पुरातत्वीय उत्खनन करने, तथाकथित मस्जिदों की दीवारों और फर्शों पर लगे पत्थरों की सूक्ष्म जाँच-पड़ताल करने और भूगर्भस्थ भागों और प्रकोष्ठों की विधिवत् खोज-बीन करने पर किले के हिन्दू मूलोद्गम का बहुत मूल्यवान साक्ष्य, प्रचुर मात्रा में अब भी प्राप्त होगा।

१४. मुस्लिम वर्णन ग्रन्थ किसी प्रकोष्ठ, किसी भाग के नाम का स्पष्टीकरण करने में, उसे किसने बनाया, यह कब बना था, यह किस प्रयोजन से बना था, इसकी लागत क्या थी, और इसमें हिन्दुत्व की झलक क्यों है—बताने में असमर्थ है! इसका कारण यह है कि किला मूल रूप में अरेबिया, ईरान, तुर्किस्तान, अफगानिस्तान, कज़ाकिस्तान और उज़बेकस्तान से आए आक्रमणकारियों से सम्बन्ध नहीं रखता था। वे तो मात्र

अतिक्रमणकारी, विजेता और अपहरणकर्ता लोग थे।

१५. हम स्पष्टतः प्रदर्शित कर चुके हैं कि सभी भागों सहित किले की सम्पूर्ण आंग्ल-मुस्लिम कहानी उपलब्ध वस्तु और उग्रवादी इस्लामी कपट-पूर्ण काल्पनिक रचना तथा दन्तकथाओं पर आधारित सम्भावनाओं से गढ़ ली गई है।

१६. किले के हाथीपोल दरवाज़े के बाहर स्थित गज-प्रतिमाओं के सम्बन्ध में पश्चिमी विद्वानों और गप-शप-प्रिय यूरोपीय प्रवासियों द्वारा सृजित विचित्र मिश्रण की चर्चा करते समय हम दर्शा चुके हैं कि स्मिथ ने किस प्रकार स्वयं को ऐसी गाँठों में फँसा लिया है कि वह अन्त में स्वयं की ही अज्ञानता व काल्पनिक धारणाओं के जाल में बुरी तरह उलझ जाने की बात को स्वीकार कर लेता है। इस सब की अपेक्षा, उनको अबुलफज़ल द्वारा प्रस्तुत गजों के सन्दर्भ की ओर ध्यान देना चाहिए था। अबुलफज़ल हाथियों का उल्लेख तो करता है किन्तु उनका निर्माण-श्रेय अकबर को नहीं देता और न ही यह कहता है कि उनके हिन्दू सवार कौन थे। ये तो यूरोपीय लोग ही हैं जिन्होंने यह कल्पना करके समस्त प्रश्न को उलझा दिया है कि वे दोनों गजारोही वे दो राजपूत शत्रु-द्वय थे जिनको अकबर ने मार डाला था। फिर उस हास्यास्पद, अनर्गल धारणा, कल्पना के बाद अन्य अनेक बेहूदी कल्पनाएँ भी की जाती हैं, यथा कि १६वीं शताब्दी के धर्मान्ध बादशाह अकबर ने इस्लाम के लिए वर्जित सभी निषेधों का परित्याग कर दिया और बुत-परस्तीसूचक मूर्तियाँ बनायीं, फिर उन पर सुसज्जित दो हिन्दू आरोही बैठाए जिनसे वह घोर घृणा करता था और जिनको उसने मार डाला था और फिर अकबर के अपने बेटे या पोते ने उन मूर्तियों को गिरा दिया जो उनके 'विशिष्ट' पिता या दादा ने अत्यन्त उत्कंठापूर्वक स्थापित करवायी थीं। इतना ही नहीं, हम दिखा चुके हैं कि हिन्दू लोग अपने किलों के शाही दरवाज़ों के सामने हाथियों की मूर्तियाँ अवश्य ही स्थापित किया करते थे। हिन्दुओं की समृद्धि-देवी लक्ष्मी के दोनों ओर भी हाथियों को स्पष्ट, अविरल रूप में देखा जा सकता है। हिन्दू परम्परा में देवराज इन्द्र का वाहन भी गजराज ही है, जो राजसत्ता और समृद्धि का प्रतीक है। हाथी को तो पीने और कलोल करने, दोनों ही कार्यों के लिए पर्याप्त जल-राशि के संग्रह की

आवश्यकता होती है। अतः हाथी पश्चिमी एशिया के निर्जल इस्लामी भूमि प्रदेश का पशु न होकर हरे-भरे हिन्दुस्तान का मूल पशु है। साथ ही मुस्लिम लोग तो एक चूहे या मच्छर का भी चित्रीकरण, मूर्तिकरण नहीं करते; इसलिए अतिविशालकाय हाथियों की महान् मूर्तियों का निर्माण करके वे कभी भी अपधर्म का आचरण नहीं कर सकते।

इस सम्पूर्ण विवेचन से पाठक को विश्वास हो जाना चाहिए कि आगरे का लालकिला अति प्राचीन हिन्दू काल का है और कम-से-कम २२०० वर्ष पुराना तो है ही। वास्तव में किस हिन्दू सम्राट् ने इसका निर्माण किया था—इस बात का ज्ञान भी सुगम रीति से हो सकता था यदि अफगानिस्तान से लेकर अरेबिया तक के विदेशी नर-राक्षसों ने आठवीं शताब्दी से लेकर अठारहवीं शताब्दी की ११०० वर्षीय दीर्घ अवधि में भारत को बुरी तरह लूटा-खसोटा, छाना, उजाड़ा-विनष्ट किया और तोड़ा-फोड़ा न होता। अब भी बहुत देर नहीं हुई है। जैसा हम प्रदर्शित कर चुके हैं, विनष्ट और तोड़े-मोड़े इतिहास को पुनः ठीक रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है यदि केवल जनता जाग्रत् हो जाय और अपना इतिहास पुनः लिखने के पुनीत कार्य में संलग्न हो जाय। राणा प्रताप और शिवाजी जैसे देशभक्त योद्धा तो हारा हुआ प्रदेश पुनः विजय करते हैं किन्तु राजनीतिक उद्धार की पुनीत बेला में विदेशी आक्रामकों के हाथों चले गए भवनों की शैक्षिक पुनर्विजय देशभक्त लेखकों, रचयिताओं, इतिहासकारों, वकीलों और तर्कशास्त्रियों को ही करनी है। जब तक यह कार्य नहीं हो जाता तब तक अपनी राजनीतिक स्वतन्त्रता के होते हुए भी हम लोग उस शैक्षिक धर्मसिद्धान्त के दास बने रहेंगे जो विदेशी शासन की एक हज़ार वर्षीय अवधि में हमारे ऊपर अत्यन्त सावधानी से लादे गए और चालाकी से हमारे गले मढ़ दिए गए थे।

आधार ग्रन्थ-सूची

१. आगरा फोर्ट, बाइ मुहम्मद अश्रफ़हुसैन, रिटायर्ड असिस्टैण्ट सुपरिटैंडैंट, डिपार्टमैंट ऑफ आर्कियोलौजी, प्रिंटेड बाइ दि गवर्नमेंट ऑफ इण्डिया प्रेस, नई दिल्ली, १९५६।

२. दि सिटी ऑफ ताज, बाइ एन० एच० सिद्दीकी, ६८ जार्ज टाउन, इलाहाबाद, १९४० ई०।

३. ए हैंड बुक टु आगरा एंड दि ताज, सिकन्दरा, फतहपुर-सीकरी एण्ड इट्स नेबरहुड, बाइ ई० वी० हेवेल, लौंगमैन्स ग्रीन एण्ड कम्पनी; ३९ पेटरनोस्टर रो, लंदन, १९०४।

४. अकबर दि ग्रेट मुगल, बाइ विन्सेंट ए० स्मिथ, सैकिंड एडीशन, रिवाइज्ड इण्डियन रीप्रिण्ट १९५८, एस० चन्द एण्ड कम्पनी, दिल्ली, जालन्धर, लखनऊ।

५. आईने-अकबरी बाइ अबुलफज़ल, ट्रांस्लेटेड इन टु इंगलिश बाइ एच० ब्लोचमन, एण्ड कर्नल एस० एच० जरेट, सैकिण्ड एडीशन, एडिटेड बाइ लेफ्टिनेंट कर्नल डी० सी० फिलोट, प्रिंटेड फॉर दि एशियाटिक सोसाइटी ऑफ बंगाल, कलकत्ता, १९२७।

६. दि कर्मेण्टेरियस बाइ फादर मनसरेट, एस० जे०, ट्रांस्लेटेड फ्रॉम दि ओरिजनल लैटिन बाइ जे० एस० हॉयलैंड, १९२२, हम्फ्रे मिलफोर्ड, आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, लंदन, बम्बई, मद्रास, कलकत्ता।

७. रैम्बल्स एण्ड रि-कलैक्शन्स ऑफ एन इण्डियन आफीशल बाइ लेफ्टिनेंट कर्नल डब्ल्यू० एच० स्लीमन, रि-पब्लिश्ड बाइ ए० सी० मजूमदार, १८८८, प्रिण्टेड एट दि मुफीदे-आम प्रेस, लाहौर।

८. हिस्ट्री ऑफ दी राइज़ ऑफ दि मोहमडन पावर इन इण्डिया टिल दि इयर ए० डी० १६१५, ट्रांस्लेटेड फॉम दि ओरिजनल पर्शियन आफ

मुहम्मद कासिम फरिश्ता, बाइ जानब्रिग्स, इन फोर वाल्यूम्स, पब्लिश्ड बाइ एड० डे०, ५९/ए शाम बाज़ार स्ट्रीट, कलकत्ता-४ (री-प्रिंटेड कलकत्ता, १९६६)।

९. राल्फ फिच, इंग्लैंड्स पायोनियर टु इण्डिया, बाइ जे० हार्टन रिले, लंदन,-टी० फिशर अनविन, पेटरनोस्टर स्क्वेयर, १८९९।

१०. अकबर दि ग्रेट, वाल्यूम-I, बाइ डाक्टर आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव, शिवलाल अग्रवाल एण्ड कम्पनी (प्राइवेट) लिमिटेड, आगरा।

११. एनल्स एण्ड एण्टीक्वीटीज़ ऑफ राजस्थान बाइ लेफ्टिनैंट कर्नल जेम्स टाड, इन टु वाल्यूम्स, री-प्रिंटेड १९५७, लंदन, राउट लेज एंड केगन पॉल लिमिटेड, ब्राडवे हाउस, ६७-७४ कार्टर लेन, ई० सी० ४।

१२. मुन्तखाबूत तवारीख, बाइ अब्दुल कादिर इब्ने—मुलुक शाह नोन ऐज़ अल बदायूंनी, ट्रांस्लेटेड फ्रॉम दि ओरिजनल पर्शियन एण्ड एडिटेड बाइ जार्ज एस० ए० रैंकिंग, एशियाटिक सोसायटी ऑफ बंगाल (बैप्टिस्ट मिशन प्रेस, कलकत्ता, १८९८)।

१३, ट्रांजैक्शन्स ऑफ दी आर्कियोलौजिकल सोसाइटी ऑफ आगरा, जौलाई टु दिसम्बर, १८७५, प्रिंटेड बाई ऑर्डर ऑफ दी कौंसिल, दिल्ली गज़टप्रेस।

१४, कीन्स हैंड बुक फॉर विज़िटर्स टु आगरा एण्ड इट्स नेवरहुड, री-रिटन एण्ड ब्राट अप टू डेट बाइ ई० ए० डंकन, हैंड बुक्स ऑफ हिन्दुस्तान सेविन्थ एडिशन, कलकत्ता, थैकर स्पिन्क एण्ड कम्पनी, लंदन : डब्ल्यू थैकर एण्ड कम्पनी, १९०९।

१५. स्टोरिआ डो मोगोर ऑर मुगल इण्डिया (१६५३-१७०८), बाइ निकोलाओ मानुषी, वेनेशियन (वाल्यूम्स वन टु फोर) ट्रांस्लेटेड विद इंट्रोडक्शन एण्ड नोट्स बाइ विलियम इर्विन, पब्लिश्ड बाइ एस० डे० फ्रॉम एडिशन्स इण्डियन, ५३-ए शाम बाज़ार स्ट्रीट, कलकत्ता-४।

१६. आगरा एण्ड इट्स मौन्यूमैंट्स, बाइ बी० डी० साँवल, ओरियण्ट लोंगमैन्स, १९६८।

१७. ए विज़िट टु दी सिटी ऑफ दी ताज—आगरा, बाइ ए० सी०

जैन, २५६३ धर्मपुरा, पब्लिश्ड बाइ लाल चन्द एण्ड सन्स, दरीबा कलाँ, दिल्ली।

१८. आगरा हिस्टोरिकल एण्ड डेस्क्रेप्टिव विद एन् अकाउण्ट ऑफ अकबर एण्ड हिज़ कोर्ट एण्ड ऑफ दि मॉडर्न सिटी ऑफ आगरा बाइ सैयद मुहम्मद लतीफ़, प्रिंटेड एट दि कलकत्ता, सैण्ट्रल प्रेस कम्पनी लिमिटेड, ४० केनिंग स्ट्रीट, १८९६।

□ □ □

हमारी सांस्कृतिक धरोहर

भारतीय संस्कृति के विभिन्न पहलुओं पर श्री गुरुदत्त की कई रचनाएँ प्रकाशित हो चुकी हैं। यह कहना गलत नहीं होगा कि उनकी सभी रचनाओं का आधार शुद्ध भारतीय संस्कृति रहा है।

प्रस्तुत रचना 'हमारी सांस्कृतिक धरोहर' में उनकी प्रकाशित तथा अप्रकाशित रचनाओं का सार एक ही पुस्तकाकार में प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। श्री गुरुदत्त की रचनाएँ ज्ञान का अथाह भण्डार हैं और उस ज्ञान का सार इस पुस्तक में प्रस्तुत है।

पुस्तक में वर्णित विषयों की सूची इस प्रकार है—

★ वेद
★ दर्शन शास्त्र
★ श्रीमद्भगवद्गीता
★ पुराण
★ धर्म
★ समाज
★ वेद मन्त्रों के देवता
★ वैदिक काल
★ इतिहास
★ मनुष्य
★ धर्म-व्यवस्था

इन विषयों के अतिरिक्त इतिहास में से कुछ उदाहरण देकर दर्शाया गया है कि किस प्रकार पाश्चात्य इतिहासकारों तथा उनका अनुकरण करनेवाले भारतीय इतिहासकरों ने हमारे इतिहास को भ्रष्ट करने का प्रयास किया है।

इस विषय पर यद्यपि बहुत-सी रचनाएँ हैं परन्तु जिस दृष्टि से तथा जिस विश्लेषणात्मक एवं सरल तथा बोधगम्य ढंग से यह रचना प्रस्तुत की गई है, अनुपम है।

श्री गुरुदत्त की एक अनुपम रचना

श्रीमद्भगवद्गीता : एक अध्ययन

गीता उद्देश्य विशेष से किया गया श्री कृष्ण का प्रवचन है। उस उद्देश्य को छोड़कर जो लोग गीता को समझने-समझाने का प्रयास करते हैं, वे स्वयं भी भ्रमित होते हैं तथा दूसरों को भी भ्रमित करते हैं।

अर्जुन को युद्ध (कर्म) की प्रेरणा देने के लिए गीता का प्रवचन किया गया था। यही कारण है कि यह प्रवचन पग-पग पर देशभक्तों को बलिदान की प्रेरणा देता आया है और भविष्य में भी देता रहेगा।

प्रस्तुत रचना 'श्रीमद्भगवद्गीता : एक अध्ययन' गीता का विषयानुसार विवेचनात्मक विश्लेषण है और अत्यन्त ही सरल भाषा में गीता को समझने-समझाने का प्रयास है। पुस्तक में निम्न विषय लिये गए हैं—

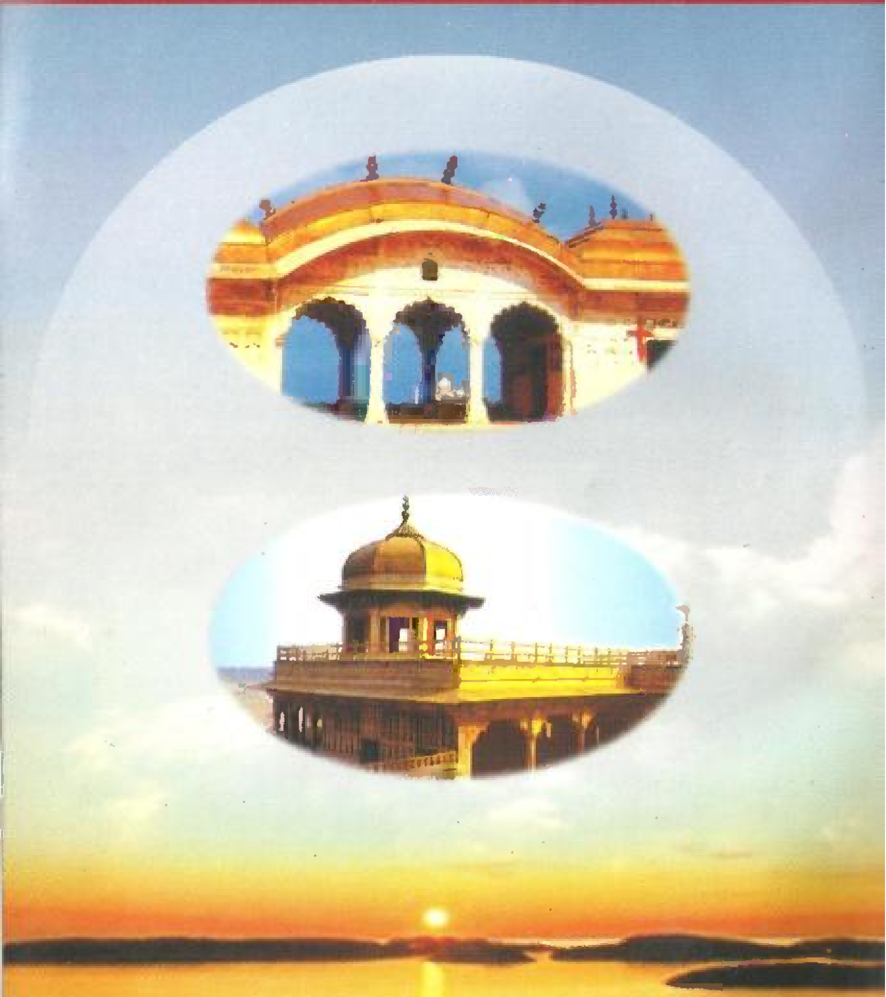
१. गीता प्रवचन की विशेषता।
२. श्रीमद्भगवद्गीता के सिद्धान्त, इतिहास, मान्यताएँ।
३. मृत्यु एवं हत्या की विवेचना, कुलक्षय और कुल-धर्म।
४. कर्म योग, स्थितप्रज्ञ, स्थितप्रज्ञ की परिभाषा, कर्म, कर्मों का विभाजन, कर्मों का स्रोत, कर्म और गुण, कर्म बंधन।
५. कर्म बंधन से मुक्ति, योग।
६. ज्ञान-विज्ञान, क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ व्यवस्था, परमात्मा और आत्मा में भेद, परमात्मा और उसकी माया।
७. भक्ति योग, भक्ति का ढंग, भक्ति का फल, मोक्ष की अवधि।
८. परमात्मा का स्वरूप, मूर्ति पूजा
९. ज्ञान और कर्म, संन्यास, कर्म और ज्ञान।
१०. स्वभाव, गुण तथा कर्म, गुण बुद्धि और स्वभाव, वर्ण धर्म।

साहित्यकार गुरुदत्त

प्रतिनिधि रचनाएँ

अब तक १० खण्डों में प्रकाशित रचनाएँ—

खण्ड एक	: विक्रमादित्य साहसांक, मेघवाहन तथा सागर तरंग (ऐतिहासिक उपन्यास)	मूल्य १५०.००
खण्ड दो	: सहस्रबाहु, गगन के पार तथा अन्तरिक्ष में (वैज्ञानिक उपन्यास)	मूल्य १५०.००
खण्ड तीन	: कला, कामना तथा अनदेखे बंधन (सामाजिक उपन्यास)	मूल्य १५०.००
खण्ड चार	: एक और अनेक तथा मानव (सामाजिक उपन्यास)	मूल्य १८०.००
खण्ड पाँच	: परित्राणाय साधूनाम् (महाभारतकालीन तीन उपन्यास)	मूल्य २४०.००
खण्ड छ	: स्वाधीनता के पथ पर तथा पथिक (राजनैतिक उपन्यास)	मूल्य २४०.००
खण्ड सात	: स्वराज्यदान तथा दासता के नए रूप (राजनैतिक उपन्यास)	मूल्य २४०.००
खण्ड आठ	: विश्वासघात तथा देश की हत्या (राजनैतिक उपन्यास)	मूल्य २४०.००
खण्ड नौ	: प्रभातवेला, कुमारसम्भव तथा उमड़ती घटाएँ (पौराणिक पृष्ठभूमि पर)	मूल्य २८०.००
खण्ड दस	: गंगा की धारा (सम्पूर्ण) (अकबरकालीन ऐतिहासिक उपन्यास)	मूल्य २८०.००



हिन्दी साहित्य सदन
2 बी.डी.चैम्बर्स,
10/54, देश बंधु गुप्ता रोड,
करोल बाग, नई दिल्ली-110005
Email : indiabooks@rediffmail.com